वक्तव्य

इस 'प्रेम-प्रसून' पुस्तक को लेकर प्रेमी पाठकों की सेवा में उपस्थित होते हुए हमें परम हर्ष होता है। इसके रचयिता प्रेमचंद-जी से हिंदी-संसार भली भाँति परिचित है। यह बात निर्विवाद है कि आपने अपनी अपूर्व कहानियों की बदौलत हिंदी-साहित्य के औपन्यासिक विभाग में युगांतर उपस्थित कर दिया है। आप इस पुस्तक को पहले स्वयं निज व्यय से छपवा रहे थे, पर बाद को, पूरी पुस्तक छप जाने पर, हमने इसके प्रकाशन का स्वत्व आपसे ले लिया। इसी कारण इस पुस्तक की भाषा और प्रूफ़ का संशोधन उतनी दक्षता के साथ नहीं हुआ है, जितनी दक्षता के साथ हमारी माला की पुस्तकों का होता है। आशा है, प्रेमी पाठकगण इस कारण को जानते हुए हमें इसके लिये क्षमा करेंगे। गंगा-पुस्तक-माला में जब इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित होगा, तब संशोधन-कार्य उचित रीति से कर दिया जायगा।

कहानियों के विषय में हमें कुछ विशेष निवेदन नहीं करना, केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि उनमें प्रेमचंदजी की लेखनी का पूर्ण चमत्कार मौजूद है, और हमें विश्वास है कि पाठकगण उनका रसास्वादन करके अवश्य संतुष्ट होंगे।

प्रकाशक
श्रीछोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीमहताबराय
सरस्वती-प्रेस, काशी
सिर्फ टाइटिल और वक्तव्य
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में मुद्रित]

भूमिका ।

गल्प, आख्यायिका या छोटी कहानी लिखनेकी प्रथा प्राचीन कालसे चली आती है। धर्म ग्रन्थोंमें जो दृष्टान्त भरे पड़े हैं वह छोटी कहानियां ही है पर कितनी उच्च कोटिकी। महाभारत, उपनिषद्, बुद्ध जातक, बाइबल सभी सद्ग्रन्थोंमें जन शिक्षाका यही साधन उपयुक्त समझा गया है। ज्ञान और तत्त्वकी बातें इतनी सरल रीतिसे और क्यों कर समझाई जातीं। किन्तु प्राचीन ऋषि इन दृष्टान्तों द्वारा केवल आध्यात्मिक और नैतिकतत्त्वोंका निरूपण करते थे। उनका अभिप्राय केवल मनोरंजन न होता था। सद्ग्रन्थोंके रूपकों और बाइबलके parables को देखकर यही कहना पड़ता है कि अगले जो कुछ कर गये वह हमारी शक्तिसे बाहर है, कितनी विशुद्ध कल्पना, कितना मौलिक निरूपण, कितनी ओजस्विनी रचनाशैली है कि उनको पढ़कर वर्तमान साहित्यिक बुद्धि चकरा जाती है। आजकल आख्यायिकाका अर्थ बहुत व्यापक हो गया है। उसमें प्रेमकी कहानियां, जासूसी क़िस्से, भ्रमण वृत्तान्त, अद्भुत घटना, विज्ञानकी बातें, यहां तक कि मित्रोंकी गपशप सभी शामिल कर दी जाती हैं। यहां तक कि एक अंग्रेजी समालोचकके मतानुसार कोई रचना जो पन्द्रह मिनटोंमें पढ़ी जा सके गल्प कहलानेकी अधिकारी है। और तो और उसका यथार्थ उद्देश्य इतना अनिश्चित हो गया है कि उसमें किसी प्रकारका उपदेश होना दूषण समझा जाने लगा है।

वह कहानी सबसे नाकिस समझी जाती है जिसमें उपदेशकी छाया भी पड़ जाय।

आख्यायिकाओं द्वारा नैतिक उपदेश देनेकी प्रथा धर्म-ग्रन्थों ही में नहीं, साहित्य ग्रन्थोंमें भी प्रचलित थी। कथा सरित्सागर इसका उदाहरण है। इसके पश्चात बहुत सी आख्यायिकाओंको एक शृंखलामें बांधनेकी प्रथा चली। बैताल पचीसी सिंहासन बत्तीसी इसी श्रेणीकी पुस्तकें हैं। उनमें कितनी नैतिक और धार्मिक समस्यायें हल की गई है यह उनलोगोंसे छिपा नहीं है जिन्होंने उनका अध्ययन किया है। अरबीमें सहस्र-रजनी-चरित्र इसी भांतिका अद्भुत संग्रह है, किन्तु उनमें किसी भांतिका उपदेश देनेकी चेष्टा नहीं की गई। उसमें सभी रसोंका समावेश है पर अद्भुत रस ही की प्रधानता है और अद्भुत रसमें उपदेशकी गुञ्जाइश नहीं रहती। कदाचित उसी आदर्शको लेकर इस देशमें शुक बहत्तरीके ढंगकी कथायें रची गईं, जिनमें स्त्रियोंकी बेवफ़ाईका राग अलापा गया है। यूनानमें हकीम ईसपने एक नया ही ढंग निकाला। उन्होंने पशु पक्षियोंकी कहानियों द्वारा उपदेश देनेका आविष्कार किया।

मध्यकाल काव्य और नाटक रचनाका काल था, आख्यायिकाओंकी ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। उस समय कहीं तो भक्ति काव्यकी प्रधानता रही कहीं सामाजिक विषयोंकी। हां शेख़ सादीने फ़ारसीमें गुलिस्तां बोस्तांकी रचना करके आख्यायिकाओंकी मर्य्यादा रखी। यह उपदेश कुसुम इतना मनोहर और सुन्दर है कि चिरकाल तक प्रेमियोंके हृदय इसके सुगंधसे रंजित होते रहेंगे। उन्नीसवीं शताब्दिमें फिर आख्यायिकाओंकी ओर साहित्यकारोंकी प्रवृत्ति

हुई और तभीसे सभ्य साहित्यमें इनका विशेष महत्त्व है। यूरोपकी सभी भाषाओंमें गल्पोंका यथेष्ट प्रचार है, पर मेरे विचारमें फ्रांस और रूसके साहित्यमें जितने उच्चकोटिके गल्प पाये जाते हैं उतने अन्य यूरपीय भाषाओंमें नहीं मिलते। अंग्रेजीमें भी डिकेन्स, वेल्स, हार्डी किप्लिङ्ग, शार्लट यङ्ग, ब्रांटी आदिने कहानियां लिखी हैं, लेकिन इनकी रचनायें गाई मासां वालज़क या पियेर लोटीके टक्करकी नहीं। फ्रांसीसी कहानियोंमें सारस्यकी मात्रा बहुत अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त गाई मासां और वालज़कने आख्यायिकाके आदर्शको हाथसे नहीं जाने दिया है। उनमें आत्मिक या सामाजिक गुत्थियां अवश्य सुलझाई गई हैं। रूसमें सबसे उत्तम कहानियां काउंट टालस्टायकी हैं। उनमें कई तो ऐसी हैं जो प्राचीनकालके दृष्टान्तोंकी कोटिकी हैं। चेकाफ़ने बहुत कहानियां लिखी हैं और यूरोपमें उनका प्रचार भी बहुत है किन्तु उनमें रूसके विलासी समाजके जीवनचित्रोंके सिवाय और कोई विशेषता नहीं। डास्टाएस्कीने भी उपन्यासोंके अतिरिक्त कहानियां लिखी हैं, पर उनमें मनोभावोंकी दुर्बलता दिखाने हीकी चेष्टा की गई है। भारतमें बंकिमचन्द्र और डाक्टर सर रवीन्द्र नाथने कहानियां लिखी हैं, पर इनमेंसे किसीने पुराने आदर्शका पालन नहीं किया।

प्रश्न यह हो सकता है कि आख्यायिका और उपन्यासमें आकारके अतिरिक्त और भी कोई अन्तर है? हां है और बहुत बड़ा अन्तर है। उपन्यास घटनाओं, पात्रों और चरित्रोंका समूह है, आख्यायिका केवल एक घटना है। अन्य बातें सब उसीके अन्तर्गत होती हैं। इस विचारसे उसकी तुलना ड्रामासे की जा सकती है। उपन्यासमें आप जितने स्थान चाहें लायें, जितने दृश्य

चाहें दिखायें, जितने चरित्र चाहें खींचें, पर यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि वह सब घटनायें और चरित्र एक ही केन्द्र पर आकर मिल जायें। उनमें कितने ही चरित्र तो केवल मनोभाव दिखाने ही के लिये रहते हैं। (पर आख्यायिकामें इस बाहुल्यता की गुंजाइश नहीं। बल्कि कई सुविज्ञ जनोंकी सम्मति तो यह है कि उसमें केवल एक ही घटना या चरित्र का उल्लेख होना चाहिये। उपन्यास में आपके कलममें जितनी शक्ति हो उतना जोर दिखाइये, राजनीति पर तर्क कीजिये, किसी महफ़िलके वर्णनमें दस बीस पृष्ठ लिख डालिये (भाषा सरस होनी चाहिये) यह कोई दूषण नहीं। आख्यायिकामें आप महफ़िलके सामनेसे चले जायेंगे और बहुत उत्सुक होने पर भी आप उसकी ओर निगाह नहीं उठा सकते। वहां तो एक शब्द, एक वाक्य भी ऐसा न होना चाहिये जो गल्पके उद्देश्यको स्पष्ट न करता हो। इसके सिवाय, कहानी की भाषा बहुत ही सरल और सुबोध होनी चाहिये। उपन्यास वे लोग पढ़ते हैं जिनके पास रुपया है और समय उन्हींके पास रहता है जिनके पास धन होता है। आख्यायिका साधारण जनता के लिये लिखी जाती है जिनके पास न धन है, न समय। यहां तो सरलता में सरलता पैदा कीजिये, यही कमाल है। कहानी वह ध्रुपदकी तान है जिसमें गायक महफिल शुरू होते ही अपनी सम्पूर्ण प्रतिभा दिखा देता है; एक क्षण में चित्त को इतने माधुर्य से परिपूरित कर देता है जितना रात भर गाना सुनने से भी नहीं हो सकता।

हम जब किसी अपरिचित प्राणी से मिलते हैं तो स्वभावतः यह जानना चाहते हैं कि यह कौन है, पहले उससे परि-

चय करना आवश्यक समझते हैं। पर आजकल कथा भिन्न भिन्न रूपसे आरम्भ की जाती है। कहीं दो मित्रोंकी बात चीतसे कथा आरम्भ हो जाती है, कहीं पुलिस कोर्टके एक दृश्य से। परिचय पीछे आता है। यह अंग्रेज़ी आख्यायिकाओं की नक़ल है। इससे कहानी अनायास ही जटिल और दुर्बोध हो जाती है, यूरोपवालों की देखा देखी यंत्रों द्वारा, डायरी टिप्पणियों द्वारा भी कहानियां लिखी जाती हैं। मैंने स्वयं इन सभी प्रथाओं पर रचना की है। पर वास्तवमें इससे कहानी की सरलतामें बाधा पड़ती है। यूरोपके विज्ञ समालोचक कहानियोंके लिये किसी अंतकी भी ज़रूरत निर्दिष्ट नहीं समझते। इसका कारण यही है कि वह लोग केवल मनोरंजन के लिये पढ़ते हैं। आपको एक लेडी लंदनके किसी होटलमें मिल जाती है उसके साथ उसकी वृद्धा माता भी होती है। माता कन्याको किसी विशेष पुरुषसे विवाह करनेके लिये आग्रह करती है। लड़कीने अपना दूसरा वर ठीक कर रखा है। मां बिगड़ कर कहती है मै तुझे अपना धन न दूंगी। कन्या कहती है मुझे इसकी परवाह नहीं। अन्तमें माता अपनी लड़कीसे रूठ कर चली जाती है। लड़की निराशाकी दशामें बैठी है कि उसका अपना पसन्द किया युवक आता है। दोनोंमें बात चीत होती है। युवकका प्रेम सच्चा है वह बिना धनके ही विवाह करने पर राज़ी हो जाता है। विवाह होता है, कुछ दिनों तक स्त्री पुरुष सुखपूर्वक रहते हैं इसके बाद पुरुष धनाभावसे किसी दूसरी धनवान स्त्रीकी टोह करने लगता है। उसकी स्त्री को इसकी खबर हो जाती है और वह एक दिन घरसे निकल जाती है। इस भांति कहानी समाप्त कर दी जाती है। क्यों कि Realists, अर्थात् यथार्थ

वादियोंका कथन है कि संसारमें नेकी बदीका फल कहीं मिलता नहीं नज़र आता, बल्कि बहुधा बुराईका परिणाम अच्छा और भलाईका बुरा होता है। आदर्शवादी कहता है यथार्थका यथार्थ रूप दिखानेसे फायदा ही क्या, वह तो हम अपनी आंखोंसे देखते ही हैं। कुछ देरके लिये तो हमें इन कुत्सित व्यवहारोंसे अलग रहना चाहिये, नहीं तो साहित्यका मुख्य उद्देश्य ही गायब हो जाता है। वह साहित्य को समाजका दर्पण मात्र नहीं मानता, बल्कि दीपक मानता है जिसका काम प्रकाश फैलाना है। भारतका प्राचीन साहित्य आदर्शवाद ही का समर्थक है, हमें भी आदर्श ही की मर्यादा पालन करनी चाहिये, हां यथार्थका उसमें ऐसा सम्मिश्रण होना चाहिये कि सत्यसे दूर न जाना पड़े।

हमने इन कहानियोंमें आदर्श को यथार्थसे मिलानेकी चेष्टा की है। हम कहां तक सफल हुये हैं इसका निर्णय पाठक ही कर सकते हैं। हमारा विचार है कि आख्यायिकामें यह तीन गुण अवश्य होने चाहिये—

(१) उसमें कोई आध्यात्मिक या नैतिक उपदेश हो,

(२) उसकी भाषा अत्यन्त सरल हो,

(३) उसकी वर्णन शैली स्वभाविक हो, और उन्हीं सिद्धान्तोंके अनुसार इन कहानियोंकी रचना की गई है। आशा है पाठकोंका उनसे मनोरंजन होगा—

विनीत

प्रेमचन्द

शाप ।

—:०:—

मैं बर्लिन नगरका निवासी हूं। मेरे पूज्य पिता भौतिक विज्ञानके सुविख्यात ज्ञाता थे। भौगोलिक अन्वेषण का शौक मुझे भी बाल्यावस्था हीसे था। उनके स्वर्गवासके बाद मुझे यह धुन सवार हुई कि पैदल पृथ्वीके समस्त देश देशान्तरोंकी सैर करूं। मैं विपुल-धनका स्वामी था वे सब रुपये एक बैंकमें जमा कर दिये, और उससे शर्त करली कि मुझे यथासमय रुपये भेजता रहे। इस कार्यसे निवृत्त होकर मैंने सफरका सामान पूरा किया। आवश्यक वैज्ञानिक यंत्र साथ लिये और ईश्वरका नाम लेकर चल खड़ा हुआ। उस समय यह कल्पना मेरे हृदयमें गुदगुदी पैदा कर रही थी कि मैं वह पहला प्राणी हूं जिसे यह बात सूझी है कि पैरोंसे पृथ्वीको नापे। अन्य यात्रियोंने रेल, जहाज और मोटरकारकी शरण ली है। मैं पहलाही वह वीर-आत्मा हूं जो अपने पैरोंके बूतेपर प्रकृतिके विराट उपवनकी सैरके लिये उद्यत हुआ है। अगर मेरे साहस और उत्साहने यह कष्ट-साध्य यात्रा पूरी करली तो भद्र-संसार मुझे सम्मान और गौरवके मसनद पर बैठावेगा और अनंत कालतक मेरी कीर्ति के राग अलापे जायंगे। उस समय मेरा मस्तिष्क इन्हीं

विचारोंसे भरा हुआ था। और ईश्वरको धन्यवाद देता हूं कि सहस्रों कठिनाइयों का सामना करनेपर भी धैर्यने मेरा साथ न छोड़ा और उत्साह एक क्षणके लिये भी निरुत्साह न हुआ।

मैं वर्षों ऐसे स्थानोंमें रहा हूं जहां निर्जनताके अतिरिक्त कोई दूसरा साथी न था। वर्षों ऐसे स्थानोंमें रहा हूं जहांकी पृथ्वी और आकाश हिमकी शिलायें थी। मै भयंकर जन्तुओंके पहलूमें सोया हूं। पक्षियोंके घोसलोंमें रातें काटी हैं, किन्तु ये सारी बाधायें कट गयी, और वह समय अब दूर नहीं है कि साहित्य और विज्ञान-संसार मेरे चरणोंपर शीश नवाये।

मैंने इस यात्रामें बड़े बड़े अद्भुत दृश्य देखे और कितनी ही जातियोंके आहार व्यवहार, रहनसहनका अवलोकन किया। मेरी यात्रा-वृत्तान्त विचार, अनुभव और निरीक्षणका एक अमूल्य रत्न होगी। मैंने ऐसी ऐसी आश्चर्यजनक घटनायें आंखोंसे देखी हैं जो अलिफलैलाकी कथाओंसे कम मनोरंजक न होंगी। परन्तु वह घटना जो मैंने ज्ञानसरोवरके तटप देखी उसका उदाहरण मुश्किलसे मिलेगा। मैं उसे कभी भूलूंगा। यदि मेरे इस तमाम परिश्रमका उपहार यही प रहस्य होता तो भी मैं उसे परियाप्त समझता। मैं र बता देना आवश्यक समझता हूं कि मैं मिथ्यावादी नहीं और न सिद्धियों तथा विभूतियोंपर मेरा विश्वास है। मैं उ विज्ञानका भक्त हूं जिसका आधार तर्क और न्यायपर है।

यदि कोई दूसरा प्राणी यही घटना मुझसे बयान करता तो मुझे उसपर विश्वास करनेमें बहुत संकोच होता किन्तु मैं जो कुछ बयान कर रहा हूं वह सत्य घटना है। यदि मेरे इस अश्वासनपर भी कोई उसपर अविश्वास करे तो उसकी मानसिक दुर्बलता और विचारोंकी संकीर्णता है।

यात्राका सातवां वर्ष था और ज्येष्ठका महीना। मैं हिमालय के दामनमें ज्ञानसरोवरके तटपर हरी हरी घासपर लेटा हुआ था। ऋतु अत्यन्त सुहावना था। ज्ञानसरोवरके स्वच्छ निर्मल जलमें आकाश और पर्वतश्रेणीका प्रतिविम्ब, जलपक्षियोंका पानीपर तैरना, शुभ्र-हिमश्रेणीका सूर्यके प्रकाशसे चमकना आदि दृश्य ऐसे मनोहर थे कि मैं अत्मोल्लास से विव्हल होगया। मैंने स्विटजर्लैंड और अमेरिकाके बहुप्रशंसित दृश्य देखे हैं पर उनमें ये शांतिप्रद शोभा कहां! मानवबुद्धिने उनके प्राकृतिक सौंदर्यको अपनी कृत्रिमतासे कलंकित कर दिया है। मैं तल्लीन हो कर इस स्वर्गीय आनन्दका उपभोग कर रहा था कि सहसा मेरी दृष्टि एक सिंहपर जा पड़ी जो मन्दगतिसे कदम बढ़ाता हुआ मेरी ओर आ रहा था। उसे देखतेही मेरा खून सूख गया, होश उड़गये। ऐसा बृहदाकार भयंकर जंतु मेरी नजरसे न गुजरा था। वहां ज्ञानसरोवरके अतिरिक्त कोई ऐसा स्थान नहीं था जहां भागकर अपनी जान बचाता। मैं तैरनेमें कुशल हूं पर मैं ऐसा भयभीत हो गया कि अपने स्थानसे हिल न सका। मेरे अङ्ग-प्रत्यंग मेरे काबूसे

बाहर थे। समझ गया कि मेरी जिन्दगी यहीं तक थी। इस शेरके पंजेसे बचनेकी कोई आशा न थी। अकस्मात मुझे स्मरण हुआ कि मेरी जेबमें एक पिस्तौल गोलियोंसे भरी हुई रखी है, जो मैंने आत्मरक्षाके लिये चलते समय साथ ले लिया था, और अब तक प्राणपणसे इसकी रक्षा करता आया था। आश्चर्य है कि इतनी देर तक मेरी स्मृति कहां सोई रही। मैंने तुरंत ही पिस्तौल निकाली और निकट था कि शेरपर वार करूं कि मेरे कानोंमें यह शब्द सुनाई दिये, "मुसाफिर, ईश्वरके लिये वार न करना अन्यथा तुझे दुख होगा। सिंहराज से तुझे हानि न पहुंचेगी।"

मैंने चकित होकर पीछेकी ओर देखा तो एक युवती रमणी आती हुई दिखाई दी। उसके एक हाथमें सोनेका लोटा था और दूसरेमें एक तश्तरी। मैंने अर्मनीकी हूरें और काहक़ाफ़ की परियां देखी हैं, पर हिमांचल पर्वतकी यह अप्सरा मैंने एकही बार देखी और उसका चित्र आज तक हृदय-पट पर खिंचा हुआ है। मुझे स्मरण नहीं कि 'रफैल' या 'कोरेजि-यो' ने भी कभी ऐसा चित्र खींचा हो। 'वैंडाइक' और 'रमब्रां-ड' के आकृतिचित्रोंमें भी ऐसा मनोहर छवि नहीं देखी। पिस्तौल मेरे हाथसे गिर पड़ी। कोई दूसरा शक्ति इस समय मुझे अपनी भयावह परिस्थिति से निश्चिन्त न कर सकती थी।

मैं उस सुन्दरीकी ओर देखही रहा था कि वह सिंहके

पास आई। सिंह उसे देखते ही खड़ा हो गया और मेरी ओर सशंक नेत्रोंसे देखकर मेघकी भांति गर्जा। रमणीने एक रुमाल निकाल कर उसका मुंह पोंछा और फिर लोटेसे दूध उंडेल कर उसके सामने रख दिया। सिंह दूध पीने लगा मेरे विस्मयकी अब कोई सीमा न थी। चकित था कि यह कोई तिलिस्म है या जादू। व्यवहार-लोकमें हूं अथवा विचार-लोक में, सोता हूं या जागता। मैंने बहुधा सरकसोंमें पालतू शेर देखे हैं किन्तु उन्हें काबूमें रखनेके लिये किन किन रक्षा-विधानोंसे काम लिया जाता है। उसके प्रतिकूल ये मांसाहारी पशु उस रमणीके सन्मुख इस भांति लेटा हुआ है मानों वह सिंहके योनिमें कोई मृग-शावक है। मनमें प्रश्न हुआ ? सुन्दरी में कौनसी चमत्कारित शक्ति है जिसने सिंहको इस प्रकार वशीभूत कर लिया है। क्या पशु भी अपने हृदयमें कोमल और रसिक-भाव छिपाये रखते हैं ? कहते हैं कि महुअर की अलाप काले नागको भी मस्त कर देती है। जब ध्वनिमें ये सिद्धि है तो सौन्दर्यकी शक्तिका अनुमान कौन कर सकता है। रूप लालित्य संसारका सबसे अमूल्य रत्न है। प्रकृतिकी रचना-नैपुण्यका सर्वश्रेष्ठ आदर्श है।

जब सिंह दूध पी चुका तो सुन्दरीने रुमालसे फिर उसका मुंह पोंछा और उसका सर अपने जांघपर रख उसे थपकियां देने लगी। सिंह पूंछ हिलाता था और सुन्दरीकी अरुणवर्ण हथेलियों को चाटता था। थोड़ी देरके बाद दोनों एक गुफा

में अन्तर्हित हो गये। मुझे भी धुन सवार हुई कि किसी प्रकार इस तिलिस्मको खोलूं, इस रहस्यका उद्घाटन करूं। जब दोनों अदृश्य हो गये तो मैं भी उठा और दबे पांव उस गुफाके द्वार तक जा पहुंचा। भयसे मेरे शरीरकी बोटी बोटी कांप रही थी मगर इस रहस्यपटको खोलनेकी उत्सुकता भय को दबाये हुये थी। मैंने गुफाके भीतर झांका तो क्या देखता हूं कि पृथ्वीपर ज़रीका फर्श बिछा हुआ है और कारचोबी गावतकिये लगे हुये हैं। सिंह मसनदपर गर्वसे बैठा हुआ है। सोने चांदीके पात्र, सुन्दर चित्र, फूलोंके गमले सभी अपने अपने स्थानपर सजे हुये हैं और वह गुफा राजभवनको भी लज्जित कर रही है।

द्वारपर मेरी परछाईं देखकर वह सुन्दरी बाहर निकल आई और मुझसे कहा—"यात्री तू कौन है और इधर क्योंकर आ निकला?"

कितनी मनोहर ध्वनि थी। मैंने अबकी बार समीपसे देखा तो सुन्दरीका मुख कुम्हलाया हुआ था। उसके नेत्रोंसे निराशा झलक रही थी, उसके स्वरमें भी करुणा और व्यथाकी खटक थी। मैंने उत्तर दिया—"देवी, मैं यूरोप का निवासी हूं, यहां देशाटन करने आया हूं। मेरा परम सौभाग्य है कि आपसे सम्भाषण करनेका गौरव प्राप्त हुआ।" सुन्दरीके गुलाबसे ओठोंपर मधुर मुसकरानकी झलक दिखाई दी, उसमें कुछ कुटिल हास्यका भी अंश था। कदाचित यह

मेरे इस अस्वाभाविक वाक्य-प्रणालीका द्योतक था। तू विदेश से यहां आया है। आतिथ्यसत्कार हमारा कर्त्तव्य है मैं आज तेरा निमंत्रण करती हूं, स्वीकार कर।

मैंने अवसर देखकर उत्तर दिया—"आपकी यह कृपा मेरे लिये गौरवकी बात है। पर इस रहस्यने मेरी भूख प्यास बंद कर दी है। क्या मैं आशा करूं कि आप इसपर कुछ प्रकाश डालेंगी ?"

सुन्दरीने ठंडी सांस लेकर कहा—"मेरी रामकहानी विपत्तिकी एक बड़ी कथा है, तुझे सुनकर दुःख होगा।" किन्तु मैंने जब बहुत आग्रह किया तो उसने मुझे फर्शपर बैठनेका संकेत किया और अपना वृतांत सुनाने लगी-

"मैं काश्मीर देशकी रहनेवाली राजकन्या हूं। मेरा विवाह एक राजपूत योद्धासे हुआ था। उनका नाम नृसिंहदेव था। हम दोनों बड़े आनन्दसे जीवन व्यतीत करते थे। संसारका सर्वोत्तम पदार्थ रूप है, दूसरा स्वास्थ्य, और तीसरा धन, परमात्माने हमको ये तीनोंही पदार्थ प्रचुर परिमाणमें प्रदान किये थे। खेद है कि मैं उनसे मुलाकात नहीं करा सकती। ऐसा साहसी, ऐसा सुन्दर, ऐसा विद्व पुरुष सारे कश्मीरमें न था। मैं उनकी आराधना करती थी। उनका मेरे ऊपर अपार स्नेह था। कई वर्षों तक हमारा जीवन एक जलस्रोतकी भांति वृक्ष-पुञ्जों और हरे हरे मैदानोंमें प्रवाहित होता रहा।

मेरे पड़ोसमें एक मन्दिर था। उसके पुजारी एक पण्डित

श्रीधर थे। हम दोनों प्रातःकाल तथा संध्या समय उस मन्दिरमें उपासनाके लिये जाते। मेरे स्वामी कृष्णके भक्त थे। मन्दिर एक सुरम्य सागरके तटपर बना हुआ था। वहांकी परिष्कृत मन्द समीर चित्तको पुलकित कर देती थी। इसी लिये हम उपासनाके पश्चात् भी वहां घंटों वायु-सेवन करते रहते थे। श्रीधर बड़े विद्वान्, वेदोंके ज्ञाता, शास्त्रोंके जानने वाले थे। कृष्णपर उनकी भी अविरल भक्ति थी। समस्त काश्मीरमें उनके पाण्डित्यकी चर्चा थी। वह बड़े संयमी, सन्तोषी, आत्मज्ञानी पुरुष थे। उनके नेत्रोंसे शांतिकी ज्योति-रेखायें निकलती हुई मालूम होती थी। सदैव परोपकारमें मग्न रहते थे। उनकी वाणीने कभी किसीका हृदय नहीं दुखाया। उनका हृदय नित्य परवेदनासे पीडित रहता था।

पण्डित श्रीधर मेरे पतिदेवसे लगभग दस वर्ग बड़े थे, पर उनकी धर्मपत्नी विद्याधरी मेरी समवयस्का थी। हम दोनों सहेलियां थीं। विद्याधरी अत्यन्त गंभीर, शांत प्रकृतिकी स्त्री थी। यद्यपि रंगरूपमें वह रानी थी पर वह अपनी अवस्थासे सन्तुष्ट थी। अपने पतिको वह देवतुल्य समझती थी।

श्रावणका महीना था आकाशपर काले काले बादल मंडला रहे थे मानो काजलके पर्वत उड़े जा रहे हैं। झरनोंसे दूधकी धारें निकल रही थी और चारों ओर हरियाली छाई हुई थी। नन्हीं नन्ही फुहारें पड़ रही थीं मानो स्वर्गसे अमृत की बूंदे टपक रही हैं। जलकी बूंदें फूलों और पत्तियोंके गले

म चमक रही थीं। चित्तको अभिलाषाओंसे उभारनेवाला समा छाया हुआ था। यह वह समय है जब रमणियोंको विदेशगामी प्रियतमकी याद रुलाने लगती है, जब हृदय किसीसे आलिङ्गन करनेके लिये व्यग्र हो जाता है। जब सूनी सेज देखकर कलेजेमें हूकसी उठती है। इसी ऋतुमें विरहकी मारी वियोगिनियां अपनी बीमारीका बहाना करती हैं जिसमें उसका पति उसे देखने आवे। इसी ऋतुमें मालीकी कन्या धानी साड़ी पहनकर क्यारियोंमें अठिलाती हुई चम्पा और बेलेके फूलोंसे आंचल भरती है, क्योंकि हार और गजरोंकी मांग बहुत बढ़ जाती है। मैं और विद्याधरी ऊपर छतपर बैठी हुई वर्षा-ऋतुकी बहार देख रही थी और कालिदासका ऋतुसंहार पढ़ती थी कि इतनेमें मेरे पतिने आकर कहा—"आज बड़ा सुहाना दिन है। झूला झूलनेमें बड़ा आनन्द आवेगा।" सावनमें झूला झूलनेका प्रस्ताव क्योंकर रद्द किया जा सकता था। इन दिनों प्रत्येक रमणीका चित्त आपही आप झूला झूलनेके लिये विकल हो जाता है। जब वनके वृक्ष झूले झूलते हैं, जलकी तरंगे झूला झूलती हों और गगन-मण्डल के मेघ झूला झूलते हों, जब सारी प्रकृति आन्दोलित हो रही हो तो रमणीका कोमल-हृदय क्यों न चञ्चल हो जाय! विद्याधरी भी राजी होगई रेशमकी डोरियाँ कदमकी डालपर पड़ गई, चन्दनका पटरा रख दिया गया और मैं विद्याधरीके साथ झूला झूलने चली। जिस प्रकार ज्ञानसरोवर पवित्र जलसे

परिपूर्ण हो रहा है उसी भांति हमारे हृदय पवित्र आनन्दसे परिपूर्ण थे। किन्तु शोक! वह कदाचित मेरे सौभाग्यचन्द्रकी अन्तिम झलक थी। मैं झूलेके पास पहुंचकर पटरेपर जा बैठी, किन्तु कोमलांगी विद्याधरी ऊपर न आसकी। वह कई बार उचकी परन्तु पटरे तक न आसकी। तब मेरे पतिदेवने सहारा देनेके लिये उसकी बांह पकड़ ली। उस समय उनके नेत्रोंमें एक विचित्र तृष्णाकी झलक थी, और मुखपर एक विचित्र आतुरता। वह धीमे स्वरोंमें मल्हार गा रहे थे। किन्तु विद्याधरी जब पटरेपर आई तो उसका मुख डूबते हुए सूर्यकी भांति लाल हो रहा था नेत्र अरुणवर्ण हो रहे थे। उसने पतिदेवकी ओर क्रोधोन्मत्त होकर कहा—

'तूने कामके वश होकर मेरे शरीरमें हाथ लगाया है। मैं अपने पातिव्रतके बलसे तुझे शाप देती हूं कि तू इसी क्षण पशु हो जा।'

यह कहते ही विद्याधरीने अपने गलेसे रुद्राक्षकी माला निकालकर मेरे पतिदेवके ऊपर फेंक दिया और तत्क्षण ही पटरेके समीप मेरे पतिदेवके स्थानपर एक विशाल सिंह दिखाई दिया।

(२)

ऐ मुसाफिर, अपने प्रिय पतिदेवताकी यह गति देखकर मेरा रक्त सूख गया, और कलेजेपर बिजली सी आगिरी। मैं विद्याधरीके पैरोंसे लिपट गई और फूट फूट कर रोने लगी।

उस समय अपनी आंखोंसे देखकर अनुभव हुआ कि पातिव्रत की महिमा कितनी प्रबल है। ऐसी घटनाएं मैंने पुराणोंमें पढ़ी थी, परन्तु मुझे विश्वास न था कि वर्तमान कालमें जब कि स्त्री पुरुषके संबन्ध में स्वार्थकी मात्रा दिनों दिन अधिक होती जाती है पातिव्रत धर्ममें यह प्रभाव होगा। परन्तु यह नहीं कह सकती कि विद्याधरीके विचार कहां तक ठीक थे। मेरे पति विद्याधरीको सदैव बहिन कहकर संबोधित करते थे। वह अत्यन्त स्वरूपवान थे और रूपवान पुरुषकी स्त्रीका जीवन बहुत सुखमय नहीं होता, पर मुझे उनपर संशय करनेका अवसर कभी नहीं मिला। वह स्त्रीव्रतधर्मका वैसाही पालन करते थे जैसे सती अपने धर्मकी। उनकी दृष्टिमें कुचेष्टा न थी और विचार अत्यन्त उज्ज्वल और पवित्र थे। यहां तक कि कालिदास की शृंगारमय कविता भी उन्हें प्रिय न थी। मगर कामके मर्मभेदी वाणोंसे कौन बचा है। जिस कामने शिव ब्रह्मा जैसे तपस्वियोंकी तपस्या भंग करदी, जिस कामने नारद और विश्वामित्र जैसे ऋषियोंके माथेपर कलंककी टीका लगा दी, वह काम सब कुछ कर सकता है। सम्भव है कि सुरापानने उद्दीपकऋतुके साथ मिलकर उनके चित्तको विचलित कर दिया हो। मेरा गुमान तो यह है कि यह विद्याधरीकी केवल भ्रांति थी। जो कुछ भी हो उसने शाप दे दिया। उस समय मेरे मनमें भी उत्तेजना हुई कि जिस शक्तिका विद्याधरी को गर्व है क्या वह शक्ति मुझमें नहीं है? क्या मैं पतिव्रता

नहीं हूं ? किन्तु हा ! मैंने कितना ही चाहा कि आपके शब्द मुँहसे निकालूं, पर मेरी जबान बन्द होगई। वह अखण्ड विश्वास जो विद्याधरीको अपने पातिव्रतपर था मुझे न था। विवशताने मेरे प्रतिकारके आवेगको शांत कर दिया। मैंने बड़ी दीनताके साथ कहा—"बहिन तुमने यह क्या किया ?"

विद्याधरीने निर्दय होकर कहा—'मैंने कुछ नहीं किया, यह उसके कर्मोंका फल है'।

मैं—तुम्हें छोड़कर और किसकी शरण जाऊं, क्या तुम इतनी दया न करोगी ?

विद्याधरी—मेरे किये अब कुछ नहीं हो सकता।

मैं—देवि, तुम पातिव्रतधारिणी हो, तुम्हारे वाक्यकी महिमा अपार है। तुम्हारा क्रोध यदि मनुष्यसे पशु बना सकता है तो क्या तुम्हारी दया पशुसे मनुष्य न बना सकेगी !

विद्याधरी—प्रायश्चित करो इसके अतिरिक्त उद्धारका और कोई उपाय नहीं।

ऐ मुसाफिर, मैं राजपूतकी कन्या हूं। मैंने विद्याधरीसे अधिक अनुनय विनय नहीं किया। उसका हृदय दयाका आगार था। यदि मैं उसके चरणोंपर शीश रख देती तो कदाचित उसे मुझपर दया आ जाती। किन्तु राजपूतकी कन्या इतना अपमान नहीं सह सकती। वह घृणाके घाव सह सकती है क्रोधकी अग्नि सह सकती है, पर दयाका बोझ उससे नहीं उठाया जाता। मैंने पलंगसे उतरकर पतिदेवके

चरणोंपर सिर झुकाया और उन्हें साथ लिये हुए अपने मकान चली आई।

(३)

कई महीने गुजर गये। मैं पतिदेवकी सेवा सुश्रूषामें तन मन से व्यस्त रहती। यद्यपि उनकी जिह्वा वाणीविहीन होगई थी पर उनकी आकृतिसे स्पष्ट प्रगट होता था कि वह अपने कर्मसे लज्जित थे। यद्यपि उनका रूपान्तर हो गया था पर उन्हें मांससे अत्यन्त घृणा थी। मेरे पशुशालामें सैकड़ों गाय भैंसें थीं किन्तु शेरसिंहने कभी किसीकी ओर आंख उठाकर भी न देखा। मैं उन्हें दोनों वेला दूध पिलाती और संध्या समय उन्हें साथ लेकर पहाड़ियोंकी सैर कराती। मेरे मनमें न जाने क्यों धैर्य और साहस का इतना संचार होगया था कि मुझे अपनी दशा असह्य न ज्ञात पड़ती थी। मुझे निश्चय था कि शीघ्र ही इस विपत्तिका अन्त भी होगा।

इन्हीं दिनों हरिद्वारमें गंगास्नानका मेला लगा। मेरे नगर से यात्रियोंका एक समूह हरिद्वार चला। मैं भी उनके साथ हो ली। दीन दुखीजनोंको दान देनेके लिए रुपये और अशर्फियोंकी थैलियां साथ ले लीं। मैं प्रायश्चित करने जारही थी इसलिये पैदल ही यात्रा करनेका निश्चय कर लिया। लगभग एक महीनेमें हरिद्वार जा पहुंची। यहां भारतवर्षके प्रत्येक प्रांतसे असंख्य यात्री आये हुए थे। संन्यासियों और तपस्वियों की संख्या गृहस्थोंसे कुछ ही कम होगी। धर्मशालोंमें रहनेका

स्थान न मिलता था। गंगातटपर पर्वतोंकी गोदमें मैदानोंके वक्ष-स्थलपर जहाँ देखिये आदमी ही आदमी नज़र आते थे। दूरसे वह छोटे छोटे खिलौनेकी भांति दिखाई देते थे। मीलों तक आदमियोंका फर्शसा बिछा हुआ था। भजन और कीर्तन की ध्वनि नित्य कानोंमें आती रहती थी। हृदयमें असीम शुद्धि गंगाकी लहरोंकी भांति लहरें मारती थी। वहांका जल, वायु, आकाश शुद्ध था।

मुझे हरिद्वार आये तीन दिन व्यतीत हुये थे। प्रभातका समय था। मैं गंगामें खड़ी स्नान कर रही थी। सहसा मेरी दृष्टि ऊपरकी ओर उठी तो मैंने किसी आदमीको पुलकी ओर झांकते देखा! अकस्मात् उस मनुष्यका पांव ऊपर उठ गया और सैकड़ों गजकी ऊंचाईसे गंगामें गिर पड़ा। सहस्रों आंखें यह दृश्य देख रही थीं, पर किसीका साहस न हुआ कि उस अभागे मनुष्यकी जान बचाये। भारतवर्षके अतिरिक्त ऐसा सहवेदना-शून्य और कौन देश होगा! और यह वह देश है जहां परमार्थ मनुष्यका परम कर्त्तव्य बताया गया है। लोग बैठे हुए अपंगुओंकी भांति तमाशा देख रहे थे। सभी हतबुद्धिसे हो रहे थे धारा प्रबल-वेगसे प्रवाहित थी और जल बरफसे भी अधिक शीतल। मैंने देखा कि वह गरीब धाराके साथ बहता चला जाता था। यह हृदयविदारक दृश्य मुझसे न देखा गया। मैं तैरनेमें अभ्यस्थ थी। मैंने ईश्वरका नाम लिया और मनको दृढ़ करके धाराके साथ तैरने लगी। ज्यों ज्यों मैं आगे बढ़ती थी

वह मनुष्य मुझसे दूर होता जाता था। यहांतक कि मेरा सारा अङ्ग ठंढसे शून्य हो गये।

मैंने कई बार चट्टानोंको पकड़कर दम लिया, कई बार पत्थरोंसे टकराई। मेरे हाथ ही न उठते थे। सारा शरीर बर्फ का ढांचा सा बना हुआ था। मेरे अङ्ग ऐसे गतिहीन होगये कि मैं भी धाराके साथ बहने लगी और मुझे विश्वास होगया कि गंगामाताके उदरहीमें मेरी जल-समाधि होगी। अकस्मात् मैंने उस पुरुषकी लाशको एक चट्टानपर रुकते देखा। मेरा हौसला बंध गया। शरीरमें एक विचित्र स्फूर्तिका अनुभव हुआ। मैं जोर लगाकर प्राणपणसे उस चट्टानपर जा पहुंची और उसका हाथ पकड़कर खींचा। मेरा कलेजा धकसे हो गया। यह श्रीधर पण्डित थे।

ऐ मुसाफिर, मैंने यह काम प्राणोंको हथेलीपर रखकर पूरा किया। जिस समय मैं पण्डित श्रीधरकी अर्ध-मृतदेह लिये तटपर आई तो सहस्रों मनुष्योंकी जयध्वनिसे आकाश गूंज उठा। कितने ही मनुष्योंने मेरे चरणोंपर सिर झुकाये। अभी लोग श्रीधरको होशमें लानेके उपाय करही रहे थे कि विद्याधरी मेरे सामने आकर खड़ी होगई। उसका मुख प्रभात के चन्द्रकी भांति कांतिहीन होरहा था होंठ सूखे हुए, बाल बिखरे हुये। आंखोंसे आंसुओंकी झड़ी लगी हुई थी वह जोर से हांफ रही थी, दौड़कर मेरे पैरोंसे चिमट गई, किन्तु दिल खोलकर नहीं, निर्मल भावसे नहीं। घमण्डकी गर्वसे भरी हुई

दूसरेकी ग्लानिसे झुकी हुई। विद्याधरीके मुंहसे बात न निकलती थी। केवल इतना बोली—'बहिन ईश्वर तुमको इस सत्कार्यका फल दें'।

(४)

ऐ मुसाफिर, यह शुभकामना विद्याधरीके अन्तःस्थलसे निकली थी। मैं उसके मुंहसे यह आशिर्वाद सुनकर फूली न समाई। मुझे विश्वास होगया कि अबकी बार जब मैं अपने मकानपर पहुंचूंगी तो पतिदेव मुस्कुराते हुए मुझसे गले मिलनेके लिये द्वारपर आयेंगे। इस विचारसे मेरे हृदयमें गुद गुदी सी होने लगी। मैं शीघ्र ही स्वदेशको चल पड़ी। उत्कण्ठा मेरे कदम बढ़ाये जाती थी। मैं दिनमें भी चलती और रातको चलती मगर पैर थकना ही न जानते थे। यह आशा कि वह मोहनीमूर्ति द्वारपर मेरा स्वागत करनेके लिये खड़ी होगी। मेरे पैरोंमें पर सा लगाये हुये थी। एक महीनेकी मंजिल मैंने एक सप्ताहमें तय की। पर शोक! जब मकानके पास पहुंची तो उस घरको देखकर दिल बैठ गया और हिम्मत न पड़ी कि अन्दर कदम रक्खूं। मैं चौखटपर बैठ कर देर तक विलाप करती रही। न किसी नौकरका पता था न कहीं पाले हुये पशु ही दिखाई देते थे। द्वारपर धूल उड़ रही थी। जान पड़ता था कि पक्षी घोसलेसे उड़ गया है, कलेजेपर पत्थरकी सिल रख कर भीतर गई तो क्या देखती हूं कि मेरा प्यारा सिंह आंगनमें मोटी मोटी जञ्जीरोंसे बंधा हुआ है। इतना दुर्बल होगया

कि उसके कूल्होंकी हड्डियां दिखाई दे रही हैं। ऊपर नीचे जिधर देखती थी उजाड़ सा मालूम होता था। मुझे देखते ही शेरसिंहने पूंछ हिलाई और सहसा उनकी आखें दीपककी भांति चमक उठीं। मैं दौड़कर उसके गलेसे लिपट गई, समझ गई कि नौकरोंने दगा की। घरकी सामग्रियोंका कहीं पता न था। सोने चांदीके बहुमूल्य पात्र, फर्श आदि सब गायब थे। हाय हत्यारे मेरे आभूषणोंका संदूक भी उठा ले गये। इस अपहरण ने मुसीबतका प्याला भर दिया। शायद पहले उन्होंने शेर-सिंहको जकड़कर बांध दिया होगा फिर खूब दिल खोलकर नोच खसोट की होगी। कैसी विडम्बना थी कि धर्म लूटने गई थी और धन लुटा बैठी। दरिद्रताने पहली बार अपना भयङ्कर रूप दिखाया।

ऐ मुसाफिर, इस प्रकार लुट जानेके बाद वह स्थान आंखों में कांटेकी तरह खटकने लगा। यही वह स्थान था जहां हमने आनन्दके दिन काटे थे। इन्हीं क्यारियोंमें हमने मृगोंकी भांति कलोल किये थे। प्रत्येक वस्तुसे कोई न कोई स्मृति सम्बन्धित थी। उन दिनोंको याद करके आंखोंसे रक्तके आंसू बहने लगते थे। बसन्तका ऋतु था, बौरकी महकसे वायु सुगंधित हो रही थी। महुयेके वृक्षोंके नीचे परियोंके शयन करनेके लिये मोतियों की शय्या बिछी हुई थी, करौंदों और नीबूके फूलोंकी सुगन्धि से चित्त प्रसन्न हो जाता था। मैंने अपनी जन्म-भूमिको सदैव के लिये त्याग दिया। मेरी आंखोंसे आंसुओंकी एक बूंद भी

न गिरी। जिस जन्मभूमिकी याद यावज्जीवन हृदयको व्यथित करती रहती है उससे मैंने यों मुंह मोड़ लिया मानो कोई बंदी कारागारसे मुक्त हो जाय। एक सप्ताह तक मैं चारों ओर भ्रमण करके अपने भावी निवासस्थानका निश्चय करती रही अन्तमें सिन्धु नदीके किनारे एक निर्जन स्थान मुझे पसन्द आया। यहां एक प्राचीन मन्दिर था। शायद किसी समयमें वहां देवताओंका वास था, पर इस समय वह बिल्कुल उजाड़ था। देवताओंने कालको विजय किया हो पर समय-चक्रको नहीं। शनैः शनैः मुझे इस स्थानसे प्रेम हो गया और वह स्थान पथिकोंके लिये धर्मशाला बन गया।

मुझे यहां रहते तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वर्षा ऋतुमें एक दिन संध्याके समय मुझे मन्दिरके सामनेसे एक पुरुष घोड़ेपर सवार जाता दिखाई दिया। मन्दिरसे प्रायः दो सौ गजकी दूरीपर एक रमणीक सागर था, उसके किनारे चनार वृक्षोंके झुरमुट थे। वह सवार उस झुरमुटमें जाकर अदृश्य हो गया। अन्धकार बढ़ता जाता था। एक क्षणके बाद मुझे उस ओरसे किसी मनुष्यकी चीत्कार सुनाई दी फिर बन्दूकोंके शब्द सुनाई दिये और उनके ध्वनिसे पहाड़ गूंज उठा।

ऐ मुसाफिर, यह दृश्य देखकर मुझे किसी भीषण घटना का सन्देह हुआ। मैं तुरन्त उठ खड़ी हुई। एक कटार हाथ में ली और उस सागरकी ओर चल दी।

अब मूसलाधार वर्षा होने लगी थी, मानो आजके बाद

फिर कभी न बरसेगा। रह रहकर गर्जनकी ऐसी भयङ्कर ध्वनि उठती थी मानो सारे पहाड़ आपसमें टकरा गये हों। बिजलीकी चमक ऐसी तीव्र थी मानो संसार-व्यापी प्रकाश सिमटकर एकत्र हो गया हो। अन्धकारका यह हाल था मानो सहस्त्रों अमावस्याकी रातें गले मिल रही हों। मैं कमर तक पानीमें चलती, दिलको सम्हाले हुए आगे बढ़ती जाती थी अन्तमें सागरके समीप आ पहुंची। बिजलीकी चमकने दीपक का काम किया। सागरके किनारे एक बड़ीसी गुफा थी। इस समय उस गुफामेंसे प्रकाश-ज्योति बाहर आती हुई दिखाई देती थी। मैंने भीतरकी ओर झांका तो क्या देखती हूं कि एक बड़ा अलाव जल रहा है उसके चारों ओर बहुतसे आदमी खड़े हुये हैं और एक स्त्री आग्नेय नेत्रोंसे घूर घूरकर कह रही है, "मैं अपने पतिके साथ उसे भी जलाकर भस्म कर दूंगी।" मेरे कुतूहलकी कोई सीमा न रही। मैंने सांस बन्द कर ली और हतबुद्धिकी भांति यह कौतुक देखने लगी। उस स्त्रीके सामने एक रक्तसे लिपटी हुई लाश पड़ी थी, और लाशके समीपही एक मनुष्य रस्सियोंसे बंधा हुआ सर झुकाये बैठा था। मैंने अनुमान किया कि यह वही अश्वारोही पथिक है जिसपर इन डाकुओंने आघात किया था। यह शव डाकू सरदारका है, और यह स्त्री डाकूकी पत्नी है। उसके सिरके बाल बिखरे हुये थे और आंखोंसे अङ्गारे निकल रहे थे। हमारे चित्रकारोंने क्रोधको पुरुष कल्पित किया है। मेरे विचारमें स्त्रीका क्रोध

इससे कहीं घातक, कही विध्वंसकारी होता है। क्रोधोन्मत्त होकर वह कोमलांगी सुन्दरी ज्वालशिखर बन जाती।

उस स्त्रीने फिर दांत पीसकर कहा, "मै अपने पतिके साथ इसे भी जलाकर भस्म कर दूंगी।" यह कह कर उसने उस रस्सियोंसे बंधे हुये पुरुषको घसीटा और दहकती हुई चितामें डाल दिया। आह! कितना भयंङ्कर, कितना रोमांचकारी दृश्य था। स्त्री ही अपने द्वेषकी अग्नि शांत करनेमें इतनी पिशाचिनी हो सकती है। मेरा रक्त खौलने लगा। अब एक क्षण भी विलम्ब करनेका अवसर न था। मैने कटार खींच ली डाकू चौंककर तितर बितर हो गये, समझे मेरे साथ और लोग भी होंगे। मैं बेधड़क चितामें घुस गई और क्षणमात्रमें उस अभागे पुरुषको अग्निके मुखसे निकाल लाई। अभी केवल उसके वस्त्र ही जले थे। जैसे सर्प अपना शिकार छिन जानेसे फुफकारता हुआ लपकता है उसी प्रकार गरजती हुई लपटें मेरे पीछे दौड़ीं। ऐसा प्रतीत होता था कि अग्नि भी उसके रक्त की प्यासी हो रही थी।

इतनेमें डाकू सम्हल गये और आहत सरदारकी पत्नी पिशाचिनीकी भाँति मुंह खोले मुझपर झपटी। समीप था कि ये हत्यारे मेरी बोटियां करदें कि इतनेमें गुफाके द्वार पर मेघ गर्जन की सी ध्वनि सुनाई दी और शेरसिंह रौद्ररूप धारण किये हुये भीतर पहुंचे। उनका भयङ्कर रूप देखते ही डाकू अपनी अपनी जान लेकर भागे। केवल डाकू सरदारकी पत्नी

स्तम्भित सी अपने स्थानपर खड़ी रही। एकाएक उसने अपने पतिकी शव उठाई और उसे लेकर चितामें बैठ गई। देखते देखते उसका भयङ्कर रूप अग्नि ज्वालामें विलीन हो गया। अब मैंने उस बंधे हुये मनुष्यकी ओर देखा तो मेरा हृदय उछल पड़ा। यह पण्डित श्रीधर थे। मुझे देखते ही सिर झुका लिया और रोने लगे। मैं उनके समाचार पूछ ही रही थी कि उसी गुफाके एक कोनेसे किसीके कराहनेका शब्द सुनाई दिया। जाकर देखा तो एक सुन्दर युवक रक्तसे लतपत पड़ा था। मैंने उसे देखते ही पहचान लिया। उसका पुरुषवेष उसे छिपा न सका। यह विद्याधरी थी। मर्दोंके वस्त्र उसपर खूब सजते थे। वह लज्जा और ग्लानिकी मूर्ति बनी हुई थी। वह मेरे पैरोंपर गिर पड़ी पर मुंहसे कुछ न बोली।

उस गुफामें पल भर भी ठहरना अत्यन्त शङ्काप्रद था। न जाने कब डाकू फिर सशस्त्र होकर आ जांय। उधर चिताग्नि भी शांत होने लगी और उस सतीकी भीषण काया अत्यन्त तेज रूप धारण करके हमारे नेत्रोंके सामने ताण्डव क्रीड़ा करने लगी। मैं बड़ी चिन्तामें पड़ी कि इन दोनों प्राणियोंको कैसे वहांसे निकालूं। दोनों ही रक्तसे चूर थे। शेरसिंहने मेरे असमंजसको ताड़ लिया। रूपान्तर हो जानेके बाद उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र हो गई थी। उन्होंने मुझे संकेत किया कि दोनोंको हमारी पीठपर बिठा दो। पहले तो मैं उनका आशय न समझी, पर जब उन्होंने संकेतको बार बार दुहराया तो मैं

समझ गई। गूंगोंके घरवाले ही गूंगोंकी बातें खूब समझते हैं। मैंने पण्डित श्रीधरको गोदमें उठाकर शेरसिंहकी पीठ पर बिठा दिया। उनके पीछे विद्याधरीको भी बिठाया। नन्हा बालक भालूकी पीठपर बैठकर जितना डरता है उससे कहीं ज्यादा यह दोनों प्राणी भयभीत हो रहे थे। चिताग्निके क्षीण प्रकाशमें उनके भयविकृत मुख देखकर करुण विनोद होता था। अस्तु मैं इन दोनों प्राणियोंको साथ लेकर गुफासे निकली,और फिर उसी तिमिरसागरको पार करके मन्दिर आ पहुंची।

मैंने एक सप्ताह तक उनकी यथाशक्ति सेवा सत्कार की। जब यह भली भांति स्वस्थ हो गये तो मैंने उन्हें विदा किया। ये स्त्री पुरुष कई आदमियोंके साथ टेढ़ी जा रहे थे। यहांके राजा पण्डित श्रीधरके शिष्य हैं। पण्डित श्रीधरका घोड़ा आगे था विद्याधरी सवारीका अभ्यास न होनेके कारण पीछे थी, उनके दोनों रक्षक भी उसके साथ थे जब डाकुओंने पण्डित श्रीधर-को घेरा और पण्डितने पिस्तौलसे डाकू सरदारको गिराया तो कोलाहल सुनकर विद्याधरीने घोड़ा बढ़ाया। दोनों रक्षक तो जान लेकर भागे, विद्याधरीको डाकुओंने पुरुष समझ कर घायल कर दिया और तब दोनों प्राणियोंको बांधकर गुफामें डाल दिया। शेष बातें मैंने अपनी आंखों देखीं। यद्यपि यहांसे विदा होते समय विद्याधरीका रोम रोम मुझे आशीर्वाद दे रहा था। पर हा! अभी प्रायश्चित पूरा न हुआ था। इतना आत्मसमर्पण करके भी मैं सफल मनोरथ न हुई थी।

(५)

ऐ मुसाफिर, उस प्रान्तमें अब मेरा रहना कठिन होगया। डाकू बन्दूकें लिये हुए शेरसिंहकी तलाशमें घूमने लगे। विवश होकर एक दिन मैं वहांसे चल खड़ी हुई और दुर्गम पर्वतोंको पार करती हुई यहां आ निकली। यह स्थान मुझे ऐसा पसन्द आया कि मैंने इस गुफाको अपना घर बना लिया है। आज पूरे तीन वर्ष गुजरे जब मैंने पहले पहल ज्ञानसरोवरके दर्शन किये। उस समय भी यही ऋतु था। मैं ज्ञान सागरमें पानी भरने गई हुई थी, सहसा क्या देखती हूं कि एक युवक मुश्की घोड़ेपर सवार रत्न जडित आभूषण पहने हाथमें चमकता हुआ भाला लिये चला आता है। शेरसिंहको देखकर वह ठिठका और भाला सम्हालकर उनपर वार कर बैठा। तब शेरसिंहको भी क्रोध आया। उनके गरजकी ऐसी गगनभेदी ध्वनि उठी कि ज्ञानसागरका जल आन्दोलित हो गया और तुरन्त घोड़ेसे खींचकर उसकी छातीपर पंजे रख दिये। मैं घड़ा छोड़कर दौड़ी युवकका प्राणान्त होनेवाला ही था कि मैंने शेरसिंहके गलेमें हाथ डाल दिये और उनका सिर सहला कर क्रोध शान्त किया। मैंने उनका ऐसा भयङ्कर रूप कभी नहीं देखा था। मुझे स्वयं उनके पास जाते हुए डर लगता था पर मेरे मृदुवचनोंने अन्तमें उन्हें वशीभूत कर लिया, वह अलग खड़े होगये। युवककी छाती में गहरा घाव लगा था। उसे मैंने इसी गुफामें लाकर रखा और उसकी मरहम पट्टी करने

लगी। एक दिन मैं कुछ आवश्यक वस्तुयें लेनेके लिये उस कस्बेमें गई जिसके मन्दिरके कलश यहांसे दिखाई दे रहे हैं। मगर वहां सब दुकाने बन्द थीं। बाजारोंमें खाक उड़ रही थी। चारों ओर सियापा छाया हुआ था। मैं बहुत देरतक इधर उधर घूमती रही, किसी मनुष्यकी सूरत भी न दिखाई देती थी कि उससे वहांका सब समाचार पूछूं। ऐसा विदित होता था मानों यह अदृश्य जीवोंकी बस्ती है। सोच ही रही थी कि वापस चलूं कि घोडोंके टापोंकी ध्वनि कानोंमें आई और एक क्षणमें एक स्त्री सिरसे पैर तक काले वस्त्र धारण किये एक काले घोड़ेपर सवार आती हुई दिखाई दी। उसके पीछे कई सवार और प्यादे काली वर्दियां पहने आ रहे थे। अकस्मात उस सवार स्त्रीकी दृष्टि मुझपर पड़ी। उसने घोड़े को एड़ लगाई और मेरे निकट आकर कर्कश-स्वरमें बोली—"तू कौन है?" मैंने निर्भीक भावसे उत्तर दिया, "मैं ज्ञानसरोवरके तटपर रहती हूं। यहां बाजारमें कुछ सामग्रियां लेने आई थी किन्तु शहरमें किसीका पता नहीं।" उस स्त्रीने पीछेकी ओर देखकर कुछ संकेत किया और दो सवारोंने आगे बढ़कर मुझे पकड़ लिया, और मेरी बाहोंमें रस्सियां डाल दीं। मेरी समझमें न आता था कि मुझे किस अपराधका दण्ड दिया जा रहा है। बहुत पूछनेपर भी किसीने मेरे प्रश्नोंका उत्तर न दिया। हां, अनुमानसे यह प्रगट हुआ कि यह स्त्री यहांकी रानी है। मुझे अपने विषयमें तो कोई चिन्ता न थी पर चिन्ता

थी शेरसिंह की। वह अकेले घबरा रहे होंगे। भोजनका समय आ पहुंचा, कौन खिलावेगा। किस विपत्तिमें आ फंसो। नहीं मालूम विधाता अब मेरी क्या दुर्गति करेंगे। मुझ अभागिन को इस दशामें भी शांति नहीं। इन्हीं मलिन विचारोंमें मग्न मैं सवारोंके साथ आध घंटे तक चलती रही कि सामने एक ऊंची पहाड़ीपर एक विशाल भवन दिखाई दिया। ऊपर चढ़नेके लिये पत्थर काटकर चौड़े जीने बनाये गये थे। हम लोग ऊपर चढ़े। वहां सैकड़ों ही आदमी दिखाई दिये। किन्तु सबके सब काले वस्त्र धारण किये हुए थे। मै जिस कमरेमें लाकर रखी गई, वहां एक कुशासनके अतिरिक्त सजावटका और सामान न था। मैं जमीनपर बैठकर अपने नसीबको रोने लगी। जो कोई यहां आता था मुझपर करुण दृष्टिपात करके चुपचाप चला जाता था। थोड़ी देरमें रानी साहबा आकर उसी कुशासनपर बैठ गयी। यद्यपि उनकी अवस्था पचास वर्षसे अधिक थी परन्तु मुखपर अद्भुत कांति थी। मैंने अपने स्थानसे उठकर उनका सम्मान किया और हाथ बांधकर अपनी किस्मतका फैसला सुननेके लिये खड़ी हो गई।

[६]

ऐ मुसाफिर, रानी महोदयाके तेवर देखकर पहले तो मेरे प्राण सूख गये किन्तु जिस प्रकार चंदन जैसी कठोर वस्तुमें मनोहर सुगंधि छिपी होती है उसी प्रकार उनकी कर्कशता और कठोरताके नीचे मोमके सदृश हृदय छिपा हुआ था।

उनका युवा पुत्र थोड़े ही दिन पहले युवावस्था हीमें दाग दे गया था उसीके शोकमें सारा शहर मातम मना रहा था। मेरे पकड़े जानेका कारण यह था कि मैंने काले वस्त्र क्यों न धारण किये थे। यह वृतान्त सुनकर मै समझ गई कि जिस राजकुमारका शोक मनाया जा रहा है वह वही युवक है जो मेरी गुफामें पड़ा हुआ है। मैंने उनसे पूछा, 'राजकुमार मुश्की घोड़े पर तो सवार नहीं थे' ?

रानी—'हां हां, मुश्की घोड़ा था। उसे मैंने उनके लिये अरब देशसे मंगवा दिया था। क्या तूने उन्हें देखा है ?

मैं—हां देखा है।

रानीने पूछा—'कब' ?

मैं—जिस दिन वह शेरका शिकार खेलने गये थे।

रानी—क्या तेरे सामने ही शेरने उनपर चोट की थी ?

मैं—हां मेरी आंखोंके सामने।

रानी उत्सुक होकर खड़ी होकर खडी हो गई और बड़े दीन भावसे बोली—'तू उनकी लाशका पता लगा सकती है ?

मैं—ऐसा न कहिये, वह अमर हों। वह दो सप्ताहोंसे मेरे यहां मेहमान हैं।

रानी हर्षमय आश्चर्यसे बोली। 'मेरा रणधीर जीवित है ?

मैं—हां अब उनमें चलने फिरनेकी शक्ति आ गई है। रानी मेरे पैरोंपर गिर पड़ी।

तीसरे दिन अर्जुननगरकी कुछ औरही शोभा थी। वायु

आनन्दके मधुर स्वरसे गूंजती थी, दूकानोंने फूलोंका हार पहना था, बाजारोंमें आनन्दके उत्सव मनाये जा रहे थे। शोक के नीले वस्त्रोंकी जगह केसरका सुहावना रङ्ग बधाई दे रहा था। इधर सूर्यने उषासागरसे सिर निकाला। उधर सलामियां दगना आरम्भ हुई। आगे आगे मैं एक सब्जा घोड़े पर सवार आ रही थी और पीछे राजकुमारका हाथी सुनहरे भूलोंसे सजा चला आता था। स्त्रियां अटारियोंपर मङ्गलके गीत गाती थी और पुष्पोंकी वृष्टि करती थी। राजभवनके द्वारपर रानी मोतियोंसे आंचल भरे खड़ी थी, ज्योंही राजकुमार हाथीसे उतरे वह उन्हें गोदमें लेनेके लिये दौड़ीं और छातीसे लगा लिया।

(७)

ऐ मुसाफ़िर, आनन्दोत्सव समाप्त होनेपर जब मैं विदा होने लगी तो रानी महोदया ने सजल नयन होकर कहा:--

" बेटी, तूने मेरे साथ जो उपकार किया है उसका फल तुझे भगवान देंगे। तूने मेरे राज्यवंशका उद्धार कर दिया, नहीं तो कोई पित्रोंको जल देनेवाला भी न रहता। मैं तुझे कुछ विदाई देनी चाहती हूं, वह तुझे स्वीकार करनी पड़ेगी।" मगर रणधीर मेरा पुत्र है तो तू मेरी पुत्री है। तूने ही रणधीरको प्राणदान दिया है, तूने ही इस राज्यका पुनरुद्धार किया है। इसलिये इस मायाबंधनसे तेरा गला नहीं छूटेगा। मैं अर्जुननगरका प्रांत उपहारस्वरूप तेरे भेंट करती हूं।

रानीकी यह असीम उदारता देखकर मैं दंग रह गयी। कलियुगमें भी कोई ऐसा दानी हो सकता है इसकी मुझे आशा न थी। यद्यपि मुझे धन भोगकी लालसा न थी पर केवल इस विचारसे कि कदाचित् यह सम्पत्ति मुझे अपने भाइयोंकी सेवा करनेकी सामर्थ्य दे। मैंने एक जगीरदारकी जिम्मेदारियां अपने सर लीं। तबसे दो वर्ष व्यतीत हो चुके है पर भोग विलासने मेरे मनको एक क्षणके लिये भी चचल नही किया। मैं कभी पलंगपर नही सोई। रूखी सूखी वस्तुओं के अतिरिक्त और कुछ नही खाया। पतिवियोगकी दशामें स्त्री तपस्विनी हो जाती है, उसकी वासनाओंका अंत हो जाता है। मेरे पास कई विशाल भवन हैं, कई रमणीक वाटिकायें है विषय-वासनाकी ऐसी कोई सामग्री नही है जो प्रचुर मात्रामें उपस्थित न हो, पर मेरे लिये वह सब त्याज्य हैं। भवन सूने पडे हैं और वाटिकाओंमें खोजनेसे भी हरियाली न मिलेगी। मैंने उनकी ओर कभी आंख उठाकर भी नहीं देखा। अपने प्राणाधारके चरणोंसे लगे हुये मुझे अन्य किसी वस्तु की इच्छा नही है। मैं नित्यप्रति अर्जुननगर जाती हूं और रियासतके आवश्यक काम काज करके लौट आती हूं। नौकर चाकरोंका कड़ी आज्ञा दे दी गई है कि मेरी शांन्तिमें बाधक न हों रियासत की सम्पूर्ण आय परोपकारमें व्यय होती है। मैं उसकी कौड़ी भी अपने खर्च में नही लाती। आपको अवकाश हो तो आप मेरी रियासतका प्रबन्ध देख-

कर बहुत प्रसन्न होंगे। मैंने इन दो वर्षोंमें बीस बड़े बड़े तालाब बनवा दिये हैं और चालीस गोशाले बनवा दिये हैं। मेरा विचार है कि अपने रियासतमें नहरोंका ऐसा जाल बिछा दूं जैसे शरीरमें नाड़ियोंका। मैंने एक सौ कुशल वैद्य नियुक्त कर दिये हैं जो ग्रामोंमें विचरण करें और रोगकी निवृत्ति करें। मेरा कोई ऐसा ग्राम नहीं है जहां मेरी ओरसे सफाईका प्रबन्ध न हो छोटे छोटे गावोंमें भी आपको लाल-टेनें जलती हुई मिलेंगी। दिनका प्रकाश ईश्वर देता है, रात के प्रकाशकी व्यवस्था करना राजाका कर्त्तव्य है। मैंने सारा प्रबन्ध पण्डित श्रीधरके हाथोंमें दे दिया है। सबसे प्रथम कार्य जो मैंने किया वह यह था कि उन्हें ढूंढ निकालूं और यह भार उनके सिर रख दूं। इस विचारसे नहीं कि उनका सम्मान करना मेरा अभीष्ट था बल्कि मेरी दृष्टिमें कोई अन्य पुरुष ऐसा कर्त्तव्यपरायण, ऐसा निशपृह ऐसा सच्चरित्र न था। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वह यावज्जीवन रियासत की बागडोर अपने हाथमें रखेंगे। विद्याधरी भी उनके साथ है। वह शांति और संतोषकी मूर्ति,वही धर्म और व्रतकी देवी। उसका पातिव्रत अब भी ज्ञानसरोवरकी भांति अपार और अथाह है। यद्यपि उसका सौंदर्य-सूर्य अब मध्यान्हपर नही है पर अब भी वह रनिवासकी रानी जान पड़ती है। चिन्ताओंने उसके मुखपर शिकन डाल दिये हैं। हम दोनो कभी कभी मिल जाती हैं किन्तु बात चीतकी नौबत नहीं आती। उसकी आखें झुक

जाती हैं। मुझे देखते ही उसके ऊपर घड़ों पानी पड़ जाता है और उसके माथेके जलबिन्दु दिखाई देने लगते हैं। मैं आपसे सत्य कहती हूं कि मुझे विद्याधरीसे कोई शिकायत नहीं है। उसके प्रति मेरे मनमें दिनोंदिन श्रद्धा और भक्ति बढ़ती जाती है। उसे देखती हूं तो मुझे प्रबल उत्कण्ठा होती है कि उसके पैरोंपर गिर पड़ूं। पतिव्रता स्त्रीके दर्शन बड़े सौभाग्यसे मिलते हैं। पर केवल इस भयसे कि कदाचित वह इसे मेरी खुशामद समझे रुक जाती हूं। अब मेरी ईश्वरसे यही प्रार्थना है कि अपने स्वामीके चरणोंमें पड़ी रहूं और जब इस संसारसे प्रस्थान करनेका समय आये तो मेरा मस्तक उनके चरणोंपर हो। और अन्तिम शब्द मेरे मुंहसे निकले वह यही कि—"ईश्वर दूसरे जन्ममें भी इनकी चेरी बनाना।"

पाठक, उस सुन्दरीका जीवन-वृतान्त सुनकर मुझे जितना कुतूहल हुआ वह अकथनीय है। खेद है कि जिसके जातिमें ऐसी प्रतिभाशालिनी देवियां उत्पन्न हों उसपर पाश्चात्यके कल्पनाहीन, विश्वासहीन पुरुष उंगलियां उठायें।? समस्त यूरोपमें एक भी ऐसी सुन्दरी न होगी जिससे इसकी तुलना की जा सके। हमने स्त्री पुरुषके सम्बन्धको सांसारिक सम्बन्ध समझ रखा है। उसका आध्यात्मिक रूप हमारे विचार से कोसों दूर है। यही कारण है कि हमारे देशमें शताब्दियों की उन्नतिके पश्चात भी पातिव्रतका ऐसा उज्ज्वल और लौकिक उदाहरण नहीं मिल सकता। और दुर्भाग्यसे हमारी

सभ्यताने ऐसा मार्ग ग्रहण किया है कि कदाचित दूर भविष्यमें भी ऐसी देवियोंके जन्म लेनेकी सम्भावना नहीं है। जर्मनीको यदि अपनी सेनापर फ्रांसको अपनी विलासितापर और इंग्लैण्डको अपने वाणिज्यपर गर्व है तो भारतवर्षको अपने पातिव्रतका घमंड है। क्या यूरोप निवासियोंके लिये यह लज्जाकी बात नहीं है कि होमर और वर्जिल, डन्टे और गेटो, शेक्सपियर और ह्यूगो जैसे उच्चकोटिके कवि एक भी सीता या सावित्रीकी रचना न कर सके। वास्तवमें यूरोपीय समाज ऐसे आदर्शोंसे वंचित है!

मैने दूसरे दिन ज्ञानसरोवरसे बड़ी अनिच्छाके साथ विदा मांगी और यूरोपको चला। मेरे लौटनेका समाचार पूर्व ही प्रकाशित हो चुका था। जब मेरा जहाज हैम्पवर्गके बन्दरमें पहुंचा तो सहस्त्रों नर नारी सैकड़ों विद्वान और राज कर्मचारी मेरा अभिवादन करनेके लिये खड़े थे। मुझे देखते ही तालियां बजने लगीं रूमाल और टोप हवामें उछलने लगे, और वहांसे मेरे घर तक जिस समारोहसे जलूस निकला उसपर किसी राष्ट्रपतिको भी गर्व हो सकता है। सन्ध्या समय मुझे कैसरकी मेज़पर भोजन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। कई दिनों तक अभिनन्दनपत्रोंका तांता लगा रहा और महीनों क्लब और यूनिवर्सिटीकी फर्माइशोंसे दम मारनेका अवकाश न मिला। यात्रा-वृतान्त देशके प्रायः सभी पत्रोंमें छपा। अन्य देशोंसे भी बधाईके तार और पत्र मिले। फ्रांस

रूस आदि देशोंके कितनी ही सभाओंने मुझे व्याख्यान देनेके लिये निमंत्रित किया। एक एक वक्तृताके लिये मुझे कई कई हजार पौंड दिये जाते थे। कई विद्यालयोंने मुझे उपाधियां दीं। जारने अपना आटोग्राफ भेजकर सम्मानित किया किन्तु इन आदर और सम्मानकी आंधियोंसे मेरे चित्तको शांति न मिलती थी और ज्ञानसागरका सुरम्य तट और वह गहरी गुफा, और वह मृदुभाषिणी रमणी सदैव आंखोंके सामने फिरते रहते। उसके मधुर शब्द कानोंमें गूंजा करते। मैं थियेटरोंमें जाता, और स्पेन और जार्जियाकी सुन्दरियोंको देखता, किन्तु हिमालयकी अप्सरा मेरे ध्यानसे उतरती। कभी कभी कल्पनामें मुझे वह देवी आकाशसे उतरती हुई मालूम होती तब चित्त चंचल हो जाता और विकल उत्कंठा होती कि किसी तरहपर लगाकर ज्ञानसागरके तट पर पहुंच जाऊं। आखिर एक रोज मैंने सफरका सामान दुरुस्त किया और उस मितीके ठीक एक हजार दिनोंके बाद जब कि मैंने पहली बार ज्ञानसागरके तटपर कदम रखा था मैं फिर जा पहुंचा।

प्रभातका समय था। गिरिराज सुनहरा मुकुट पहने खड़े थे मन्द समीरके आनन्दमय झोंकोंसे ज्ञानसागरका निर्मल प्रकाशसे प्रतिबिम्बित जल इस प्रकार लहरा रहा था मानो अगणित अप्सरायें आभूषणोंसे जगमगाती हुई नृत्य कर रही हों। लहरोंके साथ शतदल यों झकोरे लेते थे जैसे कोई बालक हिंडोलेमें झूल रहा हो। फूलोंके बीचमें श्वेत हंस तैरते हुये

ऐसे मालूम होते थे मानो लालिमासे छाये हुये आकाशपर तारागण चमक रहे हों। मैंने उत्सुकनेत्रोंसे इस गुफाकी ओर देखा तो वहां एक विशाल राजप्रासाद आसमानसे कंधा मिलाये खड़ा था। एक ओर रमणीक उपवन था, दूसरी ओर एक गगनचुम्बी मन्दिर। मुझे यह कायापलट देखकर आश्चर्य हुआ। मुख्य द्वारपर जाकर देखा तो दो चोबदार ऊदे मखमलकी वर्दियां पहने जरीके पट्टे बांधे खड़े थे। मैंने उनसे पूछा—"क्यों भाई यह किसका महल है?"

चोबदार—अर्जुन नगरकी महारानीका।

मैं—क्या अभी हालहीमें बना है?

चोबदार—हां तुम कौन हो?

मैं—एक परदेशी यात्री हूं। क्या तुम महारानीको मेरी सूचना दे दोगे?

चोबदार—तुम्हारा क्या नाम है और कहांसे आते हो?

मैं—उनसे केवल इतना कह देना कि यूरोपसे एक यात्री आया है और आपके दर्शन करना चाहता है।

चोबदार भीतर चला गया और एक क्षणके बाद आकर बोला, 'मेरे साथ आओ।'

मैं उसके साथ हो लिया। पहले एक लम्बी दालान मिली जिसमें भांति भांतिके पक्षी पिंजरोंमें बैठे चहक रहे थे। इसके बाद एक विस्तृत बारहदरीमें पहुंचा जो सम्पूर्णतः पाषाणकी बनी हुई थी। मैंने ऐसी सुन्दर गुलकारी ताजमहलके अतिरिक्त

और कहीं नहीं देखी। फर्शकी पच्चीकारीको देखकर उसपर पांव धरते संकोच होता था। दीवारोंपर निपुण चित्रकारोंकी रचनायें शोभायमान थीं। बारहदरीके दूसरे सिरेपर एक चबूतरा था जिसपर मोटी कालीनें बिछी हुई थीं। मैं फर्शपर बैठ गया। इतनेमें एक लम्बे कदका रूपवान पुरुष अन्दर आता हुआ दिखाई दिया। उसके मुखपर प्रतिभाकी ज्योति झलक रही थी और आंखोंसे गर्व टपका पड़ता था। उसकी काली और भालेकी नोक सदृश तनी हुई मूंछें उसके भौंरेके तरह काले घूंघरवाले बाल, उसके आकृतिकी कठोरताको नम्र कर देते थे। विनयपूर्ण वीरताका इससे सुन्दर चित्र नही खिंच सकता था। उसने मेरी ओर देखकर मुसकराते हुये कहा—" आप मुझे पहचानते हैं ?" मैं अदबसे खड़ा होकर बोला—"मुझे आपसे परिचयका सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। वह कालीनपर बैठ गया और बोला, " मैं शेरसिंह हूं।" मैं अवाक् रह गया। शेरसिंहने फिर कहा,"क्या आप प्रसन्न नहीं हैं कि आपने मुझे पिस्तौलका लक्ष नहीं बनाया। मैं तब पशु था अब मनुष्य हूं। मैंने कहा,"आपको हृदयसे धन्यवाद देता हूं। यदि आज्ञा होतो मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूं।

शेरसिंहने मुसकिराकर कहा–मैं समझ गया, पूछिये।

मैं—जब आप समझ ही गये तो मैं पूंछूं क्यों।

शेर—सम्भव है मेरा अनुमान ठीक न हो।

मैं—मुझे भय है कि उस प्रश्नसे आपको दुख न हो।

शेर—कमसे कम आपको मुझसे ऐसी शंका न करनी चाहिये।

मैं—विद्याधरीके भ्रममें कुछ सार था ?

शेरसिंहने सिर झुकाकर कुछ देरमें उत्तर दिया। जी हां था। जिस वक्त मैंने उसकी कलाई पकड़ी थी उस समय आवेशसे मेरा एक एक अंग कांप रहा था। मैं विद्याधरीके उस अनुग्रहको मरणपर्यंत न भूलूंगा। मगर इतना प्रायश्चित्त करनेपर भी मुझे अपनी ग्लानिसे निवृत्ति नहीं हुई। संसारकी कोई वस्तु स्थिर नहीं किन्तु पापकी कालिमा अमर और अमिट है। यश और कीर्ति कालान्तरमें मिट जाती है किन्तु पापका धब्बा नहीं मिटता। मेरा विचार है कि ईश्वर भी उस दाग़को नहीं मिटा सकता। कोई तपस्या, कोई दंड, कोई प्रायश्चित्त इस कालिमाको नहीं धो सकता। पतितोद्धार की कथायें और तौबा या कन्फेशन करके पापसे मुक्त हो जानेकी बातें यह सब संसार लिप्सी पाखंडी धर्मावलम्बियों-की कल्पनायें हैं।

हम दोनों यही बातें कर रहे थे कि रानी प्रियंवदा सामने आकर खड़ी हो गईं। मुझे आज अनुभव हुआ जो बहुत दिनों-से पुस्तकोंमें पढ़ा करता था कि सौंदर्यमें प्रकाश होता है। आज इसकी सत्यता मैंने अपनी आंखोंसे देखी, मैंने जब उन्हें पहले देखा था तो निश्चय किया था कि यह ईश्वरीय कलानैपुण्यकी पराकाष्ठा है परन्तु अब जब मैंने उसे दोबारा देखा

तो ज्ञात हुआ कि वह इस असत्यकी नक़ल थी। प्रेमवदाने मुसकराकर कहा–'मुसाफिर, तुझे स्वदेशमें भी कभी हम लोगों की याद आई थी?' अगर मैं चित्रकार होता तो उसके मधुर हास्यको चित्रित करके प्राचीन गुणियोंको चकित कर देता। उसके मुहसे यह प्रश्न सुननेके लिये मैं तैयार न था। यदि इसी भांति मैं उसका उत्तर देता तो शायद वह मेरी धृष्टता होती और शेरसिहके तेवर बदल जाते। मैं यह भी न कह सका कि तेरे जीवनका सबके सुखद भाग वही था जो ज्ञानसरोवरके तटपर व्यतीत हुआ था। किन्तु मुझे इतना साहस भी न हुआ। मैंने दबी ज़बानसे कहा—"क्या मैं मनुष्य नहीं हूं!"

(८)

तीन दिन बीत गये। इन तीन दिनोंमें खूब मालूम हो गया कि पूबको आतिथ्यसेवी क्यों कहते हैं। यूरोपका कोई दूसरा मनुष्य जो यहांकी सभ्यतासे परिचित न हो इन सत्कारोंसे ऊब जाता। किन्तु मुझे इन देशोंके रहन सहनका बहुत अनुभव हो चुका है और मैं इसका आदर करता हूं।

चौथे दिन मेरी विनयपर रानी प्रेमवदाने अपनी शेष कथा सुनानी शुरू की—

ऐ मुसाफिर, मैंने तुझसे कहा था कि अपनी रियासतका शासनभार मैंने श्रीधरपर रख दिया था और जितनी योग्यता और दूरदर्शितासे उन्होंने इस कामको सम्हाला है उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। ऐसा बहुत कम हुआ है कि एक विद्वान्

पण्डित जिसका सारा जीवन पठन पाठन में व्यतीत हुआ हो एक रियासतका बोझ सम्हाले। किन्तु राजा बीरबलकी भाँति पं० श्रीधर भी सब कुछ कर सकते हैं। मैंने परीक्षार्थ उन्हें यह काम सौंपा था। अनुभवने सिद्ध कर दिया कि वह इस कार्यके सर्वथा योग्य हैं। ऐसा जान पड़ता है कि कुलपरम्पराने उन्हें इस कामके लिये अभ्यस्थ कर दिया है। जिस समय उन्होंने इसका काम अपने हाथमें लिया यह रियासत एक ऊजड़ ग्रामके सदृश थी अब वह धनधान्यपूर्ण एक नगर है। शासनका कोई ऐसा विभाग नहीं जिसपर उनकी सूक्ष्म दृष्टि न पहुँची हो।

थोड़े ही दिनोंमें लोग उनके शीलस्वभावपर मुग्ध हो गये और राजा रणधीरसिंह भी उनपर कृपा दृष्टि रखने लगे। पण्डितजी पहले शहरसे बाहर एक ठाकुरद्वारेमें रहते थे किन्तु जब राजा साहबसे मेल जोल बढ़ा तो उनके आग्रहसे विवश होकर राज महलमें चले आये। यहां तक परस्परमें मैत्री और घनिष्ठता बढ़ी कि मान प्रतिष्ठाका विचार भी जाता रहा। राजा साहब पण्डितजीसे संस्कृत भी पढ़ते थे और उनके समयका अधिकांश भाग पण्डितजीके मकानपर ही कटता था। किन्तु शोक; यह विद्या प्रेम या शुद्ध मित्रभावका आकर्षण न था। यह सौन्दर्यका आकर्षण था। यदि उस समय मुझे लेशमात्र भी सन्देह होता कि रणधीरसिंहकी यह घनिष्ठता कुछ और ही पहलू लिये हुये है तो उसका अन्त इतना खेदजनक न होता जितना कि हुआ। उनकी दृष्टि विद्याधरीपर उस समय पड़ी

जब वह ठाकुरद्वारेमें रहती थी और यह सारी कुयोजनाएं उसीकी करामात थीं। राजा साहब स्वभावतः बड़े ही सच्चरित्र और संयमी पुरुष हैं किन्तु जिस रूपने मेरे पति जैसे देवपुरुषका ईमान डिगा दिया वह सब कुछ कर सकता है।

भोली भाली विद्याधरी मनोविकारोंकी इस कुटिल नीतिसे बेखबर थी। जिस प्रकार छलांगें मारता हुआ हिरन व्याधाके फैलाई हुई हरी हरी घास प्रसन्न हो कर उस ओर बढ़ता है और यह नहीं समझता कि प्रत्येक पग मुझे सर्वनाशकी ओर लिये जाता है। उसी भांति विद्याधरीको उसका चंचलमन अंधकारकी ओर खींचे लिये जाता था। वह राजा साहबके लिये अपने हाथसे बीड़े लगा कर भेजती, पूजाके लिये चन्दन रगड़ती। रानीजीसे भी उसका बहनापा हो गया। वह एक क्षणके लिये भी उसे अपने पाससे न जाने देतीं। दोनो साथ साथ बाग़की सैर करतीं, साथ साथ झूला झूलतीं, साथ साथ चौपड खेलतीं। यह उनका शृङ्गार करती और वह उनकी मांग चोटी संवारतो, मानों विद्याधरीने रानीके हृदयमें वह स्थान प्राप्त कर लिया जो किसी समय मुझे प्राप्त था। लेकिन, वह गरीब क्या जानती थी कि जब मैं बाग़की रविशोंमें विचरती हूं तो कुवासना मेरे तलवेके नीचे आंखे बिछाती है। जब मैं झूला झूलती हूं तो वह आड़में बैठी हुई आनन्दसे झूमती है। इस एक सरलहृदय अबला स्त्रीके लिये चारों ओरसे चक्रव्यूह रचा जा रहा था।

इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया, राजा साहबका रब्त जब्त दिनोदिन बढ़ता जाता था। पण्डितजी उनको वह स्नेह हो गया जो गुरुजीको अपने एक होनहार शिष्यसे होता है। मैंने जब देखा कि आठोंपहरका यह सहवास पण्डितजीके काममें विघ्न डालता है तो एक दिन मैंने उनसे कहा, यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो दूरस्थ देहातोंका दौरा आरम्भ कर दें और इस बातका अनुसंधान करें कि देहातोंमें कृषकोंके लिये बैंक खोलनेमें हमें प्रजासे कितनी सहानुभूति और कितनी सहायताकी आशा करनी चाहिये। पण्डितजीके मनकी बात नहीं जानती पर प्रत्यक्षमें उन्होंने कोई अपत्ति नहीं की। दूसरे ही दिन प्रातः काल चले गये। किन्तु आश्चर्य है कि विद्याधरी उनके साथ न गई। अब तक पण्डितजी जहां कहीं जाते थे विद्याधरी परछाईंकी भांति उनके साथ रहती थी। असुविधा या कष्टका विचार भी उसके मनमें न आता था। पण्डितजी कितनाही समझायें, कितनाही डरायें, पर वह उनका साथ न छोड़ती थी। पर अबकी बार कष्टके विचारने उसे कर्तव्यके मार्गसे विमुख कर दिया। पहले उसका पातिव्रत एक वृक्ष था जो उसके प्रेमकी क्यारीमें अकेला खड़ा था किन्तु अब उसी क्यारीमें मैत्रीकी घासपात निकल आई थी जिनका पोषण भी उसी भोजनपर अवलम्बित था।

(६)

ऐ मुसाफिर, छः महीने गुज़र गये और पण्डित श्रीधर

वापस न आये। पहाड़ोंकी चोटियोंपर छाया हुआ हिम घुलघु-लकर नदियोंमें बहने लगा, उनकी गोदमें फिर रंग विरंगके फूल लहलहाने लगे। चन्द्रमाकी किरणे फिर फूलोंकी महक सूंघने लगीं। पर्वतोंके पक्षी अपनी वार्षिक यात्रा समाप्त कर फिर स्वदेश आ पहुंचे, किन्तु पण्डितजी रियासतके कामोंमें ऐसे उलझे कि मेरे निरन्तर आग्रह करने पर भी अर्जुन न-गर न आये। विद्याधरीकी ओरसे वह इतने उदासीन क्यों हुये समझमें नहीं आता था। उन्हें तो उसका वियोग एक क्षणके लिये भी असह्य था। किन्तु इससे अधिक आश्चर्यकी बात यह थी कि विद्याधरीने भी आग्रहपूर्ण पत्रोंके लिखनेके अतिरिक्त उनके पास जानेका कष्ट न उठाया। वह अपने पत्रोंमें लिखती,'स्वामीजी मैं बहुत व्याकुल हूं,यहां मेरा जी जरा भी नही लगता, एक एक दिन एक एक वर्षके समान व्यतीत होता है, न दिनको चैन न रातको नींद। क्या आप मुझे भूल गये? मुझसे कौनसा अपराध हुआ। क्या आपको मुझपर दया भी नहीं आती। मैं आपके वियोगमें रो रो कर मरी जाती हूं। नित्य स्वप्न देखती हूं कि आप आ रहे हैं, पर यह स्वप्न कभी सच्चा न होता।' उसके पत्र ऐसेही प्रेममय शब्दोंसे भरे होते थे और इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि जो कुछ वह लिखती थी वह भी अक्षरसः सत्य था। मगर इतनी व्याकुलता, इतनी चिन्ता और इतने उद्विग्नतापर भी उसके मनमें कभी यह प्रश्न न उठा कि क्यों न मैं ही उनके पास चली चलूं।

बहुतही सुहावना ऋतु था। ज्ञानसागरमें यौवन कालकी अभिलाषाओंकी भांति कमलके फूल खिले हुये थे। राजा रणजीसिंहकी पच्चीसवी जयन्तीका शुभ-मुहूर्त आया। सारे नगरमें आनन्दोत्सवकी तैयारियां होने लगीं। गृहणियां कोरे कोरे दीपक पानीमें भिगोने लगी कि वह अधिक तेल न सोख जाये। चैत्रकी पूर्णिमा थी, किन्तु दीपककी जगमगाहटने ज्योत्सनाको मात कर दिया था। मैंने राजा साहबके लिये इस्फ़हानसे एक रत्नजड़ित तलवार मंगा रखी थी। दर्बारके अन्य जागीरदारों और अधिकारियोंने भी भांति भांतिके उपहार मंगा रखे थे। मैंने विद्याधरीके घर जाकर देखा तो वह एक पुष्पहार गूंथ रही थी। मैं आध घण्टे तक उसके सन्मुख खड़ी रही किन्तु वह अपने काममें इतनी व्यस्त थी कि उसे मेरी आहट भो न मिली, तब मैंने धीरेसे पुकारा, "बहन।" विद्याधरीने चौंककर सर उठाया और बड़ी शीघ्रतासे वह हार फूलकी डालीमें छिपा दिया और लज्जित होकर बोली, क्या तुम देरसे, खड़ी हो?' मैंने उत्तर दिया, आध घंटेसे अधिक हुआ।

विद्याधरीके चेहरेका रङ्ग उड़ गया, आंखे झुक गईं कुछ हिचकिचाई कुछ घबराई फिर अपने अपराधी हृदयको इन शब्दोंसे शांत किया, 'यह हार मैंने ठाकुरजीके लिये गूंधा है।' उस समय विद्याधरीकी घबराहटका भेद मैं कुछ न समझी। ठाकुरजीके लिये हार गूंधना क्या कोई लज्जाकी बात है? फिर

जब यह हार मेरी नजरोंसे छिपा दिया गया तो उसका जिक्र ही क्या ? हम दोनोंने कितनीही बार साथ बैठकर हार गूंधे थे। कोई निपुण मालिन भी हमसे अच्छे हार न गूंध सकती थी। मगर इसमें शर्म क्या। दूसरे दिन यह रहस्य मेरी समझमें आ गया। यह हार राजा रणधीरसिंहको उपहारमें देनेके लिये बनाया गया था।

यह बहुत सुन्दर वस्तु थी। विद्याधरीने अपना सारा चातुर्य उसके बनानेमें खर्च किया था। कदाचित यह सबसे उत्तम वस्तु थी जो राजा साहबकी भेंट कर सकती थी। यह ब्राह्मणी थी। राजा साहबकी गुरुमाता थी। उसके हाथोंसे यह उपहार बहुत ही शोभा देता था, किन्तु यह बात उसने मुझसे छिपाई क्यों ?

मुझे उस दिन रात भर नींद न आई। उसके इस रहस्य भावने उसे मेरी नजरोंसे गिरा दिया। एक बार आंख झपकी तो मैंने उसे स्वप्नमें देखा, मानो वह एक सुन्दर पुष्प है किन्तु उसकी बास मिट गई। वह मुझसे गले मिलनेके लिये बढ़ी किन्तु मैं हट गयी और बोली कि तूने मुझसे यह बात छिपाई क्यों ?

(१०)

ऐ मुसाफिर, राजा रणधीरसिंहकी उदारताने प्रजाको मालामाल कर दिया। रईसों और अमीरोंने खिलअतें पाईं। किसीको घोड़ा मिला किसीको जागीर मिली। मुझे उन्होंने श्री भगवद्गीताकी एक प्रति एक मखमली बस्तेमें रखकर दी। विद्या-

धरीको एक बहुमूल्य जड़ाऊ कंगन मिला। उस कंगनमें अनमोल हीरे जड़े हुये थे। देहलीके निपुण स्वर्णकारोंने इसके बनानेमें अपनी कलाका चमत्कार दिखाया था। विद्याधरीको अब तक आभूषणोंसे इतना प्रेम न था। अब तक सादगी ही उसका आभूषण और पवित्रता ही उसका शृंगार थी, पर इस कंगनपर वह लोट पोट हो गई।

आषाढ़का महीना आया। घटायें गगनमंडलमें मंडलाने लगीं। पंडित श्रीधरको घरकी सुध आई। पत्र लिखा कि मैं आ रहा हूं। विद्याधरीने मकान खूब साफ कराया और स्वयं अपना बनाव शृंगार किया। उसके वस्त्रोंसे चन्दनकी महक उड़ रही थी। उसने कंगनको संदूकचेसे निकाला और सोचने लगी कि इसे पहनूं या न पहनूं? उसके मनने निश्चय किया कि न पहनूंगी। संदूक बंद करके रख दिया।

सहसा लौंडीने आकर सूचना दी कि पंडितजी आ गये। यह सुनते ही विद्याधरी लपक कर उठी, किन्तु पतिके दर्शनोंकी उत्सुकता उसे द्वारकी ओर नहीं ले गई। उसने बड़ी फुर्तीसे संदूकचा खोला, कंगन निकालकर पहना और अपनी सूरत आइनेमें देखने लगी।

इधर पंडितजी प्रेम उत्कंठासे कदम बढ़ाते दालानसे आंगन, और आंगनसे विद्याधरीके कमरेमें आ पहुंचे। विद्याधरीने आकर उनके चरणोंको अपने सिरसे स्पर्श किया। पंडितजी उसका यह शृंगार देखकर दंग रह गये। एकाएक

उनकी दृष्टि उस कंगनपर पड़ी। राजा रणधीरसिंहकी संगत ने उन्हें रत्नोंका पारखी बना दिया था। ध्यानसे देखा तो एक एक नगीना एक एक हजारका था। चकित होकर बोले, 'यह कंगन कहां मिला ?'

विद्याधरीने जवाब पहले ही सोच रखा था। रानी प्रेम-वदाने दिया है। यह जीवनमें पहला अवसर था कि विद्याधरीने अपने पतिदेवसे कपट किया। जब हृदय शुद्ध न हो तो मुखसे सत्य क्यों कर निकले। यह कंगन नहीं वरन् एक विषैला नाग था।

(११)

एक सप्ताह गुजर गया। विद्याधरीके चित्तकी शांति और प्रसन्नता लुप्त हो गयी थी। यह शब्द कि रानी प्रेमवदाने दिया है प्रतिक्षण उसके कानोंमें गूंजा करते। वह अपनेको धिक्कारती कि मैंने अपने प्रणाधारसे क्यों कपट की। बहुधा रोया करती। एक दिन उसने सोचा कि क्यों न चलकर पतिसे सारा वृतान्त सुना दूं। क्या वह मुझे क्षमा न करेंगे ? यह सोचकर उठी किन्तु पतिके सन्मुख जाते ही उसकी जबान बन्द हो गई। वह अपने कमरेमें आई और फूट फूटकर रोने लगी। कंगन पहनकर उसे बहुत आनन्द हुआ था। इसी कंगनने उसे हंसाया था अब वही रुला रहा है।

विद्याधरीने रानीके साथ बागोंमें सैर करना छोड़ दिया, चौपड़ और शतरंज उसके नामको रोया करते। वह सारे

दिन अपने कमरेमें पड़ी रोया करती और सोचती कि क्या करूं। काले वस्त्रपर काला दाग छिप जाता है, किन्तु उज्ज्वल वस्त्रपर कालिमाकी एक बूंद भी झलकने लगती है। वह सोचती इसी कंगनने मेरा सुख हर लिया है, यही कंगन मुझे रक्तके आंसू रुला रहा है। सर्प जितना सुन्दर होता है उतना ही विषाक्त भी होता है। यह सुन्दर कंगन विष धर नाग है, मैं उसका सर कुचल डालूंगी, यह निश्चय करके उसने एक दिन अपने कमरेमें कोयलेका अलाव जलाया, चारों तरफके किवाड़ बंद कर दिये और उस कंगनको जिसने उसके जीवनको संकटमय बना रखा था संदूकचेसे निकालकर आगमें डाल दिया। एक दिन वह था कि कंगन उसे प्राणोंसे भी प्यारा था उसे मखमली संदूकचेमें रखती थी, आज उसे इतनी निर्दयतासे आगमें जला रही है।

विद्याधरी अलावके सामने बैठी हुई थी कि इतनेमें पंडित श्रीधरने द्वार खटखटाया। विद्याधरीका काटो तो लोहू नहीं। उसने उठकर द्वार खोल दिया और सिर झुकाकर खड़ी हो गई। पण्डितजीने बड़े आश्चर्यसे कमरेमें निगाह दौड़ाई पर रहस्य कुछ समझमें न आया, बोले कि किवाड़ बंद करके क्या हो रहा है? विद्याधरी ने उत्तर न दिया। तब पण्डितजीने छड़ी उठा ली और अलाव कुरेदा तो कङ्गन निकल आया। उसका संपूर्णतः रूपान्तर हो गया था। न वह चमक थी न वह रङ्ग न वह आकार, घबरा कर बोले, विद्याधरी तुम्हारी

बुद्धि कहां है ?

विद्या—भ्रष्ट हो गयी है।

पण्डित—इस कंगनने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था ?

विद्या—इसने मेरे हृदयमें आग लगा रखी है।

पण्डित—ऐसी अमूल्य वस्तु मिट्टीमें मिल गई।

विद्या—इसने उससे भी अमूल्य वस्तुका अपहरण किया है।

पण्डित—तुम्हारा सिर तो नहीं फिर गया है ?

विद्या—शायद आपका अनुमान सत्य है।

पण्डितजीने विद्याधरीकी ओर चुभनेवाली निगाहोंसे देखा। विद्याधरीकी आंखें नीचेको झुक गई। वह उनसे आंखें न मिला सकी। भय हुआ कि कहीं यह तीव्रदृष्टि मेरे हृदयमें न चुभ जाय, पण्डितजी कठोर स्वरमें बोले—

विद्याधरी तुम्हें स्पष्ट कहना होगा। विद्याधरीसे अब न रुका गया, वह रोने लगी और पण्डितजीके सम्मुख धर्तीपर गिर पड़ी।

(१२)

विद्याधरीको जब सुध आई तो पण्डितजीका वहां पता न था। घबराई हुई बाहरके दीवानखानेमें आई मगर वहां भी उन्हें न पाया। नौकरोंसे पूछा तो मालूम हुआ कि घोड़ेपर सवार होकर ज्ञानसागरकी ओर गये हैं। यह सुनकर विद्याधरीको कुछ ढाढस हुआ। वह द्वारपर खड़ी होकर उनकी राह

देखती रही। दोपहर हुआ, सूर्य सिरपर आया, संध्या हुई, चिड़ियां बसेरा लेने लगीं, फिर रात आई, गगनमें तारागण जगमगाने लगे, किन्तु विद्याधरी दीवारकी भांति खड़ी पतिका इन्तजार करती रही। रात भीग गई, बनजन्तुओंके भयानक शब्द कानोंमें आने लगे, सन्नाटा छा गया। सहसा उसे घोड़ेके टापोंकी ध्वनि सुनाई दी। उसका हृदय धड़कने लगा। आनन्दोन्मत्त होकर द्वारके बाहर निकल आई, किन्तु घोड़ेपर सवार न था। विद्याधरीको अब विश्वास हो गया कि अब पतिदेवके दर्शन न होंगे। यातो उन्होंने सन्यास ले लिया या आत्मघात कर लिया। उसके कंठसे नैराश्य और विशादमें डूबी हुई ठंढी सांस निकली। वहीं भूमिपर बैठ गयी, और सारी रात खूनके आंसू बहाती रही। जब उषाकी निद्रा भंग हुई और पक्षी आनन्दगान करने लगे तब वह दुखिया उठी और अन्दर जाकर लेट रही।

जिस प्रकार सूर्यका ताब जलको सोख लेता है, उसी भांति शोकके तावने विद्याधरीका रक्त जला दिया। मुखसे ठंढी सांस निकलती थी आंखोंसे गर्म आंसू बहते थे। भोजनसे अरुचि हो गयी और जीवनसे घृणा। इसी अवस्थामें एक दिन राजा रणधीरसिंह सहवेदनाभावसे उसके पास आये। उन्हें देखते ही विद्याधरीकी आंखें रक्तवर्ण हो गईं क्रोधसे ओठ कांपने लगे, झल्लाई हुई नागिनकी भांति फुफकार कर उठी और राजाके सम्मुख आकर कर्कश-स्वरमें बोली,

'पापी, यह आग तेरी ही लगाई हुई है। यदि मुझमें अब भी कुछ सत्य है तो तुझे इस दुष्टताके कड़ुवे फल मिलेंगे।' यह तीरकेसे शब्द राजाके हृदयमें चुभ गये। मुंहसे एक शब्द भी न निकला। कालसे न डरनेवाला राजपूत एक स्त्रीकी आग्नेय दृष्टिसे कांप उठा।

एक वर्ष बीत गया, हिमालयपर मनोहर हरियाली छाई, फूलोंने पर्वतकी गोदमें क्रीडा करनी शुरू की। यह ऋतु बीता, जल थलने बर्फकी सुफेद चादर ओढ़ी, जलपक्षियोंकी मालायें मैदानोंकी ओर उड़ती हुई दिखाई देने लगीं। यह मौसम भी गुज़रा। नदी नालोंमें दूधकी धारें बहने लगीं चन्द्रमाकी स्वच्छ निर्मल ज्योति ज्ञानसागरमें थिरकने लगी परन्तु पण्डित श्रीधरका कुछ टोह न लगा। विद्याधरीने राजभवन त्याग दिया और एक पुराने निर्जन मन्दिरमें तपस्विनियोंकी भांति कालक्षेप करने लगी। उस दुखियाकी दशा कितनी करुणाजनक थी, उसे देखकर मेरी आंखें भर आती थीं। वह मेरी प्यारी सखी थी उसकी संगतमें मेरी जीवनके कई वर्ष आनन्दसे व्यतीत हुये थे। उसका यह अपार दुख देखकर मैं अपना दुख भूल गई। एक दिन वह था कि उसने अपने पातिव्रतके बलपर मनुष्यको पशुके रूपमें परिणत कर दिया था और आज यह दिन है कि उसका पति भी उसे त्याग रहा है। किसी स्त्रीके हृदयपर इससे अधिक लज्जाजनक इससे अधिक प्राणघातक आघात नहीं लग सकता। उसकी तपस्याने मेरे हृदयमें उसे

फिर उसी सम्मानपदपर बिठा दिया। उसके सतीत्वपर फिर मेरी श्रद्धा हो गई। किन्तु उससे कुछ पूछने, सान्त्वना देने मुझे संकोच होता था। मैं डरती थी कि कहीं विद्याधरी यह न समझे कि मैं उससे बदला ले रही हूं। कई महीनोंके बाद जब विद्याधरीने अपने हृदयका बोझ हलका करनेके लिये स्वयं मुझसे यह वृत्तान्त कहा तो मुझे ज्ञात हुआ कि यह सब काँटे राजा रणजीतसिंहके बोये हुए थे। उन्हींकी प्रेरणासे रानीजीने पण्डितजीके साथ जानेसे रोका उसके स्वभावने जो कुछ रंग बदला वह रानीजी हीकी कुसंगतिका फल था। उन्हींकी देखा देखी उसे बनाव श्रृङ्गारकी चाट पड़ी, उन्हींके मना करनेसे उसने कंगनका भेद पण्डितजीसे छिपाया। ऐसी घटनायें स्त्रियोंके जीवनमें नित्य होती रहती हैं और उन्हें जरा भी शंका नहीं होती। विद्याधरीका पातिव्रत आदर्श था। इसलिये यह विचलता उसके हृदयमें चुभने लगी। मैं यह नहीं कहती कि विद्याधरी कर्त्तव्यपथसे विचलित नहीं हुई, चाहे किसीके बहकानेसे चाहे अपने भोलेपनसे, उसने कर्त्तव्यका सीधा रास्ता छोड़ दिया, परन्तु पाप-कल्पना उसके दिलमें कोसों दूर थी।

(१४)

ऐ मुसाफिर, मैंने पण्डित श्रीधरका पता लगाना शुरू किया। मैं उनकी मनोवृत्तिसे परिचित थी। वह श्रीरामचन्द्रके भक्त थे। कौशलपुरीकी पवित्र भूमि और सरयू नदीके रमणीक तट उनके जीवनके सुखस्वप्न थे। मुझे खियाल आया कि सम्भव

हैं उन्होंने अयोध्याकी राह ली हो। कहीं मेरे प्रयत्नसे उनकी खोज मिल जाती और मैं उन्हें लाकर विद्याधरीके गलेसे मिला देती तो मेरा जीवन सफल हो जाता। इस विरहिणीने बहुत दुख झेले हैं क्या अब भी देवताओंको उसपर दया न आयेगी! एक दिन मैंने शेरसिंहसे कहा और पांच विश्वस्त मनुष्योंके साथ अयोध्याको चली। पहाड़ोंसे नीचे उतरते ही रेल मिल गई उसने हमारी यात्रा सुलभ कर दी। बीसवें दिन मैं अयोध्या पहुंच गई और एक धर्मशालेमें ठहरी फिर सर्जूमें स्नान करके श्री रामचन्द्रके दर्शनको चली। मन्दिरके आंगनमें पहुंची ही थी कि पण्डित श्रीधरकी सौम्यमूर्ति दिखाई दी। वह एक कुशासनपर बैठे हुये रामायणका पाठ कर रहे थे और सहस्त्रों नर नारी बैठे हुये उनकी अमृतवाणीका आनन्द उठा रहे थे।

पण्डितजीकी दृष्टि मुझपर ज्योंही पड़ी वह आसनसे उठकर मेरे पास आये और। बड़े प्रेमसे मेरा स्वागत किया। दो ढाई घण्टे तक उन्होंने मुझे उस मन्दिरकी सैर कराई। मन्दिरकी छत परसे सारा नगर शतरंजके बिसातकी भांति मेरे पैरोंके नीचे फैला हुआ दिखाई देता था। मन्दगामिनी वायु सर्यूके तरंगोंको धीरे धीरे थपकियां दे रही थी। ऐसा जान पड़ता था मानो स्नेहमयी माताने इस नगरको अपने गोदमें लिया हो। यहांसे जब अपने डेरेको चली तो पण्डितजी भी मेरे साथ आये। जब वह इतमीनानसे बैठे तो मैंने कहा—'आपने तो हमलोगोंसे नाता ही तोड़ लिया।'

पण्डितजीने दुखित होकर कहा—'विधाताकी यही इच्छा थी। मेरा क्या वश था। अब तो श्रीरामचन्द्रकी शरण आ गया हूं और शेष जीवन उन्हींकी सेवामें भेंट होगा।'

मैं—आपतो श्री रामचन्द्रके शरण आ गये है, उस अबला विद्याधरीको किसकी शरणमें छोड़ दिया है ?

पण्डित—आपके मुखसे ये शब्द शोभा नहीं देते।

मैंने उत्तर दिया-"विद्याधरीको मेरे शिफारिशकी आवश्यकता नहीं है। अगर आपने उसके पातिव्रतपर संदेह किया है तो आपसे ऐसा भीषण पाप हुआ है जिसका प्रयश्चित्त आप बार बार जन्म लेकर भी नहीं कर सकते। आपकी यह भक्ति इस अधर्मका निवारण नहीं कर सकती। आप क्या जानते हैं कि आपके वियोगमें उस दुखियाका जीवन कैसे कट रहा है।"

किन्तु पण्डितजीने ऐसा मुह बना लिया, मानो इस विषयमें वह अन्तिम शब्द कह चुके। किन्तु मैं इतनी आसानीसे उनका पीछा क्यों छोड़ने लगी थी। मैंने सारी कथा आद्योपान्त सुनाई और रणधीरसिंहके कपटनीतिका रहस्य खोल दिया तब पण्डितजीकी आंखें खुलीं। मैं वाणीमें कुशल नही हू किन्तु उस समय सत्य और न्यायके पक्षने मेरे शब्दोंको बहुतही प्रभावशाली बना दिया था। ऐसा ज्ञान पड़ता था मानो मेरी जिह्वापर सरस्वती विराजमान हों। अब वह बातें याद आती हैं तो मुझे स्वयं आश्चर्य होता है। आखिर विजय मेरे ही हाथ रही। पण्डितजी मेरे साथ चलनेपर उद्यत हो गये।

(१५)

यहां आकर मैंने शेरसिंहको वहीं छोड़ा और पण्डितजीके साथ अर्जुननगरको चली। हम दोनों अपने विचारोंमें मग्न थे। पंडितजीकी गर्दन शरमसे झुकी हुई थी क्योंकि अब उनकी हैसियत रूठनेवालोंकी भांति नहीं, बल्कि मनानेवालोंकी तरह थी।

आज प्रणयके सूखे हुये धानमें फिर पानी पड़ेगा, प्रेमकी सूखी हुई नदी फिर उमड़ेगी!

जब हम विद्याधरीके द्वारपर पहुंचे तो दिन चढ़ आया था। पण्डितजी बाहरही रुक गये थे। मैं भीतर जाकर देखा तो विद्याधरी पूजापर थी। किन्तु वह किसी देवताकी पूजा न थी। देवताके स्थानपर 'पण्डितजीकी खड़ाऊं' रखी हुई थी। पातिव्रतका यह अलौकिक दृश्य देखकर मेरा हृदय पुलकित हो गया। मैंने दौड़कर विद्याधरीके चरणोंपर सिर झुका दिया। उसका शरीर सूखकर कांटा हो गया था और शोकने कमर झुका दी थी।

विद्याधरीने मुझे उठाकर छातीसे लगा लिया और बोली 'बहन मुझे लज्जित न करो। खूब आईं, बहुत दिनोंसे जी तुम्हें देखनेको तरस रहा था।'

मैंने उत्तर दिया—जरा अयोध्या चली गयी थी। जब हम दोनों अपने देशमें थीं तो जब मैं कहीं जाती तो विद्याधरीके लिये कोई न कोई उपहार अवश्य लाती। उसे यह बात

याद आ गई । सजलनयन हो कर बोली, 'मेरे लिये भी कुछ लाईं' ?

मैं—एक बहुत अच्छी वस्तु लाई हूं ।

विद्या—क्या है देखूं ?

मैं—पहले बूझ जाओ।

विद्या—सुहागकी पिटारी होगी ।

मैं—नहीं उससे अच्छी।

विद्या—ठाकुरजीकी मूर्ति ।

मैं—नहीं उससे भी अच्छी ।

विद्या—मेरे प्राणाधारका कोई समाचार ।

मैं—उससे भी अच्छा ।

विद्याधरी प्रबल आवेशसे व्याकुल होकर उठी कि द्वारपर जाकर पतिका स्वागत करे किन्तु निर्बलताने मनकी अभिलाषा न निकलने दी । तीन बार सम्हली और तीन बार गिरी तब मैंने उसका सिर अपने गोदमें रख लिया और आंचलसे हवा करने लगी । उसका हृदय बड़े वेगसे धड़क रहा था और पतिदर्शनका आनन्द आंखोंसे आंसू बनकर निकलता था।

जब जरा चित्त सावधान हुआ तो उसने कहा,—उन्हें बुलालो, उनका दर्शन मुझे रामबाण हो जायगा ।

ऐसाही हुआ । ज्योंही पण्डितजी अन्दर आये, विद्याधरी उठकर उनके पैरोंसे लिपट गई । देविने बहुत दिनोंके बाद पतिके दर्शन पाये हैं । अश्रुधारासे उनके पैर पखार रही है ।

मैंने वहां ठहरना उचित न समझा। इन दोनों प्राणियोंके हृदयमें कितनीही बात आ रही होंगी, दोनों क्या कहना और क्या क्या सुनना चाहते होंगे, यह विचार मैं उठ खड़ी हुई और बोली—बहिन अब मैं जाती हूं, शामको फिर आऊंगी। विद्याधरीने मेरी ओर आंखें उठायीं पुतलियोंके स्थानपर हृदय रखा हुआ था। दोनों आंखें आकाशकी ओर उठाकर बोली—ईश्वर तुम्हें इस यशका फल दें।

(१६)

ऐ मुसाफिर मैंने दो बार पण्डित श्रीधरको मौतके मुंहसे बचाया था किन्तु आजका सा आनन्द कभी न प्राप्त हुआ था।

जब मैं ज्ञानसागरपर पहुंची तो दोपहर हो आया था। विद्याधराकी शुभकामना मुझसे पहले ही पहुंच चुकी थी। मैंने देखा कि कोई पुरुष गुफासे निकलकर ज्ञानसागरकी ओर चला जाता है। मुझे आश्चर्य हुआ कि इस समय यहां कौन आया। लेकिन जब समीप आ गया तो मेरे हृदयमें ऐसी तरंगें उठने लगीं मानो छातीसे बाहर निकल पड़ेगा। यह मेरे प्राणेश्वर मेरे पतिदेव थे। मैं चरणोंपर गिरनाही चाहती थी कि उनका कर-पाश मेरे गलेमें पड़ गया।

पूरे दस वर्षोंके बाद आज मुझे यह शुभ-दिन देखना नसीब हुआ। मुझे उस समय ऐसा जान पड़ता था कि ज्ञानसागरके कमल मेरेही लिये खिले हैं गिरिराजने मेरेही लिये फूलकी शैया बिछाई है, हवा मेरेही लिये झूमती हुई आ रही है।

दस वर्षों के बाद मेरा उजड़ा हुआ घर बसा। ...त्र आखिर
दिन लौटे। मेरे आनन्दका अनुमान कौन कर सकता है। ...
मेरे पतिने प्रेमकरुण आंखोंसे देखकर कहा—'प्रेमवदा'

त्यागीका प्रेम।

लाला गोपीनाथको युवावस्थामें ही दर्शनसे प्रेम हो गया था। अभी वह इण्टरमीडियट क्लासमें थे कि मिल और बर्कलेके वैज्ञानिक विचार उनके कंठस्थ हो गये थे। उन्हें किसी प्रकारके विनोदप्रमोदसे रुचि न थी। यहां तक कि कालेजके क्रिकेट मैचोंमें भी उनको उत्साह न होता था। हास्य परिहाससे कोसों भागते और उनसे प्रेमकी चर्चा करना तो मानो बच्चेको जूजूसे डराना था। प्रातःकाल घरसे निकल जाते और शहरसे बाहर किसी सघन वृक्षकी छांहमें बैठकर दर्शनका अध्ययन करनेमें निरत हो जाते। काव्य, अलंकार, उपन्यास सभीको त्याज्य समझते थे। शायद ही अपने जीवनमें उन्होंने कोई किस्से कहानीकी किताब पढ़ी हो। इसे केवल समयका दुरुपयोग ही नहीं, वरन मन और बुद्धि विकासके लिये घातक ख्याल करते थे। इसके साथ ही वह उत्साहहीन न थे। सेवासमितियोंमें बड़े उत्साहसे भाग लेते। स्वदेशवासियोंकी सेवाके किसी अवसरको हाथसे न जाने देते। बहुधा मुहल्लेके छोटे छोटे दूकानदारोंकी दूकानपर जा बैठते और उनके घाटे टोटे, मंदे तेजेकी रामकहानी सुनते।

शनैः शनैः कालेजसे उन्हें घृणा हो गयी। उन्हें अब अगर किसी विषयमें प्रेम था तो वह दर्शन था। कालेजकी बहुविषयक शिक्षा उनके दर्शनानुरागमें बाधक होती। अतएव उन्होंने कालेज छोड़ दिया और एकाग्रचित्त होकर विद्योपार्जन करने लगे। किन्तु दर्शनानुरागके साथ ही साथ उनका देशानुराग भी बढ़ता गया और कालेज छोड़नेके थोड़े ही दिनों पश्चात् वह अनिवार्यतः आन्दोलनोंके दलमें सम्मिलित हो गये। देशमें भ्रम था, अविश्वास था, अंधकार था, जातिसेवामें सम्मान था यश था और दोनों की आकांक्षायें थीं। उनका वह सदनुराग जो वर्षोंसे वैज्ञानिक वादोंके नीचे दबा हुआ था, वायुके प्रचंड वेगके साथ निकल पड़ा। नगरके सार्वजनिक क्षेत्रमें कूद पड़े देखा तो मैदान खाली था। जिधर आंख उठाते सन्नाटा दिखायी देता। ध्वजाधारियोंकी कमी न थी, पर सच्चे हृदय कहीं नजर न आते थे। चारों ओरसे उनकी खींच होने लगी। किसी संस्थाके मंत्री बने, किसीके प्रधान, किसीके कुछ, किसीके कुछ। इसके आवेशमें दर्शनानुराग भी विदा हुआ। पिंजरेमें गानेवाली चिड़िया विस्तृत पर्वतराशियोंमें आकर अपना राग भूल गयी। अब भी वह समय निकाल कर दर्शनग्रंथोंके पन्ने उलट पलट लिया करते थे, पर विचार और अनुशीलनका अवकाश कहां। नित्य प्राणोंमें यही संग्राम होता रहता कि किधर जाऊं उधर या इधर? विज्ञान अपनी ओर खींचता देश अपनी ओर खींचता।

एक दिन वह इसी उलझनमें नदी के तटपर बैठे, हुये थे। जलधारा तटके दृश्यों और वायुके प्रतिकूल झोकोंकी परवाह न करते हुये बड़े वेगके साथ अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ी चली जाती थी। पर लाला गोपीनाथका ध्यान इस तरफ न था। वह अपने स्मृतिभंडारसे किसी ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषको खोज निकलना चाहते थे जिसने जाति सेवाके साथ विज्ञान सागरमें गोते लगाये हों। सहसा उनके कालेजके एक अध्यापक पंडित अमरनाथ अग्निहोत्री आकर उनके समीप बैठ गये और बोले—कहिये लाला गोपीनाथ, क्या ख़बरें है?

गोपीनाथने अन्यमनस्क होकर उत्तर दिया—कोई नयी बात तो नहीं हुई। पृथ्वी अपने गतिसे चली जा रही है।

अमरनाथ—म्युनिसिपल बोर्ड नम्बर २१ की जगह ख़ाली है, उसके लिये किसे चुनना निश्चित किया है?

गोपी—देखिये कौन होता है। आप भी खड़े हुये हैं।

अमर—अजी मुझे तो लोगोंने जबरदस्ती घसीट लिया नहीं तो मुझे इतनी फुर्सत कहां।

गोपी—मेरा भी यही विचार है। अध्यापकोंका क्रियात्मक राजनीतिमें फंसना बहुत अच्छी बात नहीं।

अमरनाथ इस व्यंगसे बहुत लज्जित हुये। एक क्षणके बाद प्रतिकारके भावसे बोले—तुम आजकल दर्शनका अभ्यास करते हो या नहीं?

गोपी—बहुत कम। इसी दुविधामें पड़ा हुआ हूं कि राष्ट्रीय सेवाका मार्ग ग्रहण करूं या सत्यकी खोजमें जीवन व्यतीत करूं।

अमर—राष्ट्रीय संस्थाओंमें सम्मिलित होनेका समय अभी तुम्हारे लिये नहीं आया। अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है जब तक विचारोंमें गाम्भीर्य्य और सिद्धान्तोंपर दृढ़ विश्वास न हो जाय उस समय तक केवल क्षणिक आवेशोंके वशवर्ती होकर किसी काममें कूद पड़ना अच्छी बात नहीं। राष्ट्रीय सेवा बड़े उत्तरदायित्वका काम है।

(२)

गोपीनाथने निश्चय कर लिया मैं जाति सेवामें जीवनक्षेप करूंगा। अमरनाथने भी यही फैसला किया कि मैं म्युनिसिपैलिटीमें अवश्य जाऊंगा। दोनोंका परस्पर विरोध उन्हें कर्म क्षेत्रकी ओर खींच ले गया। गोपीनाथकी साख पहले हीसे जम गयी थी घरके धनी थे। शक्कर और सोने चांदीकी दलाली होती थी। व्योपारियोंमें उनके पिताका बड़ा मान था। गोपीनाथके दो बड़े भाई थे। वह भी दलाली करते थे। परस्पर मेल था धन था, सन्तानें थीं। अगर न थी तो शिक्षा और शिक्षित समुदायमें गणना। वह बात गोपीनाथकी बदौलत प्राप्त हो गयी। इसलिये उनकी स्वच्छंदतापर किसीने आपत्ति नहीं की किसीने उन्हें धनोपार्जनके लिये मजबूर नहीं किया। अतएव गोपीनाथ निश्चिन्त और निश्शङ्क होकर राष्ट्रसेवामें

निरत हो गये। कहीं किसी अनाथालयके लिये चन्दे जमा करने, कहीं किसी कन्या पाठशालाके लिये भिक्षा मांगने फिरते। नगरकी कांग्रेस कमेटीने उन्हें अपना मंत्री नियुक्त किया। उस समय तक कांग्रेसने कार्यक्षेत्रमें पदार्पण नहीं किया था। उनकी कार्यशीलताने इस जीर्णसंस्थाका मानो पुनरुद्धार कर दिया। वह प्रातः से संध्या और बहुधा पहर रात तक इन्हीं कामोंमें लिप्त रहते थे। चन्देका रजिस्टर हाथमें लिये उन्हें नित्यप्रति सांझ सबेरे अमीरों और रईसोंके द्वार पर खड़े देखना एक साधारण दृश्य था। धीरे धीरे कितनेही युवक उनके भक्त हो गये। लोग कहते, कितना निस्स्वार्थ कितना आदर्शवादी, त्यागी जातिसेवक है। कौन सुबहसे शाम तक निस्स्वार्थ भावसे केवल जनताका उपकार करनेके लिये यों दौड़ धूप करेगा? उनका आत्मोत्सर्ग प्रायः द्वेषियोंको भी अनुरक्त कर देता था। उन्हें बहुधा रईसोंकी असभ्यता, असज्जनता, यहां तक कि उनके कटु शब्द भी सहने पड़ते थे। उन्हें अब विदित होता जाता था कि जातिसेवा बड़े अंशों तक केवल चन्दे मांगना है इसके लिये धनिकोंकी दर्बारदारी या दूसरे शब्दोंमें, खुशामद भी करनी पड़ती थी। दर्शनके उस गौरवयुक्त अध्ययन और इस दानलोलुपतामें कितना अंतर था। कहां मिल और केंट, स्पेन्सर और किडके साथ एकान्त में बैठे हुये जीव और प्रकृतिके गहन, गूढ़ विषयपर वार्तालाप, और कहां इन अभिमानी, असभ्य, मूर्ख व्यापारियोंके सामने

सिर झुकाना। वह अंतःकरणमें उनसे घृणा करते थे। वह धनी थे और केवल धन कमाना चाहते थे। इसके अतिरिक्त उनमें और कोई विशेष गुण न था। उनमें अधिकांश ऐसे थे जिन्होंने कपट व्यापारसे धनोपार्जन किया था। पर गोपीनाथ के लिये वह सभी पूज्य थे, क्योंकि उन्हींकी कृपादृष्टिपर उनकी राष्ट्रसेवा अवलम्बित थी।

इस प्रकार कई वर्ष व्यतीत हो गये। गोपीनाथ नगरके मान्य पुरुषोंमें गिने जाने लगे। वह दीनजनोंके आधार और दुखियारोंके मददगार थे। अब वह बहुत कुछ निर्भीक हो गये थे और कभी कभी रईसोंको भी कुमार्ग पर चलते देखकर फटकार दिया करते थे। उनकी तीव्र आलोचना भी अब चन्दे जमा करनेमें उनकी सहायक हो जाती थी।

अभी तक उनका विवाह न हुआ था। वह पहलेहीसे ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर चुके थे। विवाह करनेसे साफ़ इन्कार किया। मगर जब पिता और अन्य बन्धुजनोंने बहुत आग्रह किया, और उन्होंने स्वयं कई विज्ञान ग्रंथोंमें देखा कि इन्द्रियद-मन स्वास्थ्यके लिये हानिकर है तो असमंजसमें पड़े। कई हफ्ते सोचते हो गये और वह मनमें कोई बात पक्की न कर सके। स्वार्थ और परमार्थमें संघर्ष हो रहा था। विवाहका अर्थ था अपनी उदारताकी हत्या करना, अपने विस्तृत हृदयको संकुचित करना, राष्ट्रके लिये जीना। वह अब इतने ऊँचे आद-र्शका त्याग करना निन्द्य और उपहास्यजनक समझते थे।

इसके अतिरिक्त अब वह अपने कारणोंसे अपनेको पारिवारिक जीवनके अयोग्य पाते थे। जीविकाके लिये जिस उद्योगशीलता, जिस अनवरत परिश्रम और जिस मनोवृत्तिकी आवश्यकता है वह उनमें न रही थी। जातिसेवामें भी उद्योगशीलता और अध्यवसायकी कम जरूरत न थी, लेकिन उसमें आत्मगौरवका हनन न होता था। परोपकारके लिये भिक्षा मांगना दान है, अपने लिये पानका एक बीड़ा भी भिक्षा है। स्वभावमें एक प्रकारकी स्वच्छन्दता आ गयी थी। इन त्रुटियोंपर परदा डालनेके लिये जातिसेवाका बहाना बहुत अच्छा था।

एक दिन वह सैर करने जा रहे थे कि रास्तेमें अध्यापक अमरनाथसे मुलाकात हो गयी। यह महाशय अब म्युनिसिपल बोर्डके मंत्री हो गये थे और आज कल इस दुविधामें पड़े हुये थे कि शहरमें मादकवस्तुओंके बचनेका ठीका लूं या न लूं। लाभ बहुत था पर बदनामी भी कम न थी। अभी तक कुछ निश्चय न कर सके थे। इन्हें देखकर बोले—कहिये लालाजी, मिज़ाज अच्छा है न! आपके विवाहके विषयमें क्या हुआ?

गोपीनाथने दृढ़तासे कहा–मेरा इरादा विवाह करनेका नहीं है।

अमरनाथ—ऐसी भूल न करना। तुम अभी नवयुवक हो, तुम्हें संसारका कुछ अनुभव नहीं है। मैंने ऐसी कितनी मिसालें देखी है जहां अविवाहित रहनेसे लाभके बदले हानि ही हुई है। विवाह मनुष्यको सुमार्गपर रखनेका सबसे उत्तम

साधन है जिसे अबतक मनुष्यने आविष्कृत किया है। उस व्रतसे क्या फ़ायदा जिसका परिणाम छिछोरापन हो।

गोपीनाथने प्रत्युत्तर दिया—'आपने मादक वस्तुओंके ठीकेके विषयमें क्या निश्चय किया ?

अमर—अभी तक कुछ नहीं। जी हिचकता है। कुछ न कुछ बदनामी तो हो ही गो

गोपी—एक अध्यापकके लिये मैं इस पेशेको अपमान समझता हूं।

अमर—कोई पेशा ख़राब नहीं है अगर ईमानदारीसे किया जाय।

गोपी—यहाँ मेरा आपसे मतभेद है। कितने ऐसे व्यवसाय हैं जिन्हें एक सुशिक्षित व्यक्ति कभी स्वीकार नहीं कर सकता। मादक वस्तुओंका ठीका उनमें एक है।

गोपीनाथने आकर अपने पितासे कहा मैं कदापि विवाह न करूंगा। आप लोग मुझे विवश न करें, वरना पछताइ-येगा।

अमरनाथने उसी दिन ठीकेके लिये प्रार्थनापत्र भेज दिया और वह स्वीकृत भी हो गया।

(३)

दो साल हो गये हैं। लाला गोपीनाथने एक कन्या पाठशाला खोली है और उसके प्रबन्धक हैं। शिक्षाकी विभिन्न पद्धतियोंका उन्होंने खूब अध्ययन किया है और इस पाठशा-

लोंमें यह उनका व्यवहार कर रहे हैं। शहरमें यह पाठशाला बहुत ही सर्वप्रिय है। इसने बहुत अंशोंमें उस उदासीनताका परिशोध कर दिया है जो माता पिताको पुत्रियोंकी शिक्षाकी ओर होती है। शहरके गण्य मान्य पुरुष अपनी लड़कियोंको सहर्ष पढ़ने भेजते हैं। यहांकी शिक्षाशैली कुछ ऐसी मनोरंजक है कि बालिकायें एक बार जाकर मानो मंत्रमुग्ध हो जाती हैं। फिर उन्हें घरपर चैन नहीं मिलता। ऐसी व्यवस्था की गयी कि तीन चार वर्षोंमें ही कन्याओंको गृहस्थीके मुख्य कामोंसे परिचय हो जाय। सबसे बड़ी बात यह है कि यहां धर्मशि-क्षाका भी समुचित प्रबन्ध किया गया है। अबकी सालसे प्रबन्धक महोदयने अंगरेजीकी कक्षायें भी खोल दी हैं। एक सुशिक्षक गुजराती महिलाको बम्बईसे बुलाकर पाठशाला उनके हाथमें दे दी है। इन महिलाका नाम है आनन्दी बाई। विधवा हैं हिन्दी भाषासे भलीभांति परिचित नहीं हैं किन्तु गुजरातीमें कई पुस्तकें लिख चुकी हैं। कई कन्या पाठशाला-ओंमें काम कर चुकी हैं। शिक्षा सम्बन्धी विषयोंमें अच्छी गति है। उनके आनेसे मदरसेमें और भी रौनक आ गयी है। कई प्रतिष्ठित सज्जनोंने जो अपनी बालिकाओंको मंसूरी और नैनी-ताल भेजना चाहते थे अब उन्हें यहीं भरती करा दिया है। आनन्दी रईसोंके घरोंमें जाती हैं और स्त्रियोंमें शिक्षाका प्रचार करती हैं। उनके वस्त्राभूषणोंसे सुरुचिका बोध होती है। हैं भी उच्चकुलकी, इसलिये शहरमें उनका बड़ा सम्मान होता

है। लड़कियां उनपर जान देती हैं, उन्हें मां कहकर पुकारती हैं। गोपीनाथ पाठशालाकी उन्नति देख देखकर फूले नहीं समाते। जिससे मिलते हैं आनन्दीबाईका ही गुणगान करते हैं। बाहरसे कोई सुविख्यात पुरुष आता है तो उससे पाठशालाका निरीक्षण अवश्य कराते हैं। आनन्दीकी प्रशंसासे उन्हें वही आनन्द प्राप्त होता है जो स्वयं अपनी प्रशंसासे होता। बाईजीको भी दर्शनसे प्रेम है, और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्हें गोपीनाथपर असीम श्रद्धा है। वह हृदयसे उनका सम्मान करती हैं। उनके त्याग और निष्काम जातिभक्तिने उन्हें वशीभूत कर लिया है। वह मुंहपर तो उनकी बड़ाई नहीं करतीं पर रईसोंके घरोंमें बड़े प्रेमसे उनका यशगान करती हैं। ऐसे सच्चे सेवक आजकल कहां? लोग कीर्तिपर जान देते हैं। जो थोड़ी बहुत सेवा करते हैं दिखावेके लिये। सच्ची लगन किसीमें नहीं। मैं लालाजीको पुरुष नहीं देवता समझती हूं। कितना सरल, संतोषमय जीवन है। न कोई व्यसन, न विलास। भोरसे सायंकाल तक दौड़ते रहते हैं, न खानेका कोई समय न सोनेका समय। उसपर कोई ऐसा नहीं जो उनके आरामका ध्यान रखे। बिचारे घर गये जो कुछ किसीने सामने रख दिया चुपकेसे खा लिया, फिर छड़ी उठायी और किसी तरफ चल दिये। दूसरी औरत कदापि अपनी पत्नीकी भांति सेवा सत्कार नहीं कर सकती।

दशहरेके दिन थे। कन्या पाठशालामें उत्सव मनानेकी

तैयारियां हो रही थीं। एक नाटक खेलनेका निश्चय किया गया था। भवन खूब सजाया गया। शहरके रईसोंको निमंत्रण दिये गये थे। यह कहना कठिन है कि किसका उत्साह बढ़ा हुआ था, बाईजीका या लाला गोपीनाथका। गोपीनाथ सामग्रियां एकत्र कर रहे थे, उन्हें अच्छे ढंगसे सजानेका भार आनन्दीने लिया था। नाटक भी इन्हींने रचा था। नित्यप्रति उसका अभ्यास कराती थीं और स्वयं एक पार्ट ले रखा था।

विजया दशमी आ गयी। दोपहर तक गोपीनाथ फ़र्श और कुरसियोंका इन्तज़ाम करते रहे। जब एक बज गया और अब भी वह वहांसे न टले तो आनन्दीने कहा—लालाजी, आपको भोजन करनेको देर हो रही है। अब सब काम हो गया है जो कुछ बच रहा है मुझपर छोड़ दीजिये।

गोपीनाथने कहा—खा लूंगा। मैं ठीक समयपर भोजन करनेका पाबन्द नहीं हूं। फिर घर तक कौन जाय। घंटों लग जायेंगे। भोजनके उपरान्त आराम करनेको जी चाहेगा। शाम हो जायगी।

आनन्दी—भोजन तो मेरे यहां तैयार है, ब्राह्मणीने बनाया है। चलकर खा लीजिये और यहीं ज़रा देर आराम भी कर लीजिये।

गोपीनाथ—यहां क्या खालूं! एक वक्त न खाऊंगा तो ऐसी कौन सी हानि हो जायगी।

आनन्दी—जब भोजन तैयार है तो उपवास क्यों कीजियेगा।

गोपीनाथ—आप जायें, आपको अवश्य देर हो रही है। मैं काममें ऐसा भूला कि आपकी सुधि ही न रही।

आनन्दी—मैं भी एक जून उपवास कर लूंगी तो क्या हानि होगी।

गोपीनाथ—नहीं नहीं इसकी क्या जरूरत है। मैं आपसे सच कहता हूं मैं बहुधा एकही जून खाता हूं।

आनन्दी—अच्छा मैं आपके इनकारका माने समझ गयी। इतनी मोटी बात अब तक मुझे न सूझी।

गोपीनाथ—क्या समझ गयी? मैं छूतछात नहीं मानता। यह तो आपको मालूम ही है।

आनन्दी—इतना जानती हूं। किन्तु, जिस कारणसे आप मेरे यहां भोजन करनेसे इनकार कर रहे हैं उसके विषयमें केवल इतना निवेदन है कि मुझे आपसे केवल स्वामी और सेवकका सम्बन्ध नहीं है। मुझे आपसे आत्मीयताका सम्बन्ध है। आपका मेरे पानफूलको अस्वीकार करना अपने एक सच्चे भक्तके मनको आघात पहुंचाना है। मैं आपको इसी दृष्टिसे देखती हूं।

गोपीनाथको अब कोई आपत्ति न हो सकी। जाकर भोजन कर लिया। वह जब तक आसन पर बैठे रहे आनन्दी बैठी पंखा झलती रही।

इस घटनाकी लाला गोपीनाथके मित्रोंने यों आलोचना की "महाशयजी अब तो वहीं ("वहीं" पर ख़ूब ज़ोर देकर) भोजन भी करते हैं।"

(४)

शनैः शनैः परदा हटने लगा। लाला गोपीनाथको अब परवशताने साहित्यसेवी बना दिया था। घरसे उन्हें आवश्यक सहायता मिल जाती थी किन्तु पत्रों और पत्रिकाओं तथा अन्य अनेक कामोंके लिये उन्हें घरवालोंसे कुछ मांगते हुए बहुत संकोच होता था। उनका आत्मसम्मान ज़रा ज़रासी बातोंके लिये भाइयोंके सामने हाथ फैलाना अनुचित समझता था। वह अपनी ज़रूरतें आप पूरी करनी चाहते थे। घरपर भाइयोंके लड़के इतना कोलाहल मचाते कि उनका जी कुछ लिखनेमें न लगता। इसलिए जब उनकी कुछ लिखनेकी इच्छा होती तो बेखटके पाठशालामें चले जाते। आनन्दी बाई भी वहीं रहती थीं। वहां न कोई शोर था न गुल। एकान्तमें काम करनेमें जी लगता। भोजनका समय आ जाता तो वहीं भोजन भी कर लेते। कुछ दिनोंके बाद उन्हें बैठकर लिखनेमें कुछ असुविधा होने लगी (आंखें कमज़ोर हो गयी थीं) तो आनन्दीने लिखनेका भार अपने सिर ले लिया। लाला साहब बोलते थे, आनन्दी लिखती थीं। गोपीनाथकी प्रेरणासे उसने हिन्दी सीखी थी और थोड़ेही दिनोंमें इतनी अभ्यस्त हो गयी थी कि लिखनेमें जरा भी हिचक न होती। लिखते समय कभी कभी

उसे ऐसे शब्द और मुहावरे सूझ जाते कि गोपीनाथ फड़क फड़क उठते, उनके लेखमें जानसी पड़ जाती। वह कहते यदि तुम स्वयं कुछ लिखो तो मुझसे बहुत अच्छा लिखोगी। मैं तो बेगारी करता हूं। तुम्हें परमात्माकी ओरसे यह शक्ति प्रदान हुई है। नगरके लालबुझक्कड़ोंमें इस सहकारितापर टीका टिप्पणियाँ होने लगीं। पर सज्जन अपनी आत्माकी शुचिताके सामने ईर्षाके व्यंगकी कब परवाह करते हैं। आनन्दी कहती—यह तो संसार है, जिसके मनमें जो आवे कहे, पर मैं उस पुरुषका निरादर नहीं कर सकती जिसपर मेरी श्रद्धा है। पर गोपीनाथ इतने निर्भीक न थे। उनकी सुकीर्तिका आधार लोकमत था। यह उसकी भर्त्सना न कर सकते थे। इसलिये वह दिनके बदले रातको रचना करने लगे। पाठशालामें इस समय कोई देखनेवाला न होता था। रातकी नीरवतामें खूब जी लगता। आरामकुरसीपर लेट जाते। आनन्दी मेज़के सामने क़लम हाथमें लिये उनकी ओर देखा करती। जो कुछ उनके मुखसे निकलता तुरंत लिख लेती। उसकी आँखोंसे विनय और शील, श्रद्धा और प्रेमकी किरणसी निकलती हुई जान पड़ती। गोपीनाथ जब किसी भावको मनमें व्यक्त करनेके बाद आनन्दीकी ओर ताकते कि वह लिखनेके लिये तैयार है या नहीं तो दोनों व्यक्तियोंकी निगाहें मिलतीं और आप ही आप झुक जातीं। गोपीनाथको इस तरह काम करनेकी ऐसी आदत पड़ती जाती थी कि जब किसी कार्य्यवश

यहां आनेका अवसर न मिलता तो वह विकल हो जाते थे।

आनन्दीसे मिलनेके पहले गोपीनाथको स्त्रियोंका जो कुछ ज्ञान था वह केवल पुस्तकोंपर अवलम्बन था। स्त्रियोंके विषयमें प्राचीन और अर्वाचीन प्राच्य और पाश्चात्य, सभी विद्वानोंका एक ही मत था—वह मायावी आत्मिक उन्नतिकी बाधक, परमार्थकी विरोधिनी वृत्तियोंको कुमार्गकी ओर लेजानेवाली, हृदयको संकीर्ण बनानेवाली होती हैं। इन्हीं कारणोंसे उन्होंने इस मायावी जातिसे अलग रहनाही श्रेयस्कर समझा था, किन्तु अब अनुभव बतला रहा था कि स्त्रियां सन्मार्गकी ओर भी ले जा सकती हैं, उनमें सद्गुण भी हो सकते हैं वह कर्त्तव्य और सेवाके भावोंको जाग्रत भी कर सकती हैं। तब उनके मनमें प्रश्न उठता यदि आनन्दीसे मेरा विवाह होता तो मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी। उसके साथ तो मेरा जीवन बड़े आनन्दसे कट जाता। एक दिन वह आनन्दीके यहां गये तो सिरमें दर्द हो रहा था। कुछ लिखनेकी इच्छा न हुई। आनन्दीको इसका कारण मालूम हुआ तो उसने उनके सिरमें धीरे धीरे तेल मलना शुरू किया। गोपीनाथको उस समय अलौकिक सुख मिल रहा था। मनमें प्रेमकी तरंगे उठ रही थीं—नेत्र, मुख, वाणी—सभी प्रेममें पगे जाते थे। उसी दिनसे उन्होंने आनन्दीके यहां आना छोड़ दिया। एक सप्ताह बीत गया और न आये। आनन्दीने लिखा आपसे पाठशाला सम्बन्धी कई विषयोंमें राय लेनी है। अवश्य

आइये। तब भी न गये। उसने फिर लिखा मालूम होता है आप मुझसे नाराज़ हैं। मैंने जान बूझकर तो कोई ऐसा काम नहीं किया लेकिन यदि वास्तवमें आप नाराज़ हैं तो मैं यहां रहना उचित नहीं समझती। अगर आप अब भी न आयेंगे तो मैं द्वितीय अध्यापिकाको चार्ज देकर चली जाऊंगी। गोपीनाथपर इस धमकीका भी कुछ असर न हुआ। अब भी न गये। अंतमें दो महीने तक खिंचे रहनेके बाद उन्हें ज्ञात हुआ कि आनन्दी बीमार है और कई दिनसे पाठशाला नहीं आ सकी। तब वह किसी तर्क या युक्तिसे अपनेको न रोक सके। पाठशालामें आये और कुछ झिझकते, कुछ सकुचाते, आनन्दीके कमरेमें क़दम रखा। देखा तो चुपचाप पड़ी हुई थी। मुख पीला था, शरीर घुल गया था। उसने उनकी ओर दया-प्रार्थी नेत्रोंसे देखा। उठना चाहा पर अशक्तिने उठने न दिया। गोपीनाथने आर्द्र कंठसे कहा—लेटी रहो, 'लेटी रहो' उठनेकी ज़रूरत नहीं, मैं बैठ जाता हूं। डाक्टर साहब आये थे?

सिआहतने कहा—जी हां दोबार आये थे। दवा दे गये हैं। गोपीनाथने नुसख़ा देखा। डाक्टरीका साधारण ज्ञान था। नुसख़ेसे ज्ञात हुआ—हृद्रोग है। औषधियां सभी पुष्टिकर और बलवर्धक थीं। आनन्दीकी ओर फिर देखा। उसकी आंखोंसे अश्रुधारा बह रही थी। उनका गला भी भर आया। हृदय मसोसने लगा। गद्गद होकर बोले—आनन्दी तुमने मुझे पहले इसकी सूचना न दी नहीं तो रोग इतना न बढ़ने पाता।

आनन्दी—कोई बात नहीं है अच्छी हो जाऊंगी, जल्दही अच्छी हो जाऊंगी। मर भी जाऊंगी तो कौन रोनेवाला बैठा हुआ है। यह कहते कहते वह फूट फूट रोने लगी।

गोपीनाथ दार्शनिक थे पर अभी तक उनके मनके कोमल भाव शिथिल न हुए थे। कम्पितस्वरसे बोले—आनन्दी, संसा-रमें कमसे कम एक ऐसा आदमी है जो तुम्हारे लिये अपने प्राण तक दे देगा। यह कहते कहते वह रुक गये। उन्हें अपने शब्द और भाव कुछ भद्दे और उच्छृंखलसे जान पड़े। अपने मनोभावोंको प्रकट करनेके लिये वह इन सारहीन शब्दोंकी अपेक्षा कहीं अधिक काव्यमय, रसपूर्ण, अनुरक्त शब्दोंका व्यवहार करना चाहते थे पर वह इस वक्त याद न पड़े।

आनन्दीने पुलकित होकर कहा—दो महीने तक किसपर छोड़ दिया था?

गोपीनाथ—इन दो महीनोंमें मेरी जो दशा थी वह मैं ही जानता हूं। यही समझ लो कि मैंने आत्महत्या नहीं की, यही बड़ा आश्चर्य्य है। मैंने न समझा था कि अपने व्रतपर स्थिर रहना मेरे लिये कितना कठिन हो जायगा।

आनन्दीने गोपीनाथका हाथ धीरेसे अपने हाथमें लेकर कहा—अब तो कभी इतनी कठोरता न कीजियेगा?

गोपीनाथ (संचिन्त होकर) अन्त क्या है।

आनन्दी—कुछ भी हो!

गोपी—कुछ भी हो?

आनन्दी—हां कुछ भी हो।

गोपी—अपमान, निन्दा, उपहास, आत्मवेदना।

आनन्दी—कुछ भी हो, मैं सब कुछ सह सकती हूं और आपको भी मेरे हेतु सहना पड़ेगा।

गोपी—आनन्दी, मैं अपनेको प्रेमपर बलिदान कर सकता हूं, लेकिन अपने नामको नहीं। इस नामको अकलंकित रख-कर मैं समाजकी बहुत कुछ सेवा कर सकता हूं।

आनन्दी—न कीजिये। आपने सब कुछ त्याग कर यह कीर्ति लाभ की है, मैं आपके यशको नहीं मिटाना चाहती (गोपीनाथका हाथ हृदयस्थलपर रखकर) इसको चाहती हूं। इससे अधिक त्यागकी आकांक्षा नहीं रखती।

गोपी—दोनों बातें एक साथ संभव हैं?

आनन्दी—सम्भव है। मेरे लिये सम्भव है। मैं प्रेमपर अपनी आत्माको भी न्योछावर कर सकती हूं।

(५)

इसके पश्चात् लाला गोपीनाथने आनन्दीकी बुराई कर-नी शुरू की। मित्रोंसे कहते, उनका जी अब काममें नहीं लगता। पहलेकी सी तनदेही नहीं है। किसीसे कहते उनका जी अब यहांसे उच्चाट हो गया है, अपने घर जाना चाहती हैं उनकी इच्छा है कि मुझे प्रतिवर्ष तरक्की मिला करे और उसकी यहां गुजाइश नहीं। पाठशाला कई बार देखा और अपनी आलोचनामें कामको असन्तोषजनक लिखा। शिक्षा, सङ्गठन,

उत्साह, सुप्रबन्ध सभी बातोंमें निराशाजनक क्षति पायी। वार्षिक अधिवेशनमें जब कई सदस्योंने आनन्दीकी वेतनवृद्धिका प्रस्ताव उपस्थित किया तो लाला गोपीनाथने उसका विरोध किया। उधर आनन्दी बाई भी गोपीनाथके दुखड़े रोने लगीं। यह मनुष्य नहीं हैं, पत्थरके देवता हैं। इन्हें प्रसन्न करना दुस्तर है, अच्छाही हुआ कि उन्होंने विवाह नहीं किया नहीं तो दुखिया इनके नखरे उठाते उठाते सिधार जाती। कहांतक कोई सफाई और सुप्रबन्धपर ख्याल दे। दीवारपर एक धब्बा भी पड़ गया, किसी कोने खुतरेमें एक जाला भी लग गया, बरामदोंमें कागजका एक टुकड़ा भी पड़ा मिल गया तो आपके तीवर बदल जाते हैं। दो साल मैंने ज्यों त्यों करके निबाहा, लेकिन देखती हूं तो लाला साहबकी निगाह दिनोंदिन कड़ी होती जाती है ऐसी दशामें मैं यहां अधिक नहीं ठहर सकती। मेरे लिये नौकरीका कल्याण नहीं है, जब जी चाहेगा उठ खड़ी हूंगी। यहां आप लोगोंसे मेल मुहब्बत हो गई है, कन्याओंसे ऐसा प्यार हो गया है कि छोड़कर जानेको जी नहीं चाहता। आश्चर्य था कि और किसीको पाठशालाकी दशामें अवनति न दीखती थी, बल्कि हालत पहलेसे अच्छी थी।

एक दिन पण्डित अमरनाथकी लालाजीसे भेंट हो गई। उन्होंने पूछा कहिये पाठशाला खूब चल रही है न ?

गोपी—कुछ न पूछिये। दिनोंदिन दशा गिरती जाती है।

अम०—आनन्दी बाईकी ओरसे ढील है क्या ?

गोपी—जी हां सरासर। अब काम करनेमें उनका जी ही नहीं लगता। बैठी हुई योग और ज्ञानके ग्रंथ पढ़ा करती हैं। कुछ कहता हूं तो कहती हैं मैं अब इससे और अधिक कुछ नहीं कर सकती। कुछ परलोककी भी चिन्ता करूं कि चौबीसों घंटे पेटके धंधोंहीमें लगी रहूं। पेटके लिये पांच घंटे बहुत हैं। पहले कुछ दिनोंतक बारह घंटे करती थी पर वह दशा स्थायी नहीं रह सकती थी। यहां आकर मैंने अपना स्वास्थ्य खो दिया। एक बार कठिन रोगमें ग्रस्त हो गई। क्या कमेटीने मेरा दवा-दर्पनका खर्च दे दिया? कोई बात पूछने भी आया? फिर अपनी जान क्यों दूं। सुना है घरोंमें मेरी बदगोई भी किया करती है। अमरनाथ मार्मिकभावसे बोले—यह बातें मुझे पहले ही मालूम थीं।

दो साल और गुज़र गये। रातका समय था कन्या पाठशालाके ऊपरवाले कमरेमें लाला गोपीनाथ मेज़के सामने कुरसीपर बैठे हुये थे। सामने आनन्दी कोचपर लेटी हुई थी। मुख बहुत म्लान हो रहा था। कई मिनिट तक दोनों विचारमें मग्न थे। अन्तमें गोपीनाथ बोले—मैंने पहले ही महीनेमें तुमसे कहा था कि मथुरा चली आओ।

आनन्दी—वहां दस महीने क्योंकर रहती। मेरे पास इतने रुपये कहां थे, और न तुम्हींने कोई प्रबन्ध करनेका आश्वासन दिया। मैंने सोचा तीन चार महीने यहां और रहूं। तब तक किफायत करके कुछ बचा लूंगी, तुम्हारी किताबसे भी कुछ

रुपये मिल जांयगे तब मथुरा चली जाऊंगी। मगर यह क्या मालूम था कि बीमारी भी इसी अवसरकी ताकमें बैठी हुई है। मेरी दशा दो चार दिनके लिये भी संभली और मैं चली। इस दशामें तो मेरे लिये यात्रा करना असम्भव है।

गोपी—मुझे भय है कि कहीं बीमारी तूल न खींचे। संग्रहणी असाध्य रोग है। महीने दो महीने यहां और रहने पड़ गये तो बात खुल जायगी।

आनन्दी—(चिढ़कर) खुल जायगी खुल जाय। अब इससे कहां तक डरूं।

गोपी— मैं भी न डरता अगर मेरे कारण नगरकी कई संस्थाओंका जीवन संकटमें न पड़ जाता। इसीलिये मैं बदनामीसे डरता हूं। समाजके यह बंधन निरे पाखंड हैं। मैं उन्हें सम्पूर्णतः अन्याय समझता हूं। इस विषयमें तुम मेरे विचारों को भली भांति जानती हो पर करूं क्या। दुर्भाग्यवश मैंने जातिसेवाका भार अपने ऊपर ले लिया है और उसीका फल है कि आज मुझे अपने माने हुए सिद्धान्तोंको तोड़ना पड़ रहा है और जो वस्तु मुझे प्राणोंसे भी प्रिय है उसे यों निर्वासित करना पड़ रहा है।

किन्तु आनन्दीकी दशा संभलनेकी जगह दिनों दिन गिरती ही गयी। कमजोरीसे उठना बैठना कठिन हो गया। किसी वैद्य या डाक्टरको उसकी अवस्था न दिखायी जाती थी। गोपीनाथ दवायें लाते थे, आनन्दी उनका सेवन करती थी और

दिनदिन निर्बल होती जाती थी। पाठशालेसे उसने छुट्टी लेली थी। किसीसे मिलती जुलती भी न थी। बार बार चेष्टा करती कि मथुरा चली जाऊं, किन्तु एक अनजान नगर में अकेले कैसे रहूंगी, न कोई आगे न पीछे: कोई एक घोंट पानी-देनेवाला भी नहीं। यह सब सोचकर उसकी हिम्मत टूट जाती थी। इसी सोच विचार और हैसबैसमें दो महीने और गुज़र गये और अंतमें विवश होकर आनन्दीने निश्चय किया कि अब चाहे कुछ सिरपर बीते, यहांसे चल ही दूं। अगर सफ़रमें मर भी जाऊंगी तो क्या चिंता है। उनकी बदनामी तो न होगी। उनके यशको कलंक तो न लगेगा। मेरे पीछे ताने तो न सुनने पड़ेंगे। सफ़रकी तैयारियां करने लगी। रातको जानेका मुहूर्त था, कि सहसा संध्या-कालहीसे प्रसवपीड़ा होने लगी और ग्यारह बजते बजते एक नन्हा सा, दुर्बल सतमांसा बालक प्रसव हुआ। बच्चे के होनेकी आवाज़ सुनते ही लाला गोपी-नाथ बेतहाशा ऊपरसे उतरे और गिरते पड़ते घर भागे। आनन्दीने इस भेदको अंत तक छिपाये रखा, अपनी दारुण प्रसवपीड़ाका हाल किसीसे न कहा, दाईको भी सूचना न दी, मगर जब बच्चे के रोनेकी ध्वनि मदरसेमें गूंजी तो क्षणमात्रमें दाई सामने आकर खड़ी हो गई। नौकरानियोंको पहलेही से शंकायें थीं। उन्हें कोई आश्चर्य न हुआ। जब दाईने आन-न्दीको पुकारा तो वह सचेत हो गई। देखा तो बालक रो रहा है।

(६)

दूसरे दिन दस बजते बजते यह समाचार सारे शहरमें फैल गया। घर घर चर्चा होने लगी। कोई आश्चर्य करता था, कोई घृणा करता, कोई हँसी उड़ाता था। लाला गोपीनाथके छिद्रान्वेषियोंकी संख्या कम न थी। पंडित अमरनाथ उनके मुखिया थे। उन लोगोंने लालाजीकी निन्दा करनी शुरू की। जहां देखिये वहां दो चार सज्जन बैठे, गोपनीय भावसे इसी घटनाकी आलोचना करते नजर आते थे। कोई कहता था उस स्त्रीके लक्षण पहले ही से विदित हो रहे थे। अधिकांश आदमियोंकी रायमें गोपीनाथने यह बुरा किया। यदि ऐसा ही प्रेमने जोर मारा था तो उन्हें निडर होकर विवाह कर लेना चाहिये था। यह काम गोपीनाथका है इसमें किसीको भ्रम न था। केवल कुशल समाचार पूछनेके बहानेसे लोग उनके घर जाते और दो चार अन्योक्तियां सुनाकर चले आते थे। इसके विरुद्ध आनन्दीपर लोगोंको दया आती थी। पर लालाजीके ऐसे भक्त भी थे जो लालाजीके माथे यह कलंक मढ़ना पाप समझते थे। गोपीनाथने स्वयं मौन धारण कर लिया था। सब की भली बुरी बातें सुनते थे पर मुंह न खोलते थे। इतनी हिम्मत न थी कि सबसे मिलना छोड़ दें।

प्रश्न था, अब क्या हो। आनन्दी बाईके विषयमें तो जनता ने फैसला कर दिया। बहस यह थी कि गोपीनाथके साथ क्या व्यवहार किया जाय। कोई कहता था उन्होंने जो कुकर्म

किया है उसका फल भोगें। आनन्दीबाईको नियमितरूपसे घरमें रखें। कोई कहता हमें इससे क्या मतलब, आनन्दी जानें और वह जानें, दोनों जैसेके तैसे हैं, जैसे उदई वैसे भान, न उनके चोटी न उनके कान। लेकिन इन महाशयको पाठशाला के अन्दर अब कदम न रखने देना चाहिये। जनताके फैसले साक्षी नहीं खोजते। अनुमान ही उसके लिये सबसे बड़ी गवाही है।

लेकिन पं० अमरनाथ और उनकी गोष्ठिके लोग गोपीनाथ का इतने सस्ते न छोड़ना चाहते थे। उन्हें गोपीनाथसे पुराना द्वेष था। यह कलका लौंडा, दर्शनकी दो चार पुस्तकें उलट पलट कर, गजलोंमें कुछ शुद्धचुद्ध लरके लीडर बना हुआ विचरे, खुनहरी ऐनक लगाये, रेशमी चादर गलेमें डाले, यों गर्वसे ताके मानो सत्य और प्रेमका पुतला है। ऐसे रंगे सियारोंकी जितनी कलई खोली जाय उतना ही अच्छा। जातिको ऐसे दगाबाज चरित्रहीन, दुर्बलात्मा सेवकोंसे सचेत कर देना चाहिये। पंडित अमरनाथ पाठशालाके अध्यापिकाओं और नौकरोंसे तहकीकात करते थे। लालाजी कब आते थे, कब जाते थे, कितनी देर रहते थे, यहां क्या किया करते थे, तुम लोग उनकी उपस्थितिमें वहां जाने पाते थे या रोक थी। लेकिन यह छोटे छोटे आदमी, जिन्हें गोपीनाथसे संतुष्ट रहने का कोई कारण न था (उनकी सख्तीकी नौकर लोग बहुत शिकायत किया करते थे) इस दुरावस्थामें उनके पेयोपक

परदा डालने लगे। अमरनाथने बहुत प्रलोभन दिया, डराया, धमकाया पर किसीने भी गोपीनाथके विरुद्ध साक्षी न दी।

उधर लाला गोपीनाथने उसी दिनसे आनन्दीके घर आना जाना छोड़ दिया। दो हफ्ते तक तो वह अभागिनी किसी तरह कन्या पाठशालामें रही। पंद्रहवें दिन प्रबन्धक समितिने उसे मकान खाली कर देनेका नोटिस दे दिया। महीने भरकी मुहलत देना भी उचित न समझा। अब वह दुखिया, एक तंग मकानमें रहती थी, कोई पूछनेवाला न था। बच्चा कमजोर, खुद बीमार न कोई आगे न पीछे न कोई दुखका संगी न साथी, शिशुको गोदमें लिये दिनके दिन बेदानापानी पड़ी रहती थी। एक बुढ़िया महरी मिल गयी थी जो बर्तन धोकर चली जाती थी। कभी कभी शिशुको छातीसे लगाये रातकी रात रह जाती। पर धन्य है उसके धैर्य और संतोष को। लाला गोपीनाथसे न मुहमें कोई शिकायत थी न दिलमें। सोचती, इन परिस्थितियोंमें उन्हें मुझसे पराङ्मुख ही रहना चाहिये। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है। उनके बदनाम होनेसे नगरकी कितनी बड़ी हानि होती। सभी उनपर संदेह करते हैं पर किसीको यह साहस तो नहीं हो सकता कि उनके विपक्षमें कोई प्रमाण दे सके!

यह सोचते हुये उसने स्वामी अभेदानन्दकी एक पुस्तक उठायी और उसके एक अध्यायका अनुवाद करने लगी। अब उसकी जीविकाका एक मात्र यही आधार था। सहसा

किसीने धीरेसे द्वार खटखटाया। वह चौंक पड़ी। लाला गोपीनाथकी आवाज मालूम हुई। उसने तुरंत द्वार खोल दिया। गोपीनाथ आकर खड़े हो गये और सोते हुये बालकको प्यारसे देखकर। बोले 'आनन्दी मैं तुम्हें मुंह दिखाने लायक नहीं हूं। मैं अपनी भीरुता और नैतिकदुर्बलतापर अत्यन्त लज्जित हूं। यद्यपि मैं जानता हूं कि मेरी बदनामी जो कुछ होनी थी वह हो चुकी। मेरे नामसे चलनेवाली संस्थाओंकी जो हानि पहुंचनी थी पहुंच चुकी। अब असम्भव है कि मैं जनताको अपना मुंह फिर दिखाऊं और न वह मुझपर विश्वास ही कर सकती है। इतना जानते हुये भी मुझमें इतना साहस नहीं है कि अपने कुकृत्यका भार अपने सिर ले लूं। मैं पहले सामाजिक शासन-की रत्तीभर परवाह न करता। पर अब पग पगपर उसके भयसे मेरे प्राण कांपने लगते हैं। धिक्कार है मुझपर कि तुम्हारे ऊपर ऐसी ऐसी विपत्तियां पड़ी। लोकनिन्दा, रोग, शोक, निर्धनता, सभीका सामना करना पड़ा और मैं यों अलग अलग रहा मानो मुझसे कोई प्रयोजन नहीं है। पर मेरा हृदय ही जानता है कि उसको कितनी पीड़ा होती थी। कितनीही बार इधर आनेका निश्चय किया और फिर हिम्मत हार गया। अब मुझे विदित हो गया कि मेरी सारी दार्शनिकता केवल हाथीका दांत थी मुझमें क्रियाशक्ति नहीं है। लेकिन इसके साथही तुमसे अलग रहना मेरे लिये असह्य है। तुमसे दूर रह

कर मैं ज़िन्दा नहीं रह सकता। प्यारे बच्चेको देखनेके लिये मैं कितनी ही बार लालायित हो गया हूं। पर यह आशा कैसे करूं कि मेरी चरित्रहीनताका ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण पानेके बाद तुम्हें मुझसे घृणा न हो गयी होगी।

आनन्दी--स्वामी, आपके मनमें ऐसी बातोंका आना मुझपर घोर अन्याय है। मैं ऐसी बुद्धिहीन नहीं हूं कि केवल अपने स्वार्थके लिये आपको कलंकित करूं। मैं आपको अपना इष्टदेव समझती हूं और सदैव समझूंगी। मैं भी अब आपके वियोग-दुःखको नहीं सह सकती। कभी कभी आपके दर्शन पाती रहूं यही जीवनकी सबसे बड़ी अभिलाषा है।

इस घटनाको पंद्रह वर्ष बीत गये हैं। लाला गोपीनाथ नित्य बारह बजे रात को आनन्दीके साथ बैठे हुये नज़र आते हैं। वह नामपर मरते हैं, आनन्दी प्रेमपर। बदनाम दोनों हैं, लेकिन आनन्दीके साथ लोगोंकी सहानुभूति है, गोपीनाथ सबकी निगाहसे गिर गये हैं। हां उनके कुछ आत्मीयगण इस घटनाको केवल मानुषीय समझकर अब भी उनका सम्मान करते हैं, किन्तु जनता इतनी सहिष्णु नहीं है।



मृत्युके पीछे ।

(१)

बाबू ईश्वरचन्द्रको समाचारपत्रोंमें लेख लिखनेकी चाट उन्हीं दिनों पड़ी जब वे विद्याभ्यास कर रहे थे। नित्य नये विषयोंकी चिन्तामें लीन रहते। पत्रोंमें अपना नाम देखकर उन्हें उससे कहीं ज्यादा खुशी होती थी जितनी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होने या कक्षामें उच्च-स्थान प्राप्त करनेसे हो सकती थी। वह अपने कालेजके "गरम-दल" के नेता थे। समाचारपत्रोंमें परीक्षा-पत्रोंकी जटिलता या अध्यापकोंके अनुचित व्यवहारकी शिकायतका भार उन्हींके सिर था। इससे उन्हें कालिजमें प्रतिनिधित्वका काम मिल गया। प्रतिरोधके प्रत्येक अवसर पर उन्हींके नाम नेतृत्वकी गोटी पड़ जाती थी। उन्हें विश्वास हो गया था कि मैं इस परिमित क्षेत्रसे निकलकर संसारके विस्तृत-क्षेत्रमें अधिक सफल हो सकता हूं। सार्व-जनिक जीवनको यह अपना भाग्य समझ बैठे थे। कुछ ऐसा संयोग हुआ कि अभी एम० ए० के परीक्षार्थियोंमें उनका नाम निकलने भी न पाया था कि 'गौरव' के सम्पादक महोदयने वाणप्रस्थ लेनेकी ठानी और पत्रिकाका भार ईश्वरचन्द्रदत्तके

सिरपर रखनेका निश्चय किया। बाबूजीको यह समाचार मिला तो उछल पड़े। धन्य भाग कि मैं इस सम्मानपदके योग्य समझा गया! इसमें सन्देह नहीं कि वह इस दायित्व के गुरुत्वसे भली भांति परिचित थे, लेकिन कीर्तिलाभके प्रेमने उन्हें बाधक परिस्थितियोंका सामना करनेपर उद्यत कर दिया। वह इस व्यवसायमें स्वातंत्र्य, आत्मगौरव, अनुशीलन और दायित्वकी मात्राको बढ़ाना चाहते थे। भारतीय पत्रोंको पश्चिमके आदर्शपर चलानेके इच्छुक थे। इन इरादोंके पूरा करनेका सुअवसर हाथ आया। वे प्रेमोल्लाससे उत्तेजित होकर नदीमें कूद पड़े।

(२)

ईश्वरचन्द्रकी पत्नी एक ऊंचे और धनाढ्य कुलकी लड़की थी और वह ऐसे कुलोंकी मर्यादप्रियता तथा मिथ्या-गौरव प्रेमसे सम्पन्न थी। यह समाचार पाकर डरी कि पति महाशय कहीं इस झंझटमें फंसकर कानूनसे मुंह न मोड़ लें। लेकिन जब बाबू साहेबने आश्वासन दिया कि यह कार्य उनके कानूनके अभ्यासमें बाधक न होगा तो कुछ न बोली।

लेकिन ईश्वरचन्द्रको बहुत जल्द मालूम हो गया कि पत्र-सम्पादन एक बहुत ही ईर्षायुक्त कार्य है, जो चित्तकी समग्र वृत्तियोंका अपहरण कर लेता है। उन्होंने इसे मनोरंजनका एक साधन और ख्यातिलाभका एक यन्त्र समझा था। उसके द्वारा जातिकी कुछ सेवा करना चाहते थे। उससे

द्रव्योपार्जनका विचारतक न किया था। लेकिन नौकामें बैठ कर उन्हें अनुभव हुआ कि यात्रा उतनी सुखद नहीं है जितनी समझी थी। लेखोंके संशोधन, परिवर्जन और परिवर्तन, लेखकगणसे-पत्र व्यवहार, और चित्ताकर्षक विषयोंकी खोज, और सहयोगियोंसे आगे बढ़ जानेकी चिन्तामें उन्हें कानूनके अध्ययन करनेका अवकाश ही न मिलता था। सुबहको किताबें खोलकर बैठते कि १०० पृष्ठ समाप्त किये बिना कदापि न उठूंगा, किन्तु ज्योंही डाकका पुलिन्दा आ जाता, वे अधीर होकर उसपर टूट पड़ते, किताब खुलीकी खुली रह जाती थी। बारम्बार संकल्प करते कि अब नियमितरूपसे पुस्तकावलोकन करूंगा और एक निर्दिष्ट समयसे अधिक सम्पादन कार्यमें न लगाऊंगा। लेकिन पत्रिकाओंका बंडल सामने आते ही दिल काबूके बाहर हो जाता। पत्रोंकी नोकझोंक, पत्रिकाओंके तर्क वितर्क, आलोचना प्रत्यालोचना, कवियोंके काव्य-चमत्कार, लेखकोंका रचनाकौशल इत्यादि सभी बातें उनपर जादूका काम करती। इसपर छपाईकी कठिनाइयां, ग्राहक-संख्या बढ़ानेकी चिन्ता और पत्रिकाको सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेकी आकांक्षा और भी प्राणोंको संकटमें डाले रहती थी। कभी कभी उन्हें खेद होता कि व्यर्थ ही इस झमेले में पड़ा। यहां तक की परीक्षाके दिन सिरपर आ गये और वे इसके लिये बिलकुल तैयार न थे। वे उसमें सम्मिलित न हुए। मनको समझाया कि अभी इस काम का श्रीगणेश है, इसी कारण

यह सब बाधायें उपस्थित होती हैं। अगले वर्ष यह काम एक सुव्यवस्थित रूपमें आ जायगा और तब मैं निश्चिन्त होकर परीक्षामें बैठूंगा। पास कर लेना क्या कठिन है। ऐसे बुद्धू पास हो जाते हैं जो एक सीधा सा लेख भी नहीं लिख सकते तो क्या मैं ही रह जाऊंगा। मानकीने उनकी यह बातें सुनीं तो खूब दिलके फफोले फोड़े। 'मैं तो जानती थी कि यह धुन तुम्हें मटियामेट कर देगी। इसी लिये बार बार रोकती थी, लेकिन तुमने मेरी एक न सुनी। आप तो डूबे ही, मुझे भी ले डूबे।' उनके पूज्य पिता भी बिगड़े, हितैषियोंने भी समझाया 'अभी इस कामको कुछ दिनोंके लिये स्थगित कर दो, क़ानूनमें उत्तीर्ण होकर निर्द्वन्द्व देशोद्धारमें प्रवृत्त हो जाना।' लेकिन ईश्वरचन्द्र एक बार मैदान में आकर भागना निन्द्य समझते थे। हां, उन्होंने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि दूसरे साल परीक्षाके लिये तन मनसे तैयारी करूंगा।

अतएव नये वर्षके पदार्पण करते ही उन्होंने क़ानूनकी पुस्तकें संग्रह कीं, पाठ्यक्रम निश्चित किया, रोज़नामचा लिखने लगे और अपने चंचल और बहानेबाज़ चित्तको चारों ओर से जकड़ा, मगर चटपटे पदार्थोंका आस्वादन करनेके बाद सरल भोजन कब रुचिकर होता है। कानूनमें वे घातें कहां, वह उन्माद कहां, वे चोटें कहां, वह उत्तेजना कहां, वह हलचल कहां। बाबू साहब अब नित्य एक खोई हुई दशामें रहते। जब तक अपने इच्छानुकूल काम करते थे चौबीस घण्टों

में घन्टे दो घन्टे कानून भी देख लिया करते थे। उस नशेने मानसिक शक्तियोंको शिथिल कर दिया। स्नायु निर्जीव हो गये। उन्हें ज्ञात होने लगा कि अब मैं कानूनके लायक नहीं रहा और इस ज्ञानने क़ानूनके प्रति उदासीनताका रूप धारण किया। मनमें सन्तोषवृत्तिका प्रादुर्भाव हुआ। प्रारब्ध और पूर्वसंस्कारके सिद्धान्तोंकी शरण लेने लगे।

एक दिन मानकीने कहा–यह क्या बात है? क्या कानून से फिर जीका उचाट हुआ?

ईश्वरचन्द्रने दुस्साहसपूर्ण भावसे उत्तर दिया—हां, भई, मेरा जी उससे भागता है।

मानकीने व्यङ्गसे कहा—बहुत कठिन है?

ईश्वरचन्द्र—कठिन नहीं है और कठिन भी होता तो मैं उससे डरनेवाला न था, लेकिन मुझे वकालतका पेशा ही पतित प्रतीत होता है। ज्यों ज्यों वकीलोंकी आंतरिक दशाका ज्ञान होता है मुझे उस पेशेसे घृणा होती जाती है। इसी शहरमें सैकड़ों वकील और बैरिस्टर पड़े हुए हैं लेकिन एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं जिसके हृदयमें दया हो, जो स्वार्थपरताके हाथों बिक न गया हो। छल और धूर्तता इस पेशेका मूलतत्व है। इसके बिना किसी तरह निर्वाह नहीं। अगर कोई महाशय जातीय आन्दोलनमें शरीक भी होते हैं तो स्वार्थसिद्धि करनेके लिये। अपना ढोल पीटनेके लिये। हमलोगोंका समग्र जीवन वासना-भक्तिपर अर्पित हो जाता है। दुर्भाग्य

से हमारे देशका शिक्षित समुदाय इसी दर्गाहका मुजावर होता जाता है, और यही कारण है कि हमारी जातीय संख्याओंकी शीघ्र वृद्धि नहीं होती। जिस काममें हमारा दिल न हो, हम केवल ख्याति और स्वार्थलाभके लिए उसके कर्णधार हों, हम केवल ख्याति और स्वार्थके लिए उसके कर्णधार बने हुए हों यह कभी नहीं हो सकता। वर्त्तमान सामाजिक व्यवस्था का अन्याय है जिसने इस पेशेको इतना उच्च-स्थान प्रदान कर दिया है। यह विदेशी सभ्यताका निकृष्टतम स्वरूप है कि देशका बुद्धिबल स्वयं धनोपार्जन न करके दूसरोंकी पैदा की हुई दौलतपर चैन करना, शहदकी मक्खी न बनकर, चींटी बनना अपने जीवनका लक्ष्य समझता है।

मानकी चिढ़कर बोली—पहले तो तुम वकीलोंकी इतनी निन्दा न करते थे।

ईश्वरचन्द्रने उत्तर दिया—तब अनुभव न था। बाहरी टीमटामने वशीकरण कर दिया था।

मानकी—क्या जाने तुम्हें पत्रोंसे क्यों इतना प्रेम है, मैं तो देखती हूं, अपनी कठिनाइयोंका रोना रोते हुए पानी हूं। कोई अपने ग्राहकोंसे नये ग्राहक बनानेका अनुरोध करता है, कोई कोई चन्दा न वसूल होनेकी शिकायत करता है। बता दो कि कोई उच्च शिक्षाप्राप्त मनुष्य कभी इस पेशेमें आया है। जिसे कुछ नहीं सूझती, जिसके पास न कोई सनद है न कोई डिग्री वही पत्र निकाल बैठता है और भूखों मरने की अपेक्षा रूखी

खाटियोंपर ही संतोष करता है। लोग विलायत जाते हैं, कोई पढ़ता है डाक्टरी, कोई इञ्जिनियरी, कोई सिविल सर्विस। लेकिन आजतक न सुना कि कोई एडीटरीका काम सीखने गया। क्यों सीखे ? किसीको क्या पड़ी है कि जीवनकी महत्वाकांक्षाओंको खाकमें मिलाकर त्याग और विरागमें उम्र काटे। हां, जिनको सनक सवार हो गई हो उनकी बात निराली है।

ईश्वरचन्द्र—जीवनका उद्देश्य केवल धन-संचय करना ही नहीं है।

मानकी—अभी तुमने वकीलोंकी निन्दा करते हुए कहा यह लोग दूसरोंकी कमाई खाकर मोटे होते हैं। पत्र चलानेवाले भी तो दूसरोंकी ही कमाई खाते हैं।

ईश्वरचन्द्रने बगलें झांकते हुए कहा—हमलोग दूसरोंकी कमाई खाते हैं तो दूसरोंपर जान भी देते हैं। वकीलोंकी भांति किसीको लूटते नहीं।

मानकी—यह तुम्हारी हठधर्मी है। वकील भी तो अपने मुवक्किलोंके लिये जान लड़ा देते हैं। उनकी कमाई भी उतनी ही हलाल है जितनी पत्रवालोंकी। अन्तर केवल इतना है कि एककी कमाई पहाड़ी सोता है,दूसरेकी बरसाती नाला। एकमें नित्य जलप्रवाह होता है, दूसरेमें नित्य धूल उड़ा करती है। बहुत हुआ तो बरसातमें घड़ी दो घड़ीके लिये पानी आ गया।

ईश्वर—पहले तो मैं यही नहीं मानता कि वकीलोंकी कमाई हलाल है, और यह मान भी लूं तो किसी तरह नहीं मान

सकता कि सभी वकील फूलोंकी सेजपर सोते हैं। अपना अपना भाग्य सभी जगह है। कितने ही वकील हैं जो झूठी गवाहियां देकर पेट पालते हैं। इस देशमें समाचारपत्रोंका प्रचार अभी बहुत कम है, इसी कारण पत्रसंचालकोंकी आर्थिक दशा अच्छी नहीं है। यूरोप और अमरीकामें पत्र चलाकर लोग करोड़पति हो गये हैं। इस समय संसारके सभी समुन्नत देशोंके सूत्रधार या तो समाचारपत्रोंके सम्पादक और लेखक हैं, या पत्रोंके स्वामी। ऐसे कितने ही अरबपति हैं जिन्होंने अपनी सम्पत्तिकी नींव पत्रोंपर ही खड़ी की थी......... ।

ईश्वरचन्द्र सिद्ध करना चाहते थे कि धन, ख्याति और सम्मान प्राप्त करनेका पत्रसंचालनसे उत्तम और कोई साधन नहीं है, और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस जीवनमें सत्य और न्यायकी रक्षा करनेके सच्चे अवसर मिलते हैं। परन्तु मानकीपर इस वक्तृताका ज़रा भी असर न हुआ। स्थूल-दृष्टिको दूरकी चीजें साफ़ नहीं दीखतीं। मानकीके सामने सफल सम्पादकका कोई उदाहरण न था।

(३)

१६ वर्ष गुज़र गये। ईश्वरचन्द्रने सम्पादकीय जगतमें खूब नाम पैदा किया, जातीय आन्दोलनोंमें अग्रसर हुए, पुस्तकें लिखीं, एक दैनिक पत्र निकाला, अधिकारियोंके भी सम्मानपात्र हुए। बड़ा लड़का बी० ए० में जा पहुँचा, छोटे लड़के नीचेके दरजोंमें थे। एक लड़कीका विवाह भी एक धन—

सम्पन्न कुलमें किया। विदित यही होता था कि उनका जीवन बड़ा ही सुखमय है। मगर उनकी आर्थिक दशा अब भी संतोषजनक न थी। ख़र्च आमदनीसे बढ़ा हुआ था। घरकी कई हज़ारकी जायदाद हाथसे निकल गई, इसपर भी बंकका कुछ न कुछ देना सिरपर सवार रहता था। बाज़ारमें भी उनकी साख न थी। कभी कभी तो यहां तक नौबत आ जाती कि उन्हें बाजारका रास्ता छोड़ना पड़ता। अब वह अक्सर अपनी युवावस्थाकी अदूरदर्शितापर अफसोस करते थे। जातीय सेवाका भाव अब भी उनके हृदयमें तरंगें मारता था, लेकिन जब वह देखते थे कि काम तो मैं ही करता हूं और यश वकीलों और सेठोंके हिस्सोंमें आ जाता था। उनकी गिनती अभीतक छुटभैयोंमें थी। यद्यपि सारा नगर जानता था कि यहांके सार्वजनिक जीवनके प्राण वही हैं, पर यह भाव कभी व्यक्त न होता था। इन्हीं कारणोंसे ईश्वरचन्द्रको अब सम्पादन कार्यसे अरुचि होती थी। दिनोंदिन उत्साह क्षीण होता जाता था लेकिन इस जालसे निकलनेका कोई उपाय न सूझता था। उनकी रचनामें अब सजीविता न थी, न लेखनी में शक्ति। उनके पत्र और पत्रिका दोनों हीसे उदासीनताका भाव झलकता था। उन्होंने सारा भार सहायकोंपर छोड़ दिया था, खुद बहुत कम काम करते थे। हां, दोनों पत्रोंकी जड़ जम चुकी थी इसलिये ग्राहकसंख्या कम न होने पाती थी। वे अपने नामपर चलते थे।

लेकिन इस संघर्ष और संग्रामके कालमें उदासीनताका निर्वाह कहां। "गौरव" के प्रतियोगी खड़े कर दिये जिनके नवीन उत्साहने "गौरव" से बाजी मार ली। उसका बाज़ार ठंढा होने लगा। नये प्रतियोगियोंका जनताने बड़े हर्षसे स्वागत किया। उनकी उन्नति होने लगी। यद्यपि उनके सिद्धान्त भी वही, लेखक भी वही, विषय भी वही, लेकिन आगन्तुकोंने उन्हीं पुरानी बातोंमें नई जान डाल दी। उनका उत्साह देख ईश्वरचन्द्रको भी जोश आया कि एक बार फिर अपनी रुकी हुई गाड़ीमें जोर लगायें, लेकिन न अपनेमें सामर्थ्य थी, न कोई हाथ बटानेवाला नज़र आता था। इधर उधर निराश-नेत्रोंसे देखकर हतोत्साह हो जाते थे। हा! मैंने अपना सारा जीवन सार्वजनिक कार्यों में व्यतीत किया, खेत को बोया, सींचा, दिनको दिन और रातको रात न समझा, धूपमें जला, पानीमें भींगा, और इतने परिश्रमके बाद जब फ़सल काटनेके दिन आये तो मुझमें हँसिया पकड़नेका भी बूता नहीं। दूसरे लोग जिनका उस समय कहीं पता न था अनाज काट काट कर खलिहान भरे लेते हैं और मैं खड़ा मुंह ताकता हूं। उन्हें पूरा विश्वास था कि अगर कोई उत्साहशील युवक मेरा शरीक हो जाता तो "गौरव" अब भी अपने प्रतिद्वन्द्वियोंको परास्त कर सकता। सभ्य-समाजमें उनकी धाक जमी हुई थी, परिस्थिति उनके अनुकूल थी। ज़रूरत केवल ताजे खूनकी थी। उन्हें अपने बड़े लड़केसे ज्यादा उपयुक्त इस

कामके लिए और कोई न दीखता था। उसकी रुचि भी इस कामकी ओर थी, पर मानकीके भयसे वह इस विचारको ज़बान पर न ला सके थे। इसी चिन्ता में दो साल गुजर गये और यहांतक नौबत पहुंची कि या तो "गौरव" का टाट उलट दिया जाय, ईश्वरचन्द्रने इसके पुनरुद्धारके लिए अंतिम उद्योग करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। इसके सिवा और कोई उपाय न था। यह पत्रिका उनके जीवनका सर्वस्व थी। उनके जीवन और मृत्युका सम्बन्ध था। उसको बन्द करने की वह कल्पना भी न कर सकते थे। यद्यपि उनका स्वास्थ्य अच्छा न था, पर प्राणरक्षाकी स्वाभाविक इच्छाने उन्हें अपना सब कुछ अपनी पत्रिकापर न्योछावार करनेको उद्यत कर दिया। फिर दिनके दिन लिखने पढ़नेमें रत रहने लगे। एक क्षणके लिये भी सिर न उठाते। "गौरव" के लेखोंमें फिर सजीविताका उद्भव हुआ, विद्वभव हुआ, विद्वज्जनोंमें फिर उसकी चर्चा होने लगी, सहयोगियोंने फिर उसके लेखोंको उद्धृत करना शुरू किया, पत्रिकाओंमें फिर उसकी प्रशंसासूचक आलोचनायें निकलने लगीं। पुराने उस्तादकी ललकार फिर अखाड़ेमें गूंजने लगी।

लेकिन पत्रिकाके पुनःसंस्कारके साथ उनका शरीर और भी जर्जर होने लगा। हृद्रोगके लक्षण दिखाई देने लगे। रक्तकी न्यूनतासे मुख पर पीलापन छा गया। ऐसी दशामें वह सुबहसे शाम तक अपने काममें तल्लीन रहते। देशमें

धन और श्रमका संग्राम छिड़ा हुआ था। ईश्वरचन्द्रकी सदय प्रकृतिने उन्हें श्रमका सपक्षी बना दिया था। धन-वादियोंका खंडन और प्रतिवाद करते हुए उनके खूनमें, गरमी आ जाती थी, शब्दोंसे चिनगारियां निकलने लगती थीं, यद्यपि यह चिनगारियां केन्द्रस्थ गरमीको छिन्न किये देती थीं।

एक दिन रातके दस बज गये थे। सरदी खूब पड़ रही थी। मानकी दबे पैर उनके कमरेमें आई। दीपककी ज्योतिमें उनके मुखका पीलापन और भी स्पष्ट हो गया था। वह हाथमें क़लम लिये किसी विचारमें मग्न थे। मानकीके आनेकी उन्हें ज़रा भी आहट न मिली। मानकी एक क्षण तक उन्हें वेदनायुक्त नेत्रोंसे ताकती रही। तब बोली-'अब तो यह पोथा बन्द करो। आधी रात होनेको आई। खाना पानी हुआ जाता है।'

ईश्वरचन्द्रने चोंककर सिर उठाया और बोले-"क्यों क्या आधी रात हो गई? नहीं, अभी मुश्किलसे दस बजे होंगे। मुझे अभी ज़रा भी भूख नहीं है।"

मानकी—कुछ थोड़ा सा खालेना।

ईश्वर–एक ग्रास भी नही। मुझे इसी समय अपना लेख समाप्त करना है।

मानकी—मैं देखती हूं तुम्हारी दशा दिन दिन बिगड़ती जाती है, दवा क्यों नहीं करते? जान खपाकर थोड़े ही काम किया जाता है।

ईश्वर—अपनी जानको देखूं या इस घोर संग्रामको देखूं जिसने समस्त देशमें हलचल मचा रखा है। हज़ारों लाखों जानोंकी हिमायतमें एक जान न भी रहे तो क्या चिन्ता ?

मानकी—कोई सुयोग्य सहायक क्यों नहीं रख लेते ?

ईश्वरचन्द्रने ठंढी सांस लेकर कहा—बहुत खोजता हूं पर कोई नहीं मिलता। एक विचार कई दिनोंसे मेरे मनमें उठ रहा है, अगर तुम धैर्य्यसे सुनना चाहो तो कहूं।

मानकी—कहो सुनूंगी। मानने लायक होगी तो मानूंगी क्यों नहीं ?

ईश्वरचन्द्र—मै चाहता हूं कि कृष्णचन्द्रको अपने काममें शरीक कर लूं। अब तो वह एम० ए० भी हो गया। इस पेशेसे उसे रुचि भी है, मालूम होता है कि ईश्वरने उसे इसी कामके लिये बनाया है।

मानकीने अवहेलना भावसे कहा-क्या अपने साथ उसे भी ले डूबनेका इरादा है ? कोई घरकी सेवा करनेवाला भी चाहिए कि सब देशकी ही सेवा करेंगे।

ईश्वर—कृष्णचन्द्र यहां किसीसे बुरा न रहेगा।

मानकी—क्षमा कीजिये। बाज़ आई। वह कोई दूसरा काम करेगा जहां चार पैसा मिले। यह घरफूंक काम आप हीको मुबारक रहे।

ईश्वर-वकालतमें भेजोगी पर देख लेना पछताना पड़ेगा। कृष्णचन्द्र उस पेशेके लिये सर्वथा अयोग्य है।

मानकी—वह चाहे मजूरी करे पर इस काममें न डालूंगी।

ईश्वर—तुमने मुझे देखकर समझ लिया कि इस काममें घाटा ही घाटा है। पर इसी देशमें ऐसे भाग्यवान लोग मौजूद हैं जो पत्रोंकी बदौलत धन और कीर्तिसे मालामाल हो रहे हैं।

मानकी—इस काममें तो अगर कंचन भी बरसे तो मैं उसे न आने दूं। सारा जीवन वैराग्यमें कट गया। अब कुछ दिन भोग भी करना चाहती हूं।

यह जातिका सच्चा सेवक अन्तको जातीय कष्टोंके साथ रोगके कष्टोंको न सह सका। इस वार्त्तालापके बाद मुश्किलसे ६ महीने गुज़रे थे कि ईश्वरचन्द्रने संसारसे प्रस्थान किया। उनका सारा जीवन सत्यके पोषण, न्यायकी रक्षा और प्रजा-कष्टोंके विरोधमें कटा था। अपने सिद्धान्तोंके पालनमें उन्हें कितनी ही बार अधिकारियोंकी तीव्रदृष्टिका भाजन बनना पड़ा था, कितनी ही बार जनताका अविश्वास, यहांतक कि मित्रोंकी अवहेलना भी सहनी पड़ी थी, पर उन्होंने अपनी आत्माका कभी हनन नहीं किया। आत्माके गौरवके सामने धनको कुछ न समझा।

इस शोकसमाचारके फैलते ही सारे शहरमें कुहराम मच गया। बाज़ारें बन्द हो गईं, शोकके जल्से होने लगे, सहयोगी पत्रोंने प्रतिद्वन्दिताके भावको त्याग दिया, चारों ओरसे एक

ध्वनि आती थी कि देशसे एक स्वतन्त्र, सत्यवादी और विचारशील सम्पादक, तथा एक निर्भीक, त्यागी देशभक्त उठ गया और उसका स्थान चिरकाल तक ख़ाली रहेगा। ईश्वरचन्द्र इतने बहुजनप्रिय हैं, इसका उनके घरवालोंको ध्यान भी न था। उनका शव निकला तो सारा शहर, गण्य अगण्य, अर्थीके साथ था। उनके स्मारक बनने लगे। कहीं छात्रवृत्तियां दी गईं, कहीं उनके चित्र बनवाये गये, पर सबसे अधिक महत्वशाली वह मूर्त्ति थी जो श्रमजीवियोंकी ओरसे प्रतिष्ठित हुई थी।

मानकीको अपने पतिदेवका लोकसम्मान देखकर सुखमय कुतूहल होता था। उसे अब खेद होता था कि मैंने उनके दिव्य गुणोंको न पहचाना, उनके पवित्र भावों और उच्च-विचारोंकी क़द्र न की। सारा नगर उनके लिये शोक मना रहा है। उनकी लेखनीने अवश्य इनके ऐसे उपकार किये हैं जिन्हें यह भूल नहीं सकते; और मैं अन्ततक उनके मार्गका कंटक बनी रही, सदैव तृष्णाके वश उनका दिल दुखाती रही। उन्होंने मुझे सोनेमें मढ़ दिया होता, एक भव्य भवन बनवाया होता, या कोई जायदाद पैदा कर ली होती तो मैं ख़ुश होती, अपना धन्य भाग समझती। लेकिन तब देशमें कौन उनके लिये आंसू बहाता, कौन उनका यश गाता। यहीं एकसे एक धनिक पुरुष पड़े हुए हैं। वे दुनिया से चले जाते हैं और किसीको ख़बर भी नहीं होती। सुनती हूं पतिदेवके नामसे छात्रोंको वृत्ति दी

जायगी। जो लड़के वृत्ति पाकर विद्यालाभ करेंगे वे मरने दम तक उनकी आत्माको आशीर्वाद देंगे। शोक ? मैंने उनके आत्मत्यागका मर्म न जाना। स्वार्थने मेरी आंखोंपर पर्दा डाल दिया था।

मानकीके हृदयमें ज्यों ज्यों ये भावनायें जाग्रत होती जाती थीं उसे पतिमें श्रद्धा बढ़ती जाती थी। वह गौरवशीला स्त्री थी। इस कीर्तिगान और जनसम्मानसे उसका मस्तक ऊंचा हो जाता था। इसके उपरान्त अब उसकी आर्थिक दशा पहलेकी सी चिन्ताजनक न थी। कृष्णचन्द्रके असाधारण अध्यवसाय और बुद्धिबलने उनकी वकालतको चमका दिया था। वह जातीय कामोंमें अवश्य भाग लेते थे, पत्रोंमें यथाशक्ति लेख भी लिखते थे, इस कामसे उन्हें विशेष प्रेम था। लेकिन मानकी उन्हें हमेशा इन कामोंसे दूर रखनेकी चेष्टा करती रहती थी। कृष्णचन्द्र अपने ऊपर जब्र करते थे। मांका दिल दुखाना उन्हें मंजूर न था।

ईश्वरचन्द्रकी पहली बरसी थी। शामको ब्रह्मभोज हुआ। आधी रात तक ग़रीबोंको खाना दिया गया। प्रातःकाल मानकी अपनी सेजगाड़ीपर बैठकर गंगा नहाने गई। यह उसकी चिरसंचित अभिलाषा थी जो अब पुत्रकी मातृभक्तिने पूरी कर दी थी। वह उधरसे लौट रही थी कि उसके कानोंमें बैंडकी आवाज़ आई और एक क्षणके बाद एक जलूस सामने आता हुआ दिखाई दिया।

पहले कोतल घोड़ोंकी माला थी, उसके बाद अश्वारोही स्वयं-सेवकोंकी सेना। उसके पीछे सैकड़ों सवारीगाड़ियां थीं। सबके पीछे एक सजे हुए रथपर किसी देवताकी मूर्त्ति थी। कितने ही आदमी इस विमानको खींच रहे थे। मानकी सोचने लगी-"यह किस देवताका विमान है ? न तो रामलीलाके ही दिन हैं न रथयात्राके।" सहसा उसका दिल जोरसे उछल पड़ा। यह ईश्वरचन्द्रकी मूर्त्ति थी जो श्रमजीवियोंकी ओरसे बनवाई गई थी और लोग उसे बड़े मैदानमें स्थापित करनेके लिये जाते थे। वही स्वरूप था, वही वस्त्र, वही मुखाकृति, मूर्त्तिकारने विलक्षणकौशल दिखाया था। मानकीका हृदय बांसों उछलने लगा। उत्कण्ठा हुई कि परदेसे निकलकर इस जलूसके सम्मुख पतिके चरणोंपर गिर पड़ूं। पत्थरकी मूर्त्ति मानवशरीरसे अधिक श्रद्धास्पद होती है। किन्तु कौन मुंह लेकर मूर्त्तिके सामने जाऊं? उसकी आत्माने कभी उसका इतना तिरस्कार न किया था। मेरी धनलिप्सा उनके पैरोंकी बेड़ी न बनती तो वह न जाने किस सम्मानपदपर पहुंचते। मेरे कारण उन्हें कितना क्षोभ हुआ! घरवालोंकी सहानुभूति बाहरवालोंके सम्मानसे कहीं उत्साहजनक होती है। मैं इन्हें क्या कुछ न बना सकती थी, पर कभी उभरने न दिया। स्वामीजी, मुझे क्षमा करो, मैं तुम्हारी अपराधिनी हूं, मैंने तुम्हारे पवित्र-भावोंकी हत्या की है, मैंने तुम्हारी आत्माको दुःखी किया है। मैंने बाजको पिंजड़े में बन्द करके रखा था। शोक!

सारे दिन मानकीको यही पश्चात्ताप होता रहा। शामको उससे न रहा गया। वह अपनी कहारिनको लेकर पैदल उस देवताके दर्शनको चली जिसकी आत्माको उसने दुःख पहुँचाया था।

सन्ध्याका समय था। आकाशपर लालिमा छाई थी। अस्ताचलकी ओर कुछ बादल भी हो आये थे। सूर्यदेव कभी मेघपटमें छिप जाते थे, कभी बाहर निकल आते थे। इस धूपछांहमें ईश्वरचन्द्रकी मूर्त्ति दूरसे कभी प्रभातकी भांति प्रसन्नमुख और कभी सन्ध्याकी भांति मलिन देख पड़ती थी। मानकी उसके निकट गई पर उसके मुखकी ओर न देख सकी। उन आंखोंमें करुण-वेदना थी। मानकीको ऐसा मालूम हुआ मानों वह मेरी ओर तिरस्कारपूर्ण भावसे देख रही है। उसकी आंखोंसे ग्लानि और लज्जाके आंसू बहने लगे। वह मूर्त्तिके चरणोंपर गिर पड़ी और मुँह ढांपकर रोने लगी। मनके भाव द्रवित हो गये।

वह घर आई तो नौ बज गये थे। कृष्ण उसे देखकर बोले—'अम्मा, आज आप इस वक्त कहां गई थीं?'

मानकीने हर्षसे कहा—गई थी तुम्हारे बाबूजीकी प्रतिमाके दर्शन करने। ऐसा मालूम होता है वह साक्षात् खड़े हैं।

कृष्ण—जयपुरसे बनकर आई है।

मानकी—पहले तो लोग उनका इतना आदर न करते थे।

कृष्ण—उनका सारा जीवन सत्य और न्यायकी वकाल-

तमें गुज़रा है। ऐसे ही महात्माओंकी पूजा होती है।

मानकी—लेकिन उन्होंने वकालत कब की ?

कृष्ण—हाँ यह वकालत नहीं की जो मैं और मेरे हज़ारों भाई कर रहे हैं, जिससे न्याय और धर्मका खून हो रहा है। उनकी वकालत उच्चकोटि की थी।

मानकी—अगर ऐसा है तो तुम भी वही वकालत क्यों नहीं करते ?

कृष्ण—बहुत कठिन है। दुनियाका जंजाल अपने सिर लीजिये, दूसरोंके लिये रोइये, दीनोंकी रक्षाके लिये लट्ठ लिये फिरिये, अधिकारियोंके मुँह आइये, उनका क्रोध और कोप सहिये, और इस कष्ट और अपमान और यंत्रणाका पुरस्कार क्या है ? अपने जीवनाभिलाषाओंकी हत्या।

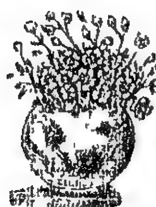
मानकी—लेकिन यश तो होता है

कृष्ण—हाँ यश होता है। लोग आशीर्वाद देते हैं।

मानकी—जब इतना यश मिलता है तो तुम भी वही काम करो। हमलोग उस पवित्र आत्माकी और कुछ सेवा नहीं कर सकते तो उसी वाटिकाको चलाते जांय जो उन्होंने अपने जीवनमें इतने उत्सर्ग और भक्तिसे लगाई। इससे उनकी आत्माको शांति होगी।

कृष्णचन्द्रने माताको श्रद्धामय नेत्रोंसे देखकर कहा—करूँ तो, मगर संभव है तब यह टीम टाम न निभ सके। शायद फिर वही पहलेकी सी दशा हो जाय।

मानकी—कोई हरज नहीं। संसारमें यश तो होगा। आज तो अगर धनकी देवी भी मेरे सामने आये तो मैं आखें न नीची करूं।



यही मेरी मातृभूमि है ।



ज पूरे ६० वर्षके बाद मुझे मातृ-भूमि-प्यारी मातृभूमिके दर्शन प्राप्त हुए हैं। जिस समय मैं अपने प्यारे देशसे विदा हुआ था और भाग्य मुझे पश्चिमकी ओर ले चला था, उस समय मैं पूर्ण युवा था। मेरी नसोंमें नवीन रक्त सञ्चालित हो रहा था। हृदय उमंगों और बड़ी बड़ी आशाओं से भरा हुआ था। मुझे अपने प्यारे भारतवर्षसे किसी अत्याचारीके अत्याचार या न्यायके बलवान हाथोंने नहीं जुदा किया था। अत्याचारीके अत्याचार और कानूनकी कठोरताएं मुझसे जो चाहे सो करा सकती हैं, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि मुझसे नहीं छुड़ा सकतीं। वे मेरी उच्चअभिलाषाएं और बड़े बड़े ऊँचे विचार ही थे, जिन्होंने मुझे देश निकाला दिया था।

मैंने अमेरिका जाकर वहां खूब व्यापार किया और व्यापार से धन भी खूब पैदा किया तथा धनसे आनन्द भी खूब मनमाने लूटे। सौभाग्यसे पत्नी भी ऐसी मिली, जो सौंदर्यमें अपने सानीकी आपही थी। उसकी लावण्यता और सुन्दरता की ख्याति तमाम अमेरिकामें फैली थी। उसके हृदयमें ऐसे विचारकी गुंजायश भी न थी, जिसका सम्बन्ध मुझसे न हो

मैं उसपर तन-मन से आसक्त था और वह मेरी सर्वस्व थी। मेरे पांच पुत्र थे जो सुन्दर हृष्ट-पुष्ट और ईमानदार थे। उन्होंने व्यापारको और भी चमका दिया था। मेरे भोले भाले नन्हें नन्हें पौत्र गोदमें बैठे हुए थे, जब कि मैंने प्यारी मातृभूमि के अन्तिम दर्शन करनेको अपने पैर उठाये। मैंने अनन्त धन, प्रियतमा पत्नी, सपूत बेटे और प्यारे प्यारे जिगरके टुकड़े नन्हें नन्हें बच्चे आदि अमूल्य पदार्थ केवल इसीलिए परित्याग कर दिये कि मैं प्यारी भारत-जननीका अन्तिम दर्शन कर लूं। मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूं; १० वर्षके बाद पूरे सौ वर्ष का हो जाऊँगा। अब मेरे हृदयमें केवल एकही अभिलाषा बाक़ी है कि मैं अपनी मातृभूमि का रजकण बनूँ।

यह अभिलाषा कुछ आज ही मेरे मनमें उत्पन्न नहीं हुई, बल्कि उस समय भी थी जब मेरी प्यारी पत्नी अपनी मधुर बातों और कोमल कटाक्षोंसे मेरे हृदयको प्रफुल्लित किया करती थी। और जब कि मेरे युवा पुत्र प्रातःकाल आकर अपने वृद्ध पिता को सभक्ति प्रणाम करते, उस समय भी मेरे हृदयमें एक कांटा सा खटकता रहता था कि मैं अपनी मातृभूमिसे अलग हूं। यह देश मेरा देश नहीं है और मैं इस देश का नहीं हूं।

मेरे धन था, पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी; मगर न मालूम क्यों, मुझे रह रहकर मातृभूमि के टूटे-फूटे झोंपड़े, चार छः-बीघा मौरूसी ज़मीन और बालपनके लंगोटिया यारों

की याद अक्सर सता जाया करती। प्रायः अपार प्रसन्नता और आनन्दोत्सवोंके अवसरपर भी यह विचार हृदयमें चुटकी लिया करता था कि "यदि मैं अपने देश में होता.........!"

(२)

जिस समय मैं बम्बईमें जहाज़ से उतरा, मैंने पहिले काले काले कोट-पतलून पहिने टूटी-फूटी अंग्रेज़ी बोलते हुए मल्लाह देखे। फिर अंग्रेज़ी दूकानें, ट्राम और मोटरगाड़ियाँ दीख पड़ीं। इसके बाद रबर-टायरवाली गाड़ियोंकी और मुँह में चुरट दाबे हुए आदमियोंसे मुठभेड़ हुई। फिर रेलका विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन देखा। बाद मैं रेलमें सवार होकर हरी हरी पहाड़ियोंके मध्यमें स्थित अपने गाँवको चल दिया। उस समय मेरी आंखोंमें आंसू भर आये और मैं खूब रोया, क्योंकि यह मेरा देश न था। यह वह देश न था, जिसके दर्शनों की इच्छा सदा मेरे हृदयमें लहराया करती थी। यह तो कोई और देश था। यह अमेरिका या इंग्लैण्ड था, मगर प्यारा भारत नहीं था।

रेलगाड़ी जंगलों, पहाड़ों, नदियों और मैदानोंको पार करती हुई मेरे प्यारे गाँवके निकट पहुँची, जो किसी समय में फूल, पत्तों और फलोंकी बहुतायत तथा नदी-नालोंकी अधिकतासे स्वर्गकी होड़ कर रहा था। मैं जब गाड़ीसे उतरा, तो मेरा हृदय बाँसों उछल रहा था अब अपना प्यारा घर देखूँगा—अपने बालपनके प्यारे साथियोंसे मिलूँगा। मैं

इस समय बिल्कुल भूल गया था कि मैं ८७ वर्षका बूढ़ा हूं। ज्यों ज्यों मैं गाँवके निकट आता था, मेरे पग शीघ्र शीघ्र उठते थे और हृदयमें अकथनीय आनन्दका स्रोत उमड़ रहा था। प्रत्येक वस्तुपर आँखें फाड़ फाड़कर दृष्टि डालता। अहा ? यह वही नाला है, जिसमें हम रोज़ घोड़े नहलाते थे और स्वयम भी डुबकियाँ लगाते थे। किन्तु अब उसके दोनों ओर काँटेदार तार लगे हुए थे और सामने एक बँगला था, जिसमें दो अंग्रेज बन्दूकें लिये इधर-उधर ताक रहे थे। नालेमें नहानेकी सख्त मनाही थी।

गाँवमें गया, और निगाहें बालपनके साथियोंको खोजने लगीं; किन्तु शोक ! वे सबके सब मृत्युके ग्रास हो चुके थे। मेरा घर—मेरा टूटा-फूटा झोंपड़ा—जिसकी गोद में मैं बरसों खेला था, जहाँ बचपन और बेफ़िक्रीके आनन्द लूटे थे और जिनका चित्र अभी तक मेरी आँखोंमें फिर रहा था, वही मेरा प्यारा घर अब मिट्टीका ढेर हो गया था।

यह स्थान गैर-आबाद न था। सैकड़ों आदमी चलते-फिरते दृष्टि आते थे, जो अदालत-कचहरी और थाना-पुलिसकी बातें कर रहे थे। उनके मुखोंसे चिन्ता, निर्जीवता और उदासी प्रदर्शित होती थी और वे सब सांसारिक चिन्ताओं से व्यथित मालूम होते थे। मेरे साथियोंके समान हृष्टपुष्ट, बलवान लाल चेहरेवाले नवयुवक कहीं न देख पड़ते थे। उस अखाड़े के स्थान पर, जिसकी जड़ मेरे हाथोंने डाली थी, अब एक

टूटा-फूटा स्कूल था। उसमें दुर्बल तथा कान्तिहीन रोगियों की-सी सूरतवाले बालक फटे कपड़े पहिने बैठे ऊँघ रहे थे। उनको देखकर सहसा मेरे मुखसे निकल पड़ा कि "नहीं नहीं, यह मेरा प्यारा देश नहीं है। यह देश देखने मैं इतनी दूरसे नहीं आया हूं— यह मेरा प्यारा भारतवर्ष नहीं है।"

बरगदके पेड़की ओर मैं दौड़ा, जिसकी सुहावनी छायामें मैंने बचपनके आनन्द उड़ाये थे, जो हमारे छुटपनका क्रीड़ा-स्थल और युवावस्थाका सुखप्रद वासस्थान था। आह! इस प्यारे बरगदको देखतेही हृदयपर एक बड़ा आघात पहुँचा और दिलमें महान शोक उत्पन्न हुआ। उसे देखकर ऐसी ऐसी दुःखदायक तथा हृदयविदारक स्मृतियाँ ताजी हो गयीं कि घण्टों पृथ्वीपर बैठे बैठे मैं आंसू बहाता रहा। हा! यही बरगद है, जिसकी डालोंपर चढ़कर मैं फुनगियों तक पहुँचता था, जिसकी जटाएँ हमारी झूला थीं और जिसके फल हमें सारे संसारकी मिठाइयोंसे अधिक स्वादिष्ट मालूम होते थे। मेरे गलेमें बाँहे डालकर खेलनेवाले लँगोटिया यार, जो कभी रूठते थे, कभी मनाते थे, कहाँ गये? हाय, मैं अब बिना घरबारका मुसाफ़िर अब क्या अकेला ही हूं? क्या मेरा कोई भी साथी नहीं? इस बरगदके निकट अब थाना था और बरगदके नीचे कोई लाल साफ़ा बाँधे बैठा था। उसके आस-पास दस-बीस लाल पगड़ीवाले करबद्ध खड़े थे। वहाँ फटे-पुराने कपड़े पहिने दुर्भिक्षग्रस्त पुरुष, जिसपर

अभी चाबुकों की बौछार हुई थी, पड़ा सिसक रहा था। मुझे ध्यान आया कि यह मेरा प्यारा देश नहीं है, कोई और देश है। यह योरोप है, अमेरिका है, मगर मेरी प्यारी मातृभूमि नहीं है—कदापि नहीं है।

इधरसे निराश होकर मैं उस चौपालकी ओर चला, जहाँ शामके वक्त पिताजी गाँवके अन्य बुजुर्गोंके साथ हुक्का पीते और हँसी क़हक़हे उड़ाते थे। हम भी उस टाटके बिछौनेपर कलाबाज़ियाँ खाया करते थे। कभी कभी वहाँ पञ्चायत भी बैठती थी, जिसके सरपञ्च सदा पिताजी ही हुआ करते थे। इसी चौपालके पास एक गोशाला थी, जहाँ गाँव भरकी गायें रखी जाती थीं और बछड़ोंके साथ हम यहीं किलोलें किया करते थे। शोक! कि अब उस चौपालका पता तक न था वहाँ अब गाँवोंमें टीका लगाने की चौकी और डाकखाना था।

उस समय इसी चौपालसे लगा एक कोल्हवाड़ा था, जहाँ जाड़ेके दिनोंमें ईख पेरी जाती थी और गुड़की सुगन्धसे मस्तिष्क पूर्ण हो जाता था। हम और हमारे साथी वहां गंडेरियोंके लिये वहाँ बैठे रहते और गंड़ेरियाँ करनेवाले मज़दूरोंके हस्तलाघवको देखकर आश्चर्य किया करते थे। वहाँ हजारों बार मैंने कच्चा रस और पक्का दूध मिलाकर पिया था और हाँ आस-पासके घरोंकी स्त्रियाँ और बालक अपने अपने घड़े लेकर आते थे और उनमें रस भरकर ले

जाते थे। शोक है कि वे कोल्हू अब तक ज्योंके त्यों खड़े थे. किन्तु कोल्हवाड़ेकी जगहपर अब एक सन लपेटनेवाली मशीन लगी थी और उसके सामने एक तम्बोली और सिगरेटवालेकी दूकान थी। इन हृदयविदारक दृश्योंको देखकर मैंने दुःखित हृदयसे, एक आदमीसे, जो देखनेमें सभ्य मालूम होता था, पूछा—"महाशय, मैं एक परदेशी यात्री हूं। रातभर लेट रहनेकी मुझे आज्ञा दीजियेगा?" इस आदमीने मुझे शिरसे पैरतक गहरी दृष्टि से देखा और कहने लगा कि "आगे जाओ, यहाँ जगह नहीं है।" मैं आगे गया और वहाँ से भी यही उत्तर मिला कि "आगे जाओ"। पाँचवीं बार एक सज्जनसे स्थान मांगनेपर उन्होंने एक मुट्ठी चने मेरे हाथ पर रख दिये। चने मेरे हाथसे छूट पड़े और नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहने लगी। मुखसे सहसा निकल पड़ा कि "हाय यह मेरा देश नहीं है; यह कोई और देश है। यह हमारा अतिथि-सत्कारकारी प्यारा भारत नहीं है—कदापि नहीं है।"

मैंने एक सिगरेटकी डिबिया ख़रीदी और एक सुनसान जगहपर बैठकर सिगरेट पीते हुए पूर्व समयकी याद करने लगा कि अचानक मुझे धर्मशालाका स्मरण हो आया, जो मेरे विदेश जाते समय बन रही थी। मैं उस ओर लपका कि रात किसी प्रकार वहीं काट लूं, मगर शोक! शोक!! महान् शोक!!! ज्यों की त्यों खड़ी थी, किन्तु उसमें ग़रीब यात्रियोंके टिकनेके लिए स्थान न था। मदिरा, दुराचार और

चूहोंने उसमें अपना घर बना रखा था। यह दशा देखकर विवशतः मेरे हृदयमें एक सर्द आह निकल पड़ी और मैं ज़ोरसे चिल्ला उठा कि "नहीं, नहीं, नहीं, और हज़ार बार नहीं है—यह मेरा प्यारा भारत नहीं है। यह कोई और देश है। यह योरोप है,अमेरिका है मगर भारत कदापि नहीं है।

(४)

अँधेरी रात थी। गीदड़ और कुत्ते अपने अपने कर्कश स्वरमें उच्चारण कर रहे थे। मैं अपना दुःखित हृदय लेकर उसी नालेके किनारे जाकर बैठ गया और सोचने लगा—अब क्या करूँ? क्या फिर अपने पुत्रोंके पास लौट जाऊं और अपना यह शरीर अमेरिकाकी मिट्टीमें मिलाऊँ? अब तक मेरी मातृभूमि थी; मैं विदेशमें ज़रूर था, किन्तु मुझे अपने प्यारे देशकी याद बनी थी, पर अब मैं देशविहीन हूं। मेरा कोई देश नहीं है। इसी सोच-विचारमें मैं बहुत देर तक घुटनोंपर सिर रखे मौन रहा। रात्रि नेत्रोंमें ही व्यतीत की। घंटेवालेने तीन बजाये और किसीके गानेका शब्द कानोंमें आया। हृदय गद्गद् हो गया कि यह तो देश का ही राग है, यह तो मातृभूमिका ही स्वर है। मैं तुरन्त उठ खड़ा हुआ और क्या देखता हूं कि १५-२० वृद्धा स्त्रियाँ, सफ़ेद धोतियाँ पहिने, हाथोंमें लोटे लिये स्नान को जा रही हैं और गाती जाती हैं—

"हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो—"

मैं इस गीतको सुनकर तन्मय हो ही रहा था कि इतने में मुझे बहुत आदमियोंका बोलचाल सुन पड़ा। उनमें से कुछ लोग हाथों में पीतलके कमण्डलु लिये हुए शिव-शिव, हर-हर, गङ्गे-गङ्गे, नारायण-नारायण आदि शब्द बोलते हुए चले जाते थे। आनन्द-दायक और प्रभावोत्पादक रागसे मेरे हृदय पर जो प्रभाव हुआ, उसका वर्णन करना कठिन है।

मैंने अमेरिकाकी चञ्चलसे चञ्चल और प्रसन्नसे प्रसन्न चित्तवाली लावण्यवती स्त्रियोंका अलाप सुना था, सहस्रों बार उनकी जिह्वासे प्रेम और प्यारके शब्द सुने थे, जो हृदयाकर्षक वचनोंका आनन्द उठाया था, मैंने सुरीले पक्षियोंका चहचहाना भी सुना था, किन्तु जो आनन्द जो मज़ा और जो सुख मुझे इस रागमें आया वह मुझे जीवनमें कभी प्राप्त नहीं हुआ था। मैंने खुद गुनगुना कर गाया—

"हमारे प्रभु अवगुन चित न धरो-"

मेरे हृदयमें फिर उत्साह आया कि ये तो मेरे प्यारे देशकी ही बातें हैं। आनन्दातिरेकसे मेरा हृदय आनन्दमय हो गया। मैं भी इन आदमियोंके साथ हो लिया और ८ मील तक पहाड़ी मार्ग पार करके उसी नदीके किनारे पहुंचा, जिसका नाम पतितपावनी है, जिसकी लहरोंमें डुबकी लगाना और जिसकी गोदमें मरना प्रत्येक हिन्दू अपना परम सौभाग्य समझता है। पतितपावनी भागीरथी गङ्गा मेरे प्यारे गाँवसे छै-सात मीलपर बहती थी। किसी समय मैं घोड़े पर चढ़कर गङ्गामाताके दर्शनोंको

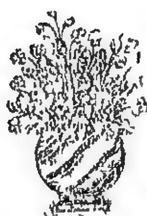
लालसा मेरे हृदयमें सदा रहती थी। यहाँ मैंने हज़ारों मनुष्योंको इस ठण्डे पानीमें डुबकी लगाते हुए देखा। कुछ लोग बालूपर बैठे गायत्रीमन्त्र जप रहे थे। कुछ लोग हवन करने में संलग्न थे। कुछ माथेपर तिलक लगा रहे थे और कुछ लोग सस्वर वेदमन्त्र पढ़ रहे थे। मेरा हृदय फिर उत्साहित हुआ और मैं ज़ोरसे कह उठा, "हाँ, हाँ, यही मेरा प्यारा देश है, यही मेरी पवित्र मातृभूमि है, यही मेरा सर्वश्रेष्ठ भारत है और इसीके दर्शनोंकी मेरी उत्कट इच्छा थी तथा इसीकी पवित्र धूलिके कण बननेकी मेरी प्रबल अभिलाषा है।"

(५)

मैं विशेष आनन्दमें मग्न था। मैंने अपना पुराना कोट और पतलून उतारकर फेंक दिया और गङ्गा माताकी गोदमें जा गिरा, जैसे कोई भोला-भाला बालक दिन भर निर्दय लोगों के साथ रहनेके बाद सन्ध्याको अपनी प्यारी माताकी गोद में दौड़कर चला आये और उसकी छातीसे चिपट जाय। हाँ, अब मैं अपने देश में हूँ। यह मेरी प्यारी मातृभूमि है। ये लोग मेरे भाई हैं और गङ्गा मेरी माता है।

मैंने ठीक गङ्गाके किनारे एक छोटी सी कुटी बनवा ली है। अब मुझे सिवा राम-नाम जपनेके और कोई काम नहीं है। मैं नित्य प्रातः-सायं गङ्गास्नान करता हूं और मेरी प्रबल इच्छा है कि इसी स्थानपर मेरे प्राण निकलें और मेरी अस्थियाँ गङ्गा माताकी लहरोंकी भेंट हों।

मेरी स्त्री और मेरे पुत्र बार बार बुलाते हैं, मगर अब मैं यह गङ्गा माताका तट और अपना प्यारा देश छोड़कर वहाँ नही जा सकता। मैं अपनी मिट्टी गङ्गाजीको ही सौंपूँगा। अब संसारकी कोई आकांक्षा मुझे इस स्थानसे नहीं हटा सकती, क्योंकि यह मेरा प्यारा देश और यही प्यारी मातृ-भूमि है। बस, मेरी उत्कट इच्छा यही है कि मै अपनी प्यारी मातृभूमिमें ही अपने प्राण विसर्जन करूँ।



लाग-डाट ।

जोखू भगत और बेचन चौधरीमें तीन पीढ़ियोंसे अदावत चली आती थी। कुछ डांड मेंडका झगड़ा था। उनके परदादोंमें कई बार खून-खच्चर हुआ। बापों के समयसे मुकदमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गये। लड़कोंके समयमें संग्रामकी भीषणता और भी बढ़ी यहां तक कि दोनों ही अशक्त हो गये। पहले दोनों इसी गांव में आधे आधेके हिस्सेदार थे। अब उनके पास उस झगड़े वाले खेतको छोड़कर एक अंगुल जमीन भी न थी। भूमि गई धन गया, मान मर्याद गया लेकिन वह विवाद ज्योंका त्यों बना रहा। हाईकोर्टके धुरन्धर नीतिज्ञ एक मामूली सा झगड़ा तय न कर सके।

इन दोनों सज्जनोंने गांवको दो विरोधी दलोंमें विभक्त कर दिया था। एक दलकी भङ्ग बूटी चौधरीके द्वारपर छनती तो दूसरे दलके चरस गांजेके दम भगतके द्वारपर लगते थे। स्त्रियों और बालकोंके भी दो दल हो गये थे। यहांतक कि दोनों सज्जनोंके सामाजिक और धार्मिक विचारोंमें भी विभाजक रेखा खिची हुई थी। चौधरी कपड़े पहने सत्तू खा लेते और भगतको ढोंगी कहते। भगत बिना कपड़े उतारे पानी भी न पीते और चौधरीको भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातन-

धर्मी बने तो चौधरीने आर्य समाजका आश्रय लिया। जिस बज़ाज, पन्सारी या कुंजड़ेसे चौधरी सौदे लेते उसकी ओर भगतजी ताकना भी पाप समझते थे और भगतजीके हलवाईकी मिठाइयां, उनके ग्वालेका दूध और तेलीका तेल चौधरीके लिये त्याज्य थे। यहां तक कि उनके आरोग्यताके सिद्धान्तोंमें भी भिन्नता थी। भगतजी वैद्यकके कायल थे, चौधरी युनानी प्रथाके माननेवाले। दोनों चाहे रोगसे मर जाने पर अपने सिद्धान्तोंको न तोड़ते।

(२)

जब देशमें राजनैतिक आन्दोलन शुरू हुआ तो उसकी झलक उस गांवमें आ पहुंची। चौधरीने आन्दोलनका पक्ष लिया भगत उसके विपक्षी हो गये। एक सज्जनने आकर गांवमें किसान सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढ़ी स्वराजकी चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गये भगतने राजभक्तिका पक्ष लिया। चौधरीका घर स्वराज्यवादियोंका अड्डा हो गया, भगतका घर राजभक्तोंका क्लब बन गया।

चौधरी जनतामें स्वराज्यवादका प्रचार करने लगे:—

"मित्रो, स्वराजका अर्थ है अपना राज। अपने देशमें अपना राज हो तो वह अच्छा है कि किसी दूसरेका राज हो वह ?"

जनताने कहा—अपना राज हो वह अच्छा है।

चौधरी-तो वह स्वराज कैसे मिलेगा ? आत्मबलसे, पुरुषार्थसे, मेलसे, एक दूसरेसे द्वेष करना छोड़ दो। अपने झगड़े आप मिलकर निपटा लो।

एक शङ्का—आपतो नित्य अदालतमें खड़े रहते हैं।

चौधरी-हां, पर आजसे अदालत जाऊं तो मुझे गऊ हत्याका पाप लगे। तुम्हें चाहिए कि तुम अपनी गाढ़ी कमाई अपने बाल बच्चोंको खिलाओ, और बचे तो परोपकारमें लगाओ, वकील मुखतारोंकी जेब क्यों भरते हो, थानेदारको घूस क्यों देते हो, अमलोंकी चिरौरी क्यों करते हो ? पहले, हमारे लड़के अपने धर्मकी शिक्षा पाते थे; वह सदाचारी, त्यागी, पुरुषार्थी बनते थे। अब वह विदेशी मदरसोंमें पढ़कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक़ करते हैं, अपने देवताओं और पित्रोंकी निन्दा करते हैं सिगरेट पीते हैं, बाल बनाते हैं और हाकिमोंकी गोड़धरिया करते हैं। क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकोंको धर्मानुसार शिक्षा दें ?

जनता-चन्दा करके पाठशाला खोलनी चाहिए।

चौधरी—हम पहले मदिराका छूना पाप समझते थे। अब गांव गांव और गली गलीमें मदिराकी दुकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी कमाईके करोड़ों रुपये गांजे शराबमें उड़ा देते हैं।

जनता-जो दारू भांग पिये उसे डांड़ लगना चाहिए।

चौधरी-हमारे दादा बाबा, छोटे बड़े सब गाढ़ा गज़ी पहनते थे। हमारी दादियां नानियाँ चरखा काता करती थीं।

सब धन देशमें रहता था, हमारे जुलाहे भाई चैनकी बंशी बजाते थे। अब हम विदेशके बने हुए महीन रंगीन कपड़ों पर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देशवाले हमारा धन ढो ले जाते हैं, बेचारे जुलाहे कंगाल हो गये। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयोंकी थाली छीनकर दूसरोंके सामने रख दें ?

जनता-गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।

चौधरी-अपने घरका बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतोंको त्यागो, नशेबाज़ी छोड़ो, अपने लड़कोंको धर्म कर्म सिखाओ, मेलसे रहो-बस यही स्वराज्य है। जो लोग कहते हैं कि स्वराजके लिए खूनकी नदी बहेगी वे पागल हैं-उनकी बातों पर ध्यान मत दो।

जनता-यह बातें बड़े चावसे सुनती थी, दिनों दिन श्रोताओंकी संख्या बढ़ती जाती थी चौधरी सबके श्रद्धाभाजन बन गये।

(३)

भगतजी भी राजभक्तिका उपदेश करने लगे:—

"भाइयो, राजाका काम राज करना और प्रजाका काम उसकी आज्ञा पालन करना है। इसीको राजभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें हमें इसी राजभक्तिकी शिक्षा दी गई है। राजा ईश्वरका प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञाके विरुद्ध चलना महान पातक है। राजाविमुख प्राणी नरकका भागी होता है।

एक शङ्का–राजाका भी तो अपने धर्मका पालन करना चाहिये।

दूसरी शङ्का–हमारे राजा तो नामके हैं, असली राजा तो विलायतके बनिये महाजन है।

तीसरी शङ्का–बनिये धन कमाना जानते है, राज करना क्या जानें।

भगत–लोग तुम्हें शिक्षा देते है कि अदालतोंमें मत जाओ, पञ्चायतोंमें मुक़दमे ले जाओ लेकिन ऐसे पञ्च कहाँ हैं जो सच्चा न्याय करें, दूधका दूध और पानीका पानी करदें। यहाँ मुँह देखी बातें होंगी। जिनका दबाव है उनकी जीत होगी, जिनका कुछ दबाव नहीं है वह बेचारे मारे जायँगे अदालतोंमें सब कार्रवाई क़ानूनपर होती है, वहाँ छोटे बड़े सब बराबर हैं, शेर बकरी एक घाटपर पानी पीते हैं।

दूसरी शङ्का–अदालतोंका न्याय कहने ही को है, जिसके पास बने हुए गवाह और दांव पेंच खेले हुए वकील होते हैं उसीकी जीत होती है, झूठे सच्चेकी परख कौन करता है, हाँ हैरानी अलबत्ता होती है।

भगत–कहा जाता है कि विदेशी चीजोंका व्यवहार मत करो। यह ग़रीबोंके साथ घोर अन्याय है। हमको बाज़ारमें जो चीज़ सस्ती और अच्छी मिले वह लेनी चाहिए। चाहे स्वदेशी हो या विदेशी। हमारा पैसा सेंतमें नहीं आता है कि उसे रद्दी, भद्दी स्वदेशी चीज़ोंपर फेंकें।

एक शङ्का--अपने देशमें तो रहता है, दूसरोंके हाथमें तो नहीं जाता।

दूसरी शङ्का-अपने घरमें अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियोंके घरका अच्छा भोजन खाने लगेंगे?

भगत-लोग कहते हैं लड़कोंको सरकारी मदरसोंमें मत भेजो सरकारी मदरसोंमें न पढ़ते तो आज हमारे भाई बड़ी बडी नौकरियां कैसे पाते, बड़े बड़े कारखाने कैसे बना लेते? बिना नई विद्या पढ़े अब संसारमें निबाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढ़कर पत्रा देखने और कका बांचनेके सिवाय और क्या आता है? राज-काज क्या पट्टी पोथी बांचनेवाले लोग करेंगे?

एक शङ्का-हमें राज काज न चाहिए हम अपनी खेती बारी हीमें मगन हैं, किसीके गुलाम तो नहीं।

दूसरी शङ्का-जो विद्या घमण्डी बना दे उससे मूरख ही अच्छा। यही नई विद्या पढ़कर तो लोग सूट-बूट, घड़ी-छड़ी, हैट-कैट लगाने लगते हैं और अपने शौक़ के पीछे देशका धन विदेशियोंकी जेबमें भरते हैं। ये देशके द्रोही हैं।

भगत—गांजा शराबकी ओर आज कल लोगोंकी कड़ी निगाह है। नशा बुरी लत है इसे सब जानते हैं। सरकार को नशेकी दूकानोंसे करोड़ों रुपये सालकी आमदनी होती है। अगर दूकानोंमें न जानेसे लोगोंकी नशेकी लत छूट जाय तो बड़ी अच्छी बात है। वह दूकानपर न जायगा तो

[७]

चोरी छिपे किसी न किसी तरह दूने चौगुने दाम देकर, सज़ा काटनेपर तैयार होकर, अपनी लत पूरी करेगा। तो ऐसा काम क्यों करो कि सरकारका नुक़सान अलग हो, और ग़रीब रैयतका नुक़सान अलग हो और फिर किसी किसी को नशा खानेसे फायदा होता है। मैं ही एक दिन अफ़ीम न खाऊं तो गाँठोंमें दर्द होने लगे, दम उखड़ जाय और सरदी पकड़ ले।

एक आवाज़–शराब पीनेसे बदनमें फुर्ती आ जाती है।

एक शङ्का–सरकार अधर्मसे रुपया कमाती है। उसे यह उचित नहीं। अधर्मीके राजमें रहकर प्रजाका कल्याण कैसे हो सकता है?

दूसरी शङ्का–पहले दारू पिलाकर पागल बना दिया। लत पड़ी तो पैसेकी चाट हुई। इतनी मजूरी किसको मिलती है कि रोटी कपड़ा भी चले, और दारू शराब भी उड़े। या तो बाल बच्चोंको भूखों मारो या चोरी करो, जुआ खेलो और बेइमानी करो। शराब की दूकान क्या है। हमारी गुलामीका अड्डा है।

[४]

चौधरीके उपदेश सुननेके लिए जनता टूटती थी, लोगों को खड़े होनेको जगह न मिलती। दिनों दिन चौधरीका मान बढ़ने लगा। उनके यहां नित्य पंचायतोंकी, राष्ट्रोन्नति की चर्चा रहती। जनताको इन बातोंमें बड़ा आनन्द और

उत्साह होता। उनके राजनैतिक ज्ञानकी वृद्धि होती। वह अपना गौरव और महत्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ताका अनुभव होने लगा। निरंकुशता और अन्यायपर अब उनकी तिउरियां चढ़ने लगी। उन्हे स्वतन्त्रताका स्वाद मिला। घरकी रुई, घरका सूत, घरका कपड़ा, घरका भोजन, घरकी अदालत, न पुलिसका भय, न अमलोंकी खुशामद, सुख और शान्तिसे जीवन व्यतीत करने लगे। कितनोंहीने नशेबाज़ी छोड़ दी और सद्भावोंकी एक लहर सी दौड़ने लगी।

लेकिन भगतजी इतने भाग्यशाली न थे। जनताको दिनों दिन उनके उपदेशोंसे अरुचि होती जाती थी। यहां तक कि बहुधा उनके श्रोताओंमें पटवारी, चौकीदार, मुदर्रिस और इन्हीं कर्मचारियोंके मित्रोंके अतिरिक्त और कोई न होता था। कभी कभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगतजीका बड़ा आदर-सत्कार करते। ज़रा देरके लिए भगतजीके आंसू पुंछ जाते। लेकिन क्षण भरका सम्मान आठों पहरके अपमानकी बराबरी कैसे करता। जिधर निकल जाते उधरही उंगलियां उठने लगती। कोई कहता खुशामदी टट्टू है, कोई कहता खुफ़िया पुलिसका भेदी है। भगतजी अपने प्रतिद्वन्द्वीकी बड़ाई और अपने लोकनिन्दापर दांत पीस पीस कर रह जाते थे। जीवनमें यह पहला ही अवसर था कि उन्हें सबके सामने नीचा देखना पड़ा। चिरकालसे जिस कुल-मर्यादाकी रक्षा करते आये थे और जिसपर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे वह धूलमें

मिल गई। यह दाहमय चिन्ता उन्हें एक क्षणके लिए चैन न लेने देती। नित्य समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्योंकर पाऊं, अपने प्रतिपक्षी को क्योंकर पददलित करूँ, उसका ग़रूर तोड़ूँ।

अन्तमें उन्होंने सिंहको उसी मांदमें ही पछाड़नेका निश्चय किया।

[५]

संध्याका समय था। चौधरीके द्वारपर एक बड़ी सभा हो रही थी। आस पासके गांवोंके किसान भी आ गये थे, हज़ारों आदमियोंकी भीड़ थी। चौधरी उन्हें स्वराज विषयक उपदेश दे रहे थे। बारम्बार भारतमाताकी जय जयकारकी ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियोंका जमाव था। चौधरीने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी जगहपर बैठे। स्वयं-सेवकोंने स्वराज्य फ़ण्डके लिए चन्दा जमा करना शुरू किया कि इतने में भगतजी न जाने किधरसे लपके हुए आये और श्रोताओंके सामने खड़े होकर उच्च स्वरसे बोले:—

भाइयो, मुझे यहां देखकर अचरज मत करो, मैं स्वराज का विरोधी नहीं हूं। ऐसा पतित कौन प्राणी होगा जो स्वराजका निन्दक हो, लेकिन इसके प्राप्त करने का वह उपाय नहीं है जो चौधरीने बतलाया है और जिसपर तुम लोग लट्टू हो रहे हो। जब आपसमें फूट और राड़ है तो पञ्चायतों

से क्या होगा ? जब विलासिताका भूत सिरपर सवार है तो नशा कैसे छूटेगा, मदिराकी दूकानोंका वहिष्कार कैसे होगा ? सिगरेट, साबुन, मोजे वनियान, अद्धी तंजेवसे कैसे पिण्ड छूटेगा ? जब रोब और हुकूमतकी लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे, विधर्मी शिक्षाकी वेड़ीसे कैसे मुक्त हो सकोगे ? स्वराज लेनेका केवल एकही उपाय है और वह आत्म-संयम है। यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगोंको समूल नष्ट करेगी। आत्माको बलवान बनाओ, इन्द्रियोंको साधो, मनको बसमें करो, तभी तुममें भ्रातृभाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्षा और द्वेषका नाश होगा, तभी भोग विलाससे मन हटेगा तभी नशेबाज़ीका दमन होगा। आत्मबलके विना स्वराज कभी उपलब्ध न होगा। स्वयंसेवा सब पापोंका मूल है, यही तुम्हें अदालतोंमें ले जाता है, यही तुम्हें विधर्मी शिक्षाका दास बनाये हुए है। इस पिशाचको आत्मबलसे मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जायगी। सब जानते हैं मैं ४० सालसे अफ़ीमका सेवन करता हूं। आजसे मैं अफ़ीमको गऊका रक्त समझता हूं। चौधरीसे मेरी तीन पीढ़ियोंकी अदावत है। आजसे चौधरी मेरे भाई हैं। आजसे मुझे या मेरे घरके किसी प्राणीको घरके कते सूतसे बुने हुए कपड़ेके सिवाय कुछ और पहनते देखो तो मुझे जो दण्ड चाहो दो। बस, मुझे यह ही कहना है, परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करे।

यह कहकर भगतजी घरकी ओर चले कि चौधरी दौड़ कर उनके गलेसे लिपट गये। तीन पुश्तोंकी अदावत एक क्षणमें शान्त हो गई।

उस दिनसे चौधरी और भगत साथ साथ स्वराज्यका उपदेश करने लगे। उनमें गाढ़ी मित्रता हो गई और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनोंमेंसे जनता किसको अधिक सम्मान करती है।

प्रतिद्वन्दिता वह चिनगारी थी जिसने दोनों पुरुषोंके हृदय दीपकको प्रकाशित कर दिया था।



चकमा ।

(१)



ठ चन्दूमल्ल जब अपनी दूकान और गोदाममें भरे हुये मालको देखते तो मुंहसे ठंढी साँस निकल जाती। यह माल कैसे बिकेगा ? बैंकका सूद बढ़ रहा है, दूकानका किराया चढ़ रहा है, कर्मचारियोंका वेतन बाक़ी पड़ता जाता है। ये सभी रक़मे गाँठसे देनी पड़ेंगी। अगर कुछ दिन यही हाल रहा तो दिवालेके सिवा और किसी तरह जान न बचेगी। तिसपर भी धरनेवाले नित्य सिरपर शैतानकी तरह सवार रहते हैं।

सेठ चंदूमलकी दूकान चांदनी चौक दिल्लीमें थी। मुफ़स्सिलमें भी उनकी कई दूकानें थीं। जब शहर कांग्रेस कमेटीने उनसे विलायती कपड़ेकी खरीद और बिक्रीके विषय में प्रतिज्ञा करानी चाही तो उन्होंने कुछ ध्यान न दिया। बाजारके कई आढ़तियोंने उनकी देखा-देखी प्रतिज्ञापत्रपर हस्ताक्षर करनेसे इनकार दिया। चन्दूमलको जो नेतृत्व कभी न नसीब हुआ था, वह इस अवसरपर बिना हाथ-पैर हिलाये ही मिल गया। वे सरकारके खैर-ख्वाह थे। साहब-बहादुरोंको समय समयपर डालियाँ नजर देते रहते थे। पुलिससे भी घनिष्ठता थी। म्युनिसिपैलिटीके सदस्य भी थे।

कांग्रेसके व्यापारिक कार्य्य-क्रम का विरोध करके अमन-सभाके कोषाध्यक्ष बन बैठे। यह इसी खैरख्वाहीकी बरकत थी। युवराजका स्वागत करनेके लिए अधिकारियोंने उनसे २५ हज़ारके कपड़े खरीदे। ऐसा सामर्थी पुरुष कांग्रेस से क्यों डरे? कांग्रेस है किस खेतकी मूली? पुलिसवालोंने भी बढ़ावा दिया "मुआहिदेपर हर्गिज दस्तखत न कीजियेगा। देखें ये लोग क्या करते हैं? एक एक को जेल न भिजवा दिया तो कहियेगा"। लालाजीके हौसले बढ़े। उन्होंने कांग्रेससे लड़नेकी ठान ली। उसीके फलस्वरूप तीन महीनोंसे उनकी दूकानपर प्रातः काल से ६ बजे रात तक पहरा रहता था। पुलिस दलोंने उनकी दूकानपर वालंटियरोंको कई बार गालियाँ दीं, कई बार पीटा, खुद सेठजीने भी कई बार उन पर वाणीके बाण चलाये, किन्तु पहरेवाले किसी तरह न टलते थे। बल्कि इन अत्याचारोंके कारण चन्दूमलका बाज़ार और भी गिरता जाता। मुफ़स्सिलकी दूकानोंसे मुनीम लोग और भी दुराशाजनक समाचार भेजते रहते थे। कठिन समस्या थी। इस संकटसे निकलनेका कोई उपाय न था। वे देखते थे कि जिन लोगोंने प्रतिज्ञा-पत्रपर हस्ताक्षर कर दिये हैं वे चोरी-छिपे कुछ न कुछ विदेशी माल बेच लेते हैं। उनकी दूकानोंपर पहरा नहीं बैठता। यह सारी विपत्ति मेरे ही सिर है।

उन्होंने सोचा, पुलिस और हाकिमोंकी दोस्तीसे मेरा भला क्या हुआ? उनके हटाये ये पहरे नहीं हटते। सिपाहियों

की प्रेरणा से गाहक नहीं आते। किसी तरह पहरे बन्द हो जाते तो सारा खेल बन जाता।

इतनेमें मुनीमजीने कहा, लालाजी यह देखिये कई व्यौपारी हमारी तरफ आ रहे थे। पहरेवालोंने उनको न जाने क्या मंत्र पढ़ा दिया, सब चले जा रहे हैं।'

चन्दूमल—अगर इन पापियोंको कोई गोली मार देता तो मैं बहुत खुश होता। यह सब मेरा सर्वनाश करके दम लेंगे।

मुनीम–कुछ हेठी तो होगी, यदि आप प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर कर देते तो यह पहरा उठ जाता। तब हम भी यह सब माल किसी न किसी तरह खपा देते।

चन्दूमल—मन में तो मेरे भी यह बात आती है, पर सोचो: अपमान कितना होगा? इतनी हेकड़ी दिखानेके बाद फिर झुका नहीं जाता। फिर हाकिमोंकी निगाहोंमें गिर जाऊंगा। और लोग भी ताने देंगे कि चले थे बच्चा कांग्रेससे लड़ने। ऐसी मुंहकी खाई कि होश ठिकाने आ गये। जिन लोगोंको पीटा और पिटवाया, जिनको गालियां दीं, जिनकी हंसी उड़ाई अब उनकी शरण कौन मुंह लेकर जाऊं। मगर एक उपाय सूझ रहा है। अगर चकमा चल गया तो पौ बारह है। बात तो तब है जब सांपको मारूं मगर लाठी बचा कर। पहरा उठा दूं पर बिना किसी की खुशामद किये।

(२)

नौ बज गये थे। सेठ चन्दूमल गङ्गा-स्नान करके लौट

आये थे और मसनदपर बैठकर चिट्ठियां पढ़ रहे थे। अन्य दूकानोंके मुनीमोंने अपनी विपत्ति-कथा सुनाई थी! एक एक पत्रको पढ़कर सेठजीका क्रोध बढ़ता जाता था। इतने में दो वालंटियर झण्डियां लिए हुए उनकी दूकानके सामने आकर खड़े हो गये।

सेठजीने डांटकर कहा—हट जाओ हमारी दूकानके सामने से।

एक वालंटियरने उत्तर दिया—महाराज, हम तो सड़क पर हैं। क्या यहांसे भी चले जायं।

तुम्हारी सूरत नहीं देखना चाहता।

वालंटियर—तो आप कांग्रेस कमेटीको लिखिये। हमको तो वहांसे यहां खड़े रहकर पहरा देनेका हुक्म मिला है।

एक कान्सटेबिलने आकर कहा—क्या है सेठजी, यह लौंडा क्या दर्राता है?

चन्दूमल बोले मैं कहता हूं कि दूकानके सामनेसे हट जाओ, पर यह कहता है कि न हटेंगे न हटेंगे। ज़रा इनकी ज़बरदस्ती देखो।

कान्सटेबिल—(वालंटियरोंसे) तुम दोनों यहांसे जाते हो कि आकर गरदन नापूं।

वालंटियर—हम सड़कपर खड़े हैं, दूकानपर नहीं।

कान्सटेबिलका अभीष्ट अपनी कारगुजारी दिखाना था। वह सेठजीको खुश करके कुछ इनाम-एकराम भी लेना

चाहता था। उसने वालंटियरोंको अपशब्द कहे, और जब उन्होंने उसकी कुछ परवा न की तो एक वालंटियरको इतनी ज़ोरसे धक्का दिया कि वह बेचारा मुंहके बल ज़मीनपर गिर पड़ा। कई वालंटियर इधर-उधरसे आकर जमा हो गये। कई सिपाही भी आ पहुंचे। दर्शकवृन्दको ऐसी घटनाओंमें मज़ा आता ही है। उनकी भीड़ लग गई। किसीने हांक लगाई 'महात्मा गान्धी की जय'। औरोंने भी उसके सुर में सुर मिलाया, देखते-देखते एक जनसमूह एकत्रित हो गया।

एक दर्शकने कहा-क्या है? लाला चन्दूमल अपने दूकानके सामने इन गरीबोंकी यह दुर्गति करा रहे हो, और तुम्हें ज़रा भी लज्जा नहीं आती? कुछ भगवानका भी डर है या नहीं?

सेठजीने कहा—मुझसे क़सम ले लो जो मैंने किसी सिपाही से कुछ कहा हो। ये लोग अनायास बेचारोंके पीछे पड़ गये। मुझे सेंतमें बदनाम करते है।

एक सिपाही—लाला जी आपहीने तो कहा था कि ये दोनों वालंटियर मेरे ग्राहकोंको छेड़ रहे हैं। अब आप निकले जाते हैं।

चन्दूराल—बिलकुल झूठ, सरासर झूठ, सोलहों आना झूठ। तुम लोग अपनी कारगुज़ारीकी धुनमें इनसे उलझ पड़े। यह बेचारे तो दूकानसे बहुत दूर खड़े थे। न किसीसे बोलते थे, न चालते थे। तुमने जबरदस्ती ही इन्हें गरदनी देनी शुरू की। मुझे अपना सौदा बेचना है कि किसीसे लड़ना है।

दूसरा सिपाही—लालाजी हो बड़े होशियार। मुझसे आग लगाकर अलग हो गये। तुम न कहते तो हमें क्या पड़ी थी कि इन लोगोंको धक्के देते। दारोगाजीने भी हमको ताकीद कर दी थी कि सेठ चन्दूमलकी दूकानका विशेष ध्यान रखना। वहाँ कोई वालंटियर न आये। तब हम लोग आये थे। तुम फरियाद न करते तो दरोगा जी हमारी तैनाती ही क्यों करते?

चन्दूमल—दारोगा जी को अपनी कारगुजारी दिखानी होगी। मैं उनके पास क्यों फरियाद करने जाता? सभी लोग कॉंग्रेसके दुश्मन हो रहे हैं। थानेवाले तो उसके नामसे ही, जलते हैं। क्या मैं शिकायत करता तभी तुम्हारी तैनाती करते?

इतनेमें किसीने थानेमें इत्तिला दी कि चन्दूमलकी दूकान पर कान्स्टेबिलों और वालण्टियरोंमें मार-पीट हो गई। कांग्रेसके दफ्तरमें ख़बर पहुंची। ज़रा देरमें मय सशस्त्र पुलिसके थानेदार और इन्सपेक्टर साहब आ पहुंचे। उधर कॉंग्रेसके कर्मचारी भी दल-बल सहित दौड़े। समूह और बढ़ा। बार बार जय-जयकार ध्वनि उठने लगी। कॉंग्रेस और पुलिसके नेताओंमें विवाद-वाद होने लगा। परिणाम यह हुआ कि पुलिस वालोंने दोनोंको हिरासतमें लिया और थानेकी ओर चले।

पुलिस अधिकारियोंके चले जाने बाद सेठजीने कॉंग्रेसके प्रधानसे कहा—आज मुझे मालूम हुआ कि ये लोग वालण्ट-

वर्षोंपर इतना घोर अत्याचार करते हैं।

प्रधान—तब तो दो चालान [illegible] फैसला अभी नहीं हुआ। इस विषयमें अब तो आपको कोई शंका नहीं है। हम कितने लड़ाकू, कितने द्रोही, कितने शान्तिभंगकारी हैं यह तो आपको खूब मालूम हो गया होगा ?

चन्दूमल—जो हाँ [illegible]।

प्रधान—आपका [illegible]।

चन्दूमल—हाकिमोंसे [illegible] नहीं हूँगा, चाहे बने या बिगड़े। पुलिसका [illegible] नहीं देखा जाता। मैं भी भ्रम में पड़ा हुआ था।

मंत्री—पुलिसवाले [illegible]।

चन्दूमल—[illegible] नहीं [illegible]। [illegible]

मंत्री—अब तो हम [illegible]।

चन्दूमल—मुझे [illegible]।

यह [illegible] चन्दूमलने [illegible] कहा—[illegible]।

प्रधान—[illegible] सिद्ध हो जायगा।

(३)

शामको इन्सपेक्टर [illegible] चन्दूमलको थानेमें बुलाया और कहा—[illegible] आपको

तरफ़से बेफ़िक्र हैं।

चन्दूमल बोले–हाजिर हूं।

इन्स–वालंटियरोंने कान्स्टेबिलोंको गालियाँ दी ?

चन्दू—मैंने नहीं सुनी।

इन्स—सुनी या नहीं सुनी, यह बहस नहीं है। आपको यह कहना होगा। वह सब ख़रीदारोंको धक्के देकर हटाते थे, हाथा-पाई करते थे, मारनेकी धमकी देते थे, ये सभी बातें कहनी होंगी। दरोगाजी वह बयान लाइये जो मैंने सेठजीके लिये लिखवाया है।

चन्दू—मुझसे भरी अदालतमें झूठ न बोला जायगा। अपने हज़ारों जाननेवाले अदालतमें होंगे। किस किससे मुंह छिपाऊं। कहीं निकलनेको जगह भी चाहिये।

इन्स—यह सब बातें निजके मुआमलोंके लिए हैं। पालिटिकल मुआमलोंमें झूठ-सच, शर्म और हया, किसीका भी ख़याल नहीं किया जाता।

चन्दू—मुहमें कालिख लग जायगी।

इन्स—सरकारकी निगाहमें इज्ज़त चौगुनी हो जायगी।

चन्दू—(सोच कर) जी नहीं,गवाही न दे सकूंगा। कोई और गवाह बना लीजिये।

इन्स—याद रखिये, यह इज्ज़त ख़ाकमें मिल जायगी।

चन्दू—मिल जाय- मज़बूरी है।

इन्स—अमन-सभाके कोषाध्यक्षका पद छिन जायगा।

चन्दू—उससे कौन रोटियाँ चलती है ?

इन्स—बन्दूकका लाइसेंस छिन जायगा ।

चन्दू—छिन जाय- बला से !

इन्स—इनकम टैक्सकी जाँच फिरसे होगी

चन्दू—ज़रूर कराइये । यह तो मेरे मनकी बात हुई ।

इन्स—बैठनेको कुरसी न मिलेगी ।

चन्दू-कुरसी लेकर चाटूं ? दिवाला तो निकला जा रहा है ।

इन्स—अच्छी बात है । तशरीफ़ ले जाइये । कभी तो आप पंजेमें आयेंगे ।

(४)

दूसरे दिन इसी समय कांग्रेसके दफ्तरमें कलके लिए कार्य्यक्रम निश्चित किया जा रहा था । प्रधानने कहा:—सेठ चन्दूमलकी दूकानपर धरना देनेके लिए दो स्वयंसेवक भेजिये ।

मन्त्री—मेरे विचारमें वहां अब धरना देनेकी जरूरत नहीं ।

प्रधान—क्यों ? उन्होंने अभी प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर तो नहीं किये ?

मन्त्री—हस्ताक्षर नहीं किये, पर हमारे मित्र अवश्य हो गये । पुलिसकी तरफ़से गवाही न देना यही सिद्ध करता है । अधिकारियोंका कितना दबाव पड़ा होगा इसका अनुमान किया जा सकता है । यह नैतिक साहस विचारोंमें परिवर्तित हुए बिना नहीं आ सकता ।

प्रधान—हाँ कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है ।

मन्त्री—"कुछ" नहीं, महाशय ! पूरी क्रान्ति चाहिये। आप जानते हैं ऐसे मुआमलोंमें अधिकारियोंकी अवहेलना करनेका क्या अर्थ है ? यह राजविद्रोहकी घोषणाके समान है ! त्यागमें सन्याससे इसका महत्व कम नहीं है। आज जिलेके सारे हाकिम उनके खूनके प्यासे हो रहे हैं और आश्चर्य नहीं कि गवर्नर महोदयको भी इसकी सूचना दी गई हो।

प्रधान—और कुछ नहीं तो उन्हें नियमका पालन करने ही के लिए प्रतिज्ञापत्रपर दस्तख़त कर देना चाहिये था। किसी तरह उन्हें यहाँ बुलाइये। अपनी बात तो रह जाय।

मन्त्री—वह बड़ा आत्माभिमानी है, कभी न आयेगा। बल्कि हम लोगोंकी ओरसे इतना अविश्वास देखकर सम्भव है कि फिर उस दलमें मिलनेकी चेष्टा करने लगे।

प्रधान—अच्छी बात है, आपको उनपर इतना विश्वास हो गया है तो उनकी दूकानको छोड़ दीजिये। तब भी मैं यही कहूँगा कि आपको स्वयं मिलनेके बहानेसे उनपर निगाह रखनी होगी।

मन्त्री—आप नाहक इतना शक करते हैं।

(५)

नौ बजे सेठ चन्दूमल अपनी दूकानपर आये तो वहाँ एक भी वालंटियर न था। मुखपर मुसकराहटकी झलक आई। मुनीमसे बोले—'कौड़ी चित पड़ी।'

मुनीम—मालूम तो होता है। एक महाशय भी नहीं आये।

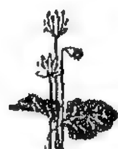
चन्दूमल—न आये और न आयेंगे । बाज़ी अपने हाथ रही । कैसा दाँव खेला—चारोंचित ।

मुनीम—पुलीसवाले तो दुशमन हो गये ।

चन्दू०—आप भी कैसी बातें करते हैं ? इन्हें दोस्त बनाते कितनी देर लगती है । कहिये अभी बुलाकर जूतियाँ सीधी करवाऊं । टकेके गुलाम हैं, न किसीके दोस्त न किसीके दुश-मन । सच कहिये कैसा चकमा दिया है ?

मुनीम—बस यही जी चाहता है कि आपके हाथ चूमलें । साँप भी मरा और लाठी भी न टूटी । मगर कांग्रेसवाले भी टोहमें होंगे ।

चन्दूमल—तो मैं भी तो मौजूद हूं । वह डाल डाल चलेंगे तो मैं पात पात चलूंगा । विलायती कपड़ेकी गांठें निकलवा-इये और व्यापारियोंको देना शुरू कीजिये । एक अठवारेमें बेड़ा पार है ।



आप-बीती

प्रायः अधिकांश साहित्य-सेवियोंके जीवनमें एक ऐसा समय आता है, जब पाठकगण उनके पास श्रद्धा-पूर्ण पत्र भेजने लगते हैं। कोई उनकी रचना-शैलीकी प्रशंसा करता है, कोई उनके सद्-विचारोंपर मुग्ध हो जाता है। लेखकको भी कुछ दिनोंसे यह सौभाग्य प्राप्त है। ऐसे पत्रोंको पढ़कर उसका हृदय कितना गद्गद हो जाता है, इसे किसी साहित्य-सेवी ही से पूछना चाहिए। अपने फटे कंबलपर बैठा हुआ वह गर्व और आत्मगौरवकी लहरोंमें डूब जाता है। भूल जाता है कि रात को गीली लकड़ीसे भोजन पकानेके कारण सिरमें कितना दर्द हो रहा था, खटमलों और मच्छड़ोंने रात-भर कैसे नींद हराम कर दी थी। 'मैं भी कुछ हूं' यह अहंकार उसे एक क्षणके लिये उन्मत्त बना देता है। पिछले साल, सावनके महीनेमें मुझे एक ऐसा ही पत्र मिला। उसमें मेरी क्षुद्र रचनाओंकी दिल खोलकर दाद दी गई थी।

पत्र-प्रेषक महोदय स्वयं एक अच्छे कवि थे। मैं उनकी कविताएँ पत्रिकाओंमें अक्सर देखा करता था। यह पत्र पढ़कर फूला न समाया। उसी वक्त जवाब लिखने बैठा।

उस तरंगमें जो कुछ लिख गया, इस समय याद नहीं। इतना ज़रूर याद है कि पत्र आदिसे अंत तक प्रेमके उद्गारोंसे भरा हुआ था। मैंने कभी कविता नहीं की, और न कोई गद्य-काव्यही लिखा: पर भाषाको जितना संवार सकता था, उतना सँवारा। यहाँ तक कि जब पत्र समाप्त करके दुबारा पढ़ा, तो कविताका आनंद आया। सारा पत्र भाव-लालित्यसे परिपूर्ण था। पाँचवें दिन कवि महोदयका दूसरा पत्र आ पहुँचा। वह पहले पत्रसे भी कहीं अधिक मर्मस्पर्शी था। 'प्यारे भैया !' कहकर मुझे संबोधित किया गया था, मेरी रचनाओं की सूची और प्रकाशकोंके नाम, ठिकाने, पूछे गए थे। अंत में यह शुभसमाचार था कि "मेरी पत्नीजीको आपके ऊपर बड़ी श्रद्धा है वह बड़े प्रेमसे आपकी रचनाओंको पढ़ती हैं। वही पूछ रही हैं कि आपका विवाह कहाँ हुआ है। आपकी संतानें कितनी हैं तथा आपका कोई फोटो भी है? हो, तो कृपया भेज दीजिये।" मेरी जन्म-भूमि और वंशावलीका पता भी पूछा गया था। इस पत्र, विशेषतः उसके अंतिम समाचारने मुझे पुलकित कर दिया।

यह पहला ही अवसर था कि मुझे किसी महिलाके मुख से, चाहे वह प्रतिनिधिद्वाराही क्यों न हो, अपनी प्रशंसा सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ग़रूरका नशा छा गया। धन्य हैं भगवान्! अब रमणियाँ भी मेरे कृत्यकी सराहना करने लगीं ! मैंने तुरंत उत्तर लिखा। जितने कर्णप्रिय शब्द मेरी स्मृतिके

कोणमें थे, सब खर्च कर दिए। मैत्री और बंधुत्वसे सारा पत्र भरा हुआ था। अपनी वंशावलीका वर्णन किया। कदाचित मेरे पूर्वजोंका ऐसा कीर्तिगान किसी भाटने भी न किया होगा। मेरे नाना एक जमींदारके कारिंदे थे; मैंने उन्हें एक बड़ी रियासतका दीवान बतलाया। अपने पिताको, जो एक दफ्तरमें क्लर्क थे, उस दफ्तरका प्रधानाध्यक्ष बना दिया। और, काश्तकारोंको जमींदार बना देना तो साधारण बात थी। अपनी रचनाओंकी संख्या तो न बढ़ा सका, पर उनके महत्व, आदर और प्रचारका उल्लेख ऐसे शब्दोंमें किया, जो नम्रताकी ओटमें अपने गर्वको छिपाते हैं। कौन नहीं जानता कि बहुधा 'तुच्छका' अर्थ उसके विपरीत होता है, और 'दीनके' माने कुछ और ही समझे जाते हैं। स्पष्टरूपसे अपनी बड़ाई करना उच्छृंखलता है; मगर सांकेतिक शब्दोंसे आप इसी कामको बड़ी आसानीसे पूरा कर सकते हैं। खैर, मेरा पत्र समाप्त हो गया, और तत्क्षण लेटरबक्सके पेटमें पहुँच गया।

इसके बाद दो सप्ताहतक कोई पत्र न आया। मैंने उस पत्रमें अपनी गृहिणीकी ओरसे भी दो-चार समयोचित बातें लिख दी थीं। आशा थी, घनिष्ठता और भी घनिष्ठ होगी। कहीं कवितामें मेरी प्रशंसा हो जाय, तो क्या पूछना! फिर तो साहित्य-संसारमें मैं-ही-मैं नज़र आऊँ! इस चुप्पीसे कुछ निराशा होने लगी, लेकिन, इस डरसे कि कहीं कविजी मुझे

मतलबी अथवा Sentimental न समझ लें, कोई पत्र न लिख सका।

आश्विनका महीना था, और तीसरा पहर। रामलीलाकी धूम मची हुई थी। मैं अपने एक मित्रके घर चला गया था। ताशकी बाज़ी हो रही थी। सहसा एक महाशय मेरा नाम पूछते हुए आए, और मेरे पासकी कुरसीपर बैठ गए। मेरा उनसे कभीका परिचय न था: सोच रहा था; यह कौन आदमी हैं, और यहाँ कैसे आया। यार लोग उन महाशयकी ओर देखकर आपसमें इशारेबाज़ियाँ कर रहे थे। उनके आकार प्रकार में कुछ नवीनता अवश्य थी। श्यामवर्ण, नाटा डील, मुखपर चेचकके दाग़, नंगा सिर, बाल सँवारे हुए, सिर्फ़ सादी क़मीज़, गलेमें फूलोंकी एक माला, पैरोंमें एक फुल-बूट, और हाथ में एक मोटीसी पुस्तक!

मैंने विस्मित होकर नाम पूछा।

उत्तर मिला—मुझे उमापतिनारायण कहते हैं।

मैं उठकर उनके गलेसे लिपट गया। यह वही कवि महोदय थे, जिनके कई प्रेम-पत्र मुझे मिल चुके थे। कुशल-समाचार पूछा। पान-इलायचीसे ख़ातिर की। फिर पूछा—"आपका आना कैसे हुआ?"

उन्होंने कहा—"मकानपर चलिए, तो सब वृत्तांत कहूँगा। मैं आपके घर गया था वहाँ मालूम हुआ, आप यहाँ हैं। पूछता हुआ चला आया।"

मैं उमापतिजीके साथ घर चलनेको उठ खड़ा हुआ। जब वह कमरेके बाहर निकल गए, तो मेरे मित्रने पूछा—"यह कौन साहब हैं?"

मैं—"मेरे एक नए दोस्त हैं?"

मित्र—"ज़रा इनसे होशियार रहिएगा। मुझे तो उचक्के से मालूम होते हैं।"

मैं—"आपका गुमान ग़लत है। आप हमेशा आदमीको उसकी सज-धजसे परखा करते हैं। पर मनुष्य कपड़ोंमें नहीं, हृदयमें रहता है।"

मित्र—"ख़ैर, ये रहस्यकी बातें तो आप जानें; मैं आपको आगाह किए देता हूँ।"

मैंने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। उमापतिजीके साथ घर पर आया। बाज़ारसे भोजन मँगवाया। फिर बातें होने लगीं। उन्होंने मुझे अपनी कई कविताएँ सुनाईं। स्वर बहुत सरस और मधुर था।

कविताएँ तो मेरी समझ में ख़ाक न आईं, पर मैंने तारीफ़ोंके पुल बाँध दिए। झूम-झूमकर वाह, वाह! करने लगा; जैसे मुझसे बढ़कर कोई काव्य-रसिक संसारमें न होगा। संध्याको हम रामलीला देखने गए। लौटकर उन्हें फिर भोजन कराया। अब उन्होंने अपना वृत्तांत सुनाना शुरू किया इस समय वह अपनी पत्नीको लेनेके लिये कानपुर जा रहे हैं उनका मकान कानपुर हीमें है। उनका विचार है कि एक

मासिक पत्रिका निकालें। उनकी कविताओंके लिये एक प्रकाशक १०००) देता है; पर उनकी इच्छा तो यह है कि उन्हें पहले पत्रिकामें क्रमशः निकालकर फिर अपनी ही लागतसे पुस्तकाकार छपवावें। कानपुरमें उनकी जमींदारी भी है; पर वह साहित्यिक जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। जमींदारी से उन्हें घृणा है। उनकी स्त्री एक कन्या-विद्यालयमें प्रधानाध्यापिका हैं। आधी रात तक बातें होती रहीं। अब उनमेंसे अधिकांश याद नहीं हैं। हाँ, इतना याद है कि हम दोनोंने मिलकर अपने भावी जीवनका एक कार्य-क्रम तैयार कर लिया था। मैं अपने भाग्यको सराहता था कि भगवानने बैठे-बिठाए ऐसा सच्चा मित्र भेज दिया। आधी रात बीत गई, तो सोए उन्हें दूसरे दिन ८ बजेकी गाड़ीसे जाना था। मैं जब सोकर उठा, तब ७ बज चुके थे। उमापतिजी मुँह-हाथ धोए तैयार बैठे थे। बोले—"अब आज्ञा दीजिए— लौटते समय इधर हीसे जाऊँगा। इस समय आपको कुछ कष्ट दे रहा हूँ। क्षमा कीजिएगा। मैं कल चला, तो प्रातःकालके ४ बजे थे। दो बजे रातसे पड़ा जाग रहा था कि कहीं नींद न आ जाय। बल्कि यों समझिए कि सारी रात जागना पड़ा; क्योंकि चलनेकी चिन्ता लगी हुई थी। गाड़ीमें बैठा तो झपकियाँ आने लगीं। कोट उतारकर रख दिया, और लेट गया, तुरंत नींद आ गई। मुग़लसराय में नींद खुली। कोट ग़ायब! नीचे,ऊपर, चारों तरफ़ देखा, कहीं पता नहीं। समझ गया, किसी महा-

शयने उड़ा दिया। सोनेकी सज़ा मिल गई। कोटमें ५०) ख़र्च के लिये रक्खे थे; वे भी उसके साथ उड़ गए। आप मुझे ५०) दें। पत्नीको मैकेसे लाना है, कुछ कपड़े वग़ैरह ले जाने पड़ेंगे। फिर ससुरालमें सैकड़ों तरहके नेग-जोग लगते हैं। क़दम-क़दमपर रुपए ख़र्च होते हैं। न ख़र्च कीजिए, तो हँसी हो। मैं इधरसे लौटूँगा, तो देता जाऊँगा।"

मैं बड़े संकोचमें पड़ गया। एक बार पहले भी धोखा खा चुका था। तुरंत भ्रम हुआ, कहीं अब की फिर वही दशा न हो। लेकिन शीघ्र ही मनके इस अविश्वासपर लज्जित हुआ। संसारमें सभी मनुष्य एकसे नहीं होते। यह बेचारे इतने सज्जन हैं। इस समय संकटमें पड़ गए हैं। और, मैं मिथ्या संदेहमें पड़ा हुआ हूँ। घरमें आकर पत्नीसे कहा—"तुम्हारे पास कुछ रुपए तो नहीं है?" स्त्री—"क्या करोगे?"

मैं—"मेरे मित्र जो कल आए हैं, उनके रुपए किसीने गाड़ीमें चुरा लिए। उन्हें बीबीको बिदा कराने सुसराल जाना है। लौटती बार देते जायँगे।"

पत्नीने व्यंग्य करके कहा—"तुम्हारे यहाँ जितने मित्र आते हैं, सब तुम्हें ठगने ही आते है। सभी संकटमें पड़े रहते हैं। मेरे पास रुपए नहीं है।"

मैंने खुशामद करते हुए कहा—"लाओ दे दो। बेचारे तैयार खड़े हैं। गाड़ी छूट जायगी।"

स्त्री—"कह दो इस समय घरमें रुपए नहीं हैं।"

मैं—" यह कह देना आसान नहीं है । इसका अर्थ तो यह है कि मैं दरिद्र ही नहीं, मित्र-हीन भी हूँ ; नहीं तो क्या मेरे लिए ५०) का भी इंतिज़ाम न हो सकता । उमापति को कभी विश्वास न आवेगा कि मेरे पास रुपए नहीं हैं । इससे तो कहीं अच्छा हो कि साफ़-साफ़ यह कह दिया जाय कि 'हमको आपपर भरोसा नहीं है, हम आपको रुपए नहीं दे सकते ।' कमसे-कम अपना पर्दा तो ढका रह जायगा ।"

श्रीमतीने झुँझलाकर संदूककी कुंजी मेरे आगे फेंक दी, और कहा--"तुम्हें जितना बहस करना आता है, उतना कहीं आदमियोंको परखना आता, तो अब तक आदमी हो गए होते ! ले जाओ, दे दो । किसी तरह तुम्हारी मर्यादा तो बनी रहे । लेकिन उधार समझकर मत दो, यह समझ लो कि पानी में फेंके देते हैं ।"

मैंने--मुझे आम खानेसे काम था, पेड़ गिननेसे नहीं--चुपकेसे रुपए निकाले, और लाकर उमापतिको दे दिए । फिर लौटती बार आकर रुपए दे जानेका आश्वासन देकर वह चल दिए ।

सातवें दिन शामको वह घरसे लौट आए । उनकी पत्नी और पुत्री भी साथ थीं । मेरी पत्नीने शक्कर और दही खिलाकर उनका स्वागत किया । मुँह-दिखाईके २) दिए । उनकी पुत्रीको भी मिठाई खानेको २) दिए । मैंने समझा था, उमापति आतेही आते मेरे रुपए गिनने लगेंगे, लेकिन उन्होंने

पहर रात गए तक रुपयोंका नाम भी नहीं लिया। जब मैं घरमें सोने गया, तो बीबीसे कहा—"इन्होंने तो रुपए नहीं दिए जी।"

पत्नीने व्यंग्यसे हंसकर कहा—"तो क्या सचमुच तुम्हें आशा थी कि वह आतेही आते तुम्हारे हाथमें रुपए रख देंगे मैंने तो तुमसे पहले ही कह दिया था कि फिर पानेकी आशा से रुपए मत दो ; यही समझ लो कि किसी मित्रको सहायतार्थ दे दिए। लेकिन तुम भी विचित्र आदमी हो।"

मैं लज्जित और चुप हो रहा। उमापतिजी दो दिन रहे। मेरी पत्नी उनका यथोचित आदर-सत्कार करती रही। लेकिन मुझे उतना संतोष न था। मैं समझता था, इन्होंने मुझे धोखा दिया।

तीसरे दिन प्रातःकाल वह चलनेको तैयार हुए। मुझे अब भी आशा थी कि वह रुपए देकर जायँगे। लेकिन जब उनकी नई रामकहानी सुनी, तो सन्नाटे में आ गया। वह अपना बिस्तरा बाँधते हुए बोले—"बड़ाही खेद है कि मैं अबकी बार आपके रुपए न दे सका। बात यह है कि मकानपर पिताजीसे भेंट ही नहीं हुई। वह तहसील-वसूल करने गाँव चले गए थे, और मुझे इतना अवकाश न था कि गाँव तक जाता। रेलका रास्ता नहीं है। बैल-गाड़ियोंपर जाना पड़ता है। इसलिये मैं एक दिन मकानपर रहकर ससुराल चला गया। वहां सब रुपए खर्च हो गए। बिदाईके

रुपए न मिल जाते, तो यहाँ तक आना कठिन था। अब मेरे पास रेलका किराया तक नहीं है। आप मुझे २५) और दे दें मैं वहाँ जातेही जाते भेज दूँगा। मेरे पास इक्के तकका किराया नहीं है।"

जी में तो आया कि टकासा जवाब दे दूँ; पर इतनी अशिष्टता न हो सकी। फिर पत्नीके पास गया, और रुपए माँगे। अबकी उन्होंने बिना कुछ कहे सुने रुपए निकालकर मेरे हवाले कर दिए। मैंने उदासीनभावसे रुपए उमापतिजी को दे दिए। जब उनकी पुत्री और अर्धांगिनी ज़ीनेसे उतर गईं, तो उन्होंने बिस्तर उठाया, और मुझे प्रणाम किया। मैंने बैठे-बैठे सिर हिलाकर जवाब दिया। उन्हें सड़क तक पहुँचाने भी न गया।

एक सप्ताहके बाद उमापतिजीने लिखा—"मैं कार्यवश बरार जा रहा हूँ। लौटकर रुपये भेजूँगा।"

१५ दिनके बाद मैंने एक पत्र लिखकर कुशल-समाचार पूछे। कोई उत्तर न आया। १५ दिनके बाद फिर रुपयोंका तक़ाजा किया। उसका भी कुछ जवाब न मिला। एक महीने के बाद फिर तक़ाजा किया। उसका भी यही हाल! एक रजिस्टरी-पत्र भेजा। वह पहुँच गया, इसमें संदेह नहीं; लेकिन जवाब उसका भी न आया। समझ गया, समझदार जोरूने जो कुछ कहा था, वह अक्षरशः सत्य था। निराश होकर चुप हो रहा।

इन पत्रोंकी मैंने पत्नीसे चर्चा भी नहीं की, और न उसी ने कुछ इस बारे में पूछा।

(२)

इस कपट-व्यवहारका मुझपर वही असर पड़ा, जो साधारणतः स्वाभाविक रूपसे पड़ना चाहिये था। कोई ऊँची और पवित्र आत्मा इस छलपर भी अटल रह सकती थी। उसे यह समझकर संतोष हो सकता था कि मैंने अपने कर्त्तव्यको पूरा कर दिया। यदि ऋणीने ऋण नहीं चुकाया, तो मेरा क्या अपराध! पर मैं इतना उदार नहीं हूँ। यहाँ तो महीनों सिर खपाता हूँ, क़लम घिसता हूँ, तब जाकर नगद-नारायण के दर्शन होते हैं।

इसी महीनेकी बात है। मेरे यंत्रालयमें एक नया कंपोजीटर बिहार-प्रांतसे आया। काममें चतुर जान पड़ता था। मैंने उसे १५) मासिकपर नौकर रख लिया। पहले किसी अंगरेज़ी स्कूलमें पढ़ता था। असहयोगके कारण पढ़ना छोड़ बैठा था। घरवालोंने किसी प्रकारकी सहायता देनेसे इनकार किया। विवश होकर उसने जीविकाके लिये यह पेशा अख़्तियार कर लिया। कोई १७-१८ वर्षकी उम्र थी। स्वभाव में गंभीरता थी। बात-चीत बहुत सलीक़ेसे करता था। यहाँ आनेके तीसरे दिन उसको बुख़ार आने लगा। दो-चार दिन तो ज्यों-त्यों करके काटे, लेकिन जब बुख़ार न छूटा, तो घबरा गया। घरकी याद आई। और कुछ न सही, घरवाले क्या

दवा-दर्पन भी न करेंगे ! मेरे पास आकर बोला—" महाशय मैं बीमार हो गया हूँ । आप कुछ रुपये दे दें, तो घर चला जाऊँ । वहाँ जाते ही रुपयोंका प्रबंध करके भेज दूँगा ।" वह वास्तवमें बीमार था । मैं उससे भली भाँति परिचित भी था । यह भी जानता था कि यहाँ रहकर वह कभी स्वास्थ्य-लाभ नहीं कर सकता । उसे सचमुच सहायताकी ज़रूरत थी पर मुझे शंका हुई कि कहीं यह भी रुपये हज़म न कर जाय । जब एक विचार-शील, सुयोग्य, विद्वान् पुरुष धोखा दे सकता है, तो ऐसे अर्द्ध-शिक्षित नवयुवकसे कैसे यह आशा की जाय कि वह अपने वचनका पालन करेगा ?

मैं कई मिनटतक घोर संकटमें पड़ा रहा । अंतमें बोला-"भई, मुझे तुम्हारी दशापर बहुत दुःख है । मगर मैं इस समय कुछ न कर सकूँगा । बिलकुल ख़ाली हाथ हूँ । खेद है।"

यह कोरा जवाब सुनकर उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे । वह बोला—"आप चाहें तो कुछ न कुछ प्रबंध अवश्य कर सकते हैं । मैं जाते ही आपके रुपये भेज दूँगा ।"

मैंने दिलमें कहा—यहाँ तो तुम्हारी नियत साफ़ है, लेकिन घर पहुँचकर भी यही नियत रहेगी, इसका क्या प्रमाण है । नियत साफ़ रहनेपर भी मेरे रुपए दे सकोगे या नहीं, यही कौन जाने ? कम-से-कम तुमसे वसूल करने का मेरे पास कोई साधन नहीं है । प्रकटमें कहा—"इसमें मुझे कोई संदेह नहीं । लेकिन खेद है कि मेरे पास रुपये नहीं है । हाँ, तुम्हारी

जितनी तनख्वाह निकलती हो वह ले सकते हो।"

उसने कुछ जवाब नहीं दिया। किं-कर्तव्य-विमूढ़की तरह एक बार आकाशकी ओर देखा, और चला गया। मेरे हृदय में कठिन वेदना हुई। अपनी स्वार्थपरतापर ग्लानि हुई। पर अंतको मैंने जो निश्चय किया था, उसीपर स्थिर रहा। इस विचारसे मनको संतोष हो गया कि मैं ऐसा कहांका धनी हूं जो यों रुपये पानीमें फेंकता फिरूं।

यह है उस कपटका परिणाम, जो मेरे कवि मित्रने मेरे साथ किया।

मालूम नहीं आगे चलकर इस निर्दयताका क्या कुफल निकलता; पर सौभाग्यसे उसकी नौबत न आई। ईश्वरको मुझे इस अपयशसे बचाना मंजूर था। जब वह आंखोंमें आंसू भरे मेरे पाससे चला, तो कार्यालयके एक क्लर्क, पं० पृथ्वीनाथसे उसकी भेंट हो गई। पंडितजीने उससे हाल पूछा। पूरा वृत्तांत सुन लेनेपर बिना किसी आगे पीछेके उन्होंने १५) निकालकर उसे दे दिये। ये रुपये उन्हें कार्यालय के मुनीमसे उधार लेने पड़े। मुझे यह हाल मालूम हुआ, तो हृदयके ऊपरसे एक बोझ-सा उतर गया। अब वह बेचारा मज़ेसे अपने घर पहुंच जायगा। यह संतोष मुफ्तहीमें प्राप्त हो गया। कुछ अपनी नीचतापर लज्जा भी आई। मैं लंबे-लंबे लेखोंमें दया, मनुष्यता और सद्व्यवहारका उपदेश किया करता था; पर अवसर पड़नेपर साफ़ जान बचाकर निकल

गया ! और, यह बेचारा क्लर्क, जो मेरे लेखोंका भक्त था, इतना उदार और दयाशील निकला ! गुरु गुड़ ही रहे, चेला शक्कर हो गये । ख़ैर, इसमें भी एक व्यंग्य-पूर्ण संतोष था कि मेरे उपदेशोंका असर मुझपर न हुआ, न सही दूसरोंपर तो हुआ । चिराग़के तले अँधेरा रहा तो क्या हुआ, उसका प्रकाश तो फैल रहा है । पर, कहीं बच्चाको रुपये न मिले (और शायद ही मिलें, इसकी बहुत कम आशा है) तो खूब छकेंगे । तब हज़रतको आड़े हाथों लूँगा । किंतु मेरी यह अभिलाषा न पूरी हुई । पाँचवें दिन रुपये आ गए । ऐसी और आँखें खोल देनेवाली यातना मुझे और कभी नहीं मिली थी । ख़ैरियत यही थी कि मैंने इस दुर्घटनाकी चर्चा स्त्रीसे नहीं की थी, नहीं तो मुझे घरमें रहना भी मुश्किल हो जाता ।

(३)

उपर्युक्त वृत्तांत लिखकर मैंने एक पत्रिकामें भेज दिया । मेरा उद्देश्य केवल यह था कि जनताके सामने कपट-व्यवहार के कुपरिणामका एक दृश्य रक्खूँ । मुझे स्वप्नमें भी आशा न थी कि इसका कोई प्रत्यक्ष फल निकलेगा । इसीसे, जब चौथे दिन अनायास मेरे पास ५०) का मनीआर्डर पहुँचा, तो मेरे आनंदकी सीमा न रही । प्रेषक वही महाशय थे—उमापति । कूपनपर केवल "क्षमा" लिखा हुआ था । मैंने रुपये ले जाकर स्त्रीके हाथोंमें रख दिये, और कूपन दिखाया ।

उसने अनमने भावसे कहा—"इन्हें ले जाकर यत्नसे

अपने सन्दूकमें रखो। तुम ऐसे लोभी प्रकृतिके मनुष्य हो, यह मुझे आज ज्ञात हुआ। थोड़ेसे रुपयोंके लिये किसीके पीछे पंजे झाड़कर पड़ जाना सज्जनता नहीं है। जब कोई शिक्षित और विचारशील मनुष्य अपने वचनका पालन न करे, तो यही समझना चाहिये कि वह विवश है। विवश मनुष्यको बार-बार तकाज़ोंसे लज्जित करना भलमंसी नहीं है। कोई मनुष्य, जिसका सर्वथा नैतिक पतन नहीं हो गया है, यथा-शक्ति किसीको धोखा नहीं देता इन रुपयोंको मैं तब तक अपने पास नहीं रक्खूँगी, जब तक उमापति का कोई पत्र न आ जायगा कि क्यों रुपये भेजनेमें इतना विलंब हुआ।"

पर इस समय मैं ऐसी उदार बातें सुननेको तैयार न था डूबा हुआ धन मिल गया, इसकी खुशीसे फूला नहीं समाता था



आभूषण

—०—

(१)

आभूषणोंकी निंदा करना हमारा उद्देश्य नहीं है। हम असहयोगका उत्पीड़न सह सकते हैं; पर ललनाओंके निर्दय, घातक वाक्यबाणोंको नहीं ओज सकते। तो भी इतना अवश्य कहेंगे कि इस तृष्णाकी पूर्तिके लिये जितना त्याग किया जाता है, उसका सदुपयोग करनेसे महान् पद प्राप्त हो सकता है।

यद्यपि हमने किसी रूप-हीना महिलाको आभूषणोंकी सजावटसे रूपवती होते नहीं देखा, तथापि हम यह भी मान लेते हैं कि रूपके लिये आभूषणोंकी उतनी ही जरूरत है, जितनी घरके लिये दीपककी। किंतु शारीरिक शोभाके लिये हम मनको कितना मलिन, चित्तको कितना अशांत, और आत्माको कितना कलुषित बना लेते हैं, इसका हमें कदाचित् ज्ञान ही नहीं होता। इस दीपककी ज्योतिमें आँखें धुंधली हो जाती हैं। यह चमक-दमक कितनी ईर्ष्या, कितने द्वेष कितनी प्रतिस्पर्धा, कितनी दुश्चिंता और कितनी दुराशाका कारण है; इसकी केवल कल्पनासे ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन्हें भूषण नहीं, दूषण कहना अधिक उपयुक्त है। नहीं तो यह कब हो सकता था कि कोई नववधू, पतिके घर आनेके तीसरे

ही दिन, अपने पतिसे कहती कि "मेरे पिताने तुम्हारे पल्ले बांधकर मुझे तो कुएंमें ढकेल दिया !" शीतला आज अपने गांवके ताल्लुक़ेदार कुअंर सुरेशसिंहकी नव-विवाहिता वधूको देखने गई थी। उनके सामने ही वह मन्त्रमुग्धसी हो गई। बहूके रूप लावण्यपर नहीं, उसके आभूषणोंकी जगमगाहटपर उसकी टकटकी लगी रही। और, वह जबसे लौटकर घर आई, उसकी छातीपर सांप लोटता रहा। अन्तको ज्यों ही उसका पति घर आया, वह उसपर बरस पड़ी, और दिलमें भरा हुआ गुबार पूर्वोक्त शब्दोंमें निकल पड़ा। शीतलाके पतिका नाम विमल सिंह था। उनके पुरखे किसी ज़मानेमें इलाक़ेदार थे। इस गांवपर भी उन्हीका सोलहो आने अधिकार था। लेकिन अब इस घरकी दशा हीन हो गई है। सुरेशसिंहके पिता ज़मींदारीके काममें दक्ष थे विमलसिंहका सब इलाक़ा किसी न किसी प्रकारसे उनके हाथ आ गया। विमलके पास सवारीका टट्टू भी न था; उसे दिनमें दो बार भोजन भी मुश्किलसे मिलता था। उधर सुरेशके पास हाथी, मोटर और कई घोड़े थे; दस पांच बाहरके आदमी नित्य द्वारपर पड़े रहते थे। पर इतनी विषमता होनेपर भी दोनोंमें भाईचारा निभाया जाता था, शादी ब्याहमें मुंडन-छेदनमें परस्पर आना जाना होता रहता था। सुरेश विद्या-प्रेमी थे, हिंदुस्तानमें ऊँची शिक्षा समाप्त करके वह यूराप चले गये, और, सब लोगोंकी शंकाओंके विपरीत, वहांसे

आर्य—सभ्यताके परमभक्त बनकर लौटे। वहाँके जड़वाद, कृत्रिम—भोगलिप्सा और अमानुषिक मदांधताने उनकी आखें खोल दी थीं। पहले वह घरवालोंके बहुत ज़ोर देनेपर भी विवाह करनेको राजी नही हुए थे, लडकीसे पूर्व-परिचय हुए बिना प्रणय नहीं कर सकते थे। पर यूरोपसे लौटनेपर उनके वैवाहिक विचारोंमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। उन्होंने उसी पहलेकी कन्यासे बिना उसके आचार-विचार जाने हुए, विवाह कर लिया। अब वह विवाहको प्रेमका बंधन नहीं, धर्मका बंधन समझते थे। उसी सौभाग्यवती वधूको देखनेके लिये आज शीतला, अपनी सासके साथ, सुरेशके घर गई थी। उसीके आभूषणोंकी छटा देखकर वह मर्माहतसी हो गई है। विमलने व्यथित होकर कहा—तो माता-पितासे कहा होता, सुरेशसे ब्याह कर देते। वह तुम्हें गहनोंसे लाद सकते थे।"

शीतला—"तो गाली क्यों देते हो?"

विमल—"गाली नहीं देता, बात कहता हूँ। तुम-जैसी सुन्दरीको उन्होंने नाहक़ मेरे साथ ब्याहा।"

शीतला—"लजाते तो हो नहो, उलटे और ताने देते हो!"

विमल—"भाग्य मेरे वशमें नहीं है। इतना पढ़ा भी नहीं हूँ कि कोई बड़ी नौकरी करके रुपये कमाऊं।"

शीतला—"यह क्यों नहीं कहते कि प्रेम ही नही है। प्रेम हो, तो कंचन बरसने लगे।"

विमल—"तुम्हे गहनोंसे बहुत प्रेम है?"

शीतला—"सभीको होता है। मुझे भी है।"

विमल—"अपनेको अभागिनी समझती हो?"

शीतला—"हूं ही समझना कैसा? नहीं तो क्या दूसरे को देखकर तरसना पडता?"

विमल—"गहने बनवा दूँ तो अपनेको भाग्यवती समझने लगोगी?"

शीतला—"(चिढ़कर)" तुम तो इस तरह पूछ रहे हो, जैसे सुनार दरवाज़ेपर बैठा है।"

विमल—"नहीं सच कहता हूँ, बनवा दूँगा। हाँ, कुछ दिन सबर करना पड़ेगा।"

(२)

समर्थ पुरुषोंको बात लग जाती है, तो वे प्राण ले लेते हैं। सामर्थ्यहीन पुरुष अपनी ही जानपर खेल जाता है। विमल सिंहने घरसे निकल जानेकी ठानी। निश्चय किया, या तो इसे गहनोंसे ही लाद दूंगा या वैधव्य-शोकसे या तो आभूषण ही पहनेगी या सेंदुरको भी तरसेगी।

दिनभर वह चितामें डूबा पड़ा रहा। शीतलाको उसने प्रेमसे संतुष्ट करना चाहा था। आज अनुभव हुआ कि नारीका हृदय प्रेम-पाशसे नहीं बँधता, कंचनके पाश हीसे बंध सकता है। पहर रात जाते-जाते वह घरसे चल खड़ा हुआ। पीछे फिरकर भी न देखा। ज्ञानसे जागे हुए विरागमें

चाहे मोहका संस्कार हो, पर नैराश्यसे जागा हुआ विराग अचल होता है। प्रकाशमें इधर उधरकी वस्तुओंको देखकर मन विचलित हो सकता है। पर अंधकारमें किसका साहस है, जो लीकसे जौ भर भी हट सके।

विमलके पास विद्या न थी, कलाकौशल भी न था उसे केवल अपने कठिन परिश्रम और कठिन आत्म-त्याग हीका आधार था। वह पहले कलकत्ते गया। वहां कुछ दिनतक एक सेठकी दरबानी करता रहा। वहाँ जो सुन पाया कि रंगूनमें मज़दूरी अच्छी मिलती है, तो रंगून जा पहुँचा और बंदरपर माल चढ़ाने उतारनेका काम करने लगा।

कुछ तो कठिन श्रम कुछ खाने पीनेके असंयम, और कुछ जल वायुकी ख़राबीके कारण वह बीमार हो गया। शरीर दुर्बल हो गया, मुखकी कांति जाती रही; फिर भी उससे ज्यादा मेहनती मज़दूर बंदरपर दूसरा न था। और मज़दूर मजदूर थे पर यह मज़दूर तपस्वी था। मनमें जो कुछ ठान लिया था उसे पूरा करना ही उसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य था।

उसने घरको अपना कोई समाचार न भेजा। अपने मनसे तर्क किया, घरमें कौन मेरा हितू है? गहनोंके सामने मुझे कौन पूछता है? उसकी बुद्धि यह रहस्य समझनेमें असमर्थ थी कि आभूषणोंकी लालसा रहनेपर भी प्रणयका पालन किया जा सकता है। और मज़दूर प्रातःकाल सेरों मिठाई

खाकर जल-पान करते थे ; दिन भर दम-दम-भरपर—गाँजे, चरस और तमाखूके दम लगाते थे ; अवकाश पाते, तो बाजारकी सैर करते थे। कितनों हीको शराबका भी शौक़ था। पैसोंके बदले रुपये कमाते थे, तो पैसोंकी जगह रुपये ख़र्च भी कर डालते थे। किसीकी देहपर साबूत कपड़े तक न थे। पर विमल उन गिनतीके दो-चार मज़दूरोंमें था, जो संयमसे रहते थे, जिनके जीवनका उद्देश्य खा-पीकर मर जानेके सिवा कुछ और भी था। थोड़े ही दिनोंमें उसके पास थोड़ी-सी संपत्ति हो गई। धनके साथ और मज़दूरोंपर दबाव भी बढ़ने लगा। यह प्रायः सभी जानते थे कि विमल जातिका कुलीन ठाकुर है। सब ठाकुर ही कहकर उसे पुकारते थे। संयम और आचार सम्मान-सिद्धिके मंत्र हैं। विमल मज़दूरोंका नेता और महाजन हो गया।

विमलको रंगूनमें काम करते तीन वर्ष हो चुके थे। संध्या हो गई थी। वह कई मज़दूरोंके साथ समुद्रके किनारे बैठा बातें कर रहा था।

एक मज़दूरने कहा—"यहाँकी सभी स्त्रियाँ निठुर होती हैं। बेचारा झींगुर १० बरससे उस ,बर्मी स्त्रीके साथ रहता था। कोई अपनी ब्याही जोरूसे भी इतना प्रेम न करता होगा। उसपर इतना विश्वास करता था कि जो कुछ कमाता, सो उसके हाथमें रख देता। तीन लड़के थे। अभी कलतक दोनों साथ साथ खाकर लेटे थे। न कोई लड़ाई न झगड़ा, न बात

न चीत, रातको औरत न जाने कब उठी, और न-जाने कहाँ चली गई। लड़कोंको छोड़ गई। बेचारा झींगुर बैठा रो रहा है। सबसे बड़ी मुश्किल तो छोटे बच्चेकी है। अभी कुल छः महीनेका है। कैसे जियेगा, भगवान ही जानें।"

विमलसिंहने गंभीरभावसे कहा—"गहने बनवाता था कि नहीं?"

मज़दूर—"रुपए-पैसे तो औरतहीके हाथमें थे। गहने बनवाती, तो उसका हाथ कौन पकड़ता?"

दूसरे मज़दूरने कहा—"गहनोंसे तो लदी हुई थी। जिधरसे निकल जाती थी, छम-छमकी आवाज़से कान भर आते थे।"

विमल—"जब गहने बनवानेपर भी निठुराई की, तो यही कहना पड़ेगा कि यह जाति ही बेवफ़ा होती है।"

इतनेमें एक आदमी आकर विमलसिंह से बोला—"चौधरी अभी मुझे एक सिपाही मिला था। वह तुम्हारा नाम, गाँव और बापका नाम पूछ रहा था। कोई बाबू सुरेशसिंह हैं?"

विमलने सशंक होकर कहा—"हाँ,है। मेरे गाँवके इलाक़े-दार और बिरादरीके भाई हैं।"

आदमी—"उन्होंने थानेमें कोई नोटिस छपवाया है कि जो विमलसिंहका पता लगावेगा, उसे १,०००) का इनाम मिलेगा।"

विमल—"तो तुमने सिपाहीको सब ठीक ठीक बता दिया?"

आदमी—"चौधरी, मैं कोई गँवार हूँ क्या? समझ गया,

कुछ दालमें काला है ; नहीं तो कोई इतने रुपये क्यों ख़र्च करता। मैंने कह दिया कि उनका नाम विमलसिंह नहीं,जसोदा पाँड़े है। बापका नाम सुक्खू बताया, और घर ज़िला झाँसी में। पूछने लगा, यहाँ कितने दिनसे रहता है ? मैंने कहा, कोई दस सालसे। तब कुछ सोचकर चला गया। सुरेश बाबूसे तुमसे कोई अदावत है क्या चौधरी ?"

विमल—"अदावत तो नहीं थी, मगर कौन जाने, उनकी नीयत बिगड़ गई हो, मुझपर कोई अपराध लगाकर मेरी जगह-ज़मीनपर हाथ बढ़ाना चाहते हों। तुमने बड़ा अच्छा किया कि सिपाहीको उड़नघाई बताई।"

आदमी—"मुझसे कहता था कि ठीक-ठीक बता दो, तो ५०) तुम्हें भी दिला दूँ। मैंने सोचा—आप तो हज़ार की गठरी मारेगा, और मुझे ५०) दिलानेको कहता है। फटकार बता दी।"

एक मज़दूर—"मगर जो २००) देने को कहता, तो तुम सब ठीक-ठीक नाम-ठिकाना बता देते ? क्यों ? धत तेरे लालचोंकी !"

आदमी—(लज्जित होकर) "२००) नहीं, २,०००) भी देता, तो न बताता। मुझे ऐसा विश्वास-घात करनेवाला मत समझो। जब जी चाहे, परख लो।

मज़दूरोंमें यों वाद-विवाद होता ही रहा, विमल आकर अपनी कोठरीमें लेट गया। वह सोचने लगा—अब क्या

करूँ ? जब सुरेश-जैसे सज्जनकी नीयत बदल गई, तो अब किसका भरोसा करूँ ! नहीं, अब बिना घर गये काम नहीं चलेगा । कुछ दिन और न गया, तो फिर कहींका न हूंगा । दो साल और रह जाता, तो पासमें पूरे ५,०००) हो जाते । शीतला की इच्छा कुछ पूरी हो जाती । अभी तो सब मिलाकर ३,०००) ही होंगे इतनेमें उसकी अभिलाषा न पूरी होगी । खैर, अभी चलूँ, छः महीने में फिर लौट आऊंगा । अपनी जायदाद तो बच जायगी । नहीं छः महीने रहनेका क्या काम है ? जाने-आनेमें एक महीना लग जायगा । घरमें १५ दिनसे ज्यादा न रहूँगा । वहाँ कौन पूछता है, आऊँ या रहूँ, मरूँ या जिऊँ वहाँ तो गहनोंसे प्रेम है ।

इस तरह मनमें निश्चय करके वह दूसरे दिन रंगूनसे चल पड़ा ।

(३)

संसार कहता है, कि गुणके सामने रूपकी कोई हस्ती नहीं । हमारे नीति-शास्त्रके आचार्यों का भी यही कथन है । पर वास्तव में यह कितना भ्रम-मूलक है ! कुँवर सुरेशसिंहकी नव-वधू मंगलाकुमारी गृह-कार्यमें निपुण, पतिके इशारेपर प्राण देने वाली, अत्यंत विचार-शीला, मधुर-भाषिणी और धर्म-भीरु थी; पर सौंदर्य-विहीन होनेके कारण पतिकी आँखोंमें काँटेके समान खटकती थी । सुरेशसिंह बात-बातपर उसपर झुँझलाते. पर घड़ी-भर में पश्चात्तापके वशीभूत होकर उससे क्षमा

माँगते ; किंतु दूसरे ही दिन फिर वही कुत्सित व्यापार शुरू हो जाता । विपत्ति यह थी की उनके आचरण अन्य रईसोंकी भाँति भ्रष्ट न थे । वह दंपति-जीवनहीमें आनंद, सुख, शांति, विश्वास, प्रायः सभी ऐहिक और पारमार्थिक उद्देश्य पूरा करना चाहते थे । और दाम्पत्य-सुखसे वंचित होकर उन्हें अपना समस्त जीवन नीरस, स्वाद-हीन और कुंठित जान पड़ता था फल यह हुआ कि मंगलाको अपने ऊपर विश्वास न रहा । वह अपने मनसे कोई काम करते हुए डरती कि स्वामी नाराज़ होंगे । स्वामीको खुश रखनेके लिये अपनी भूलोंको छिपाती बहाने करती, झूठ बोलती । नौकरोंको अपराध लगाकर आत्मरक्षा करना चाहती । पतिको प्रसन्न रखनेके लिये उसने अपने गुणोंकी, अपनी आत्माकी, अवहेलाकी, पर उठनेके बदले वह पतिकी नजरोंमें गिरती ही गई । वह नित्य नये शृंगार करती; पर लक्ष्यसे दूर होती जाती थी । पतिकी एक मधुर मुसकानके लिये, उनके अधरोंके एक मीठे शब्दके लिये, उसका प्यासा हृदय तड़प-तड़पकर रह जाता था । लावण्य-विहीन स्त्री वह भिक्षुक नहीं है, जो चंगुल-भर आटेसे संतुष्ट हो जाय । वह भी पतिका संपूर्ण, अखंड प्रेम चाहती है, और कदाचित् सुंदरियोंसे अधिक; क्योंकि वह इसके लिये असाधारण प्रयत्न और अनुष्ठान करती है । मंगला इस प्रयत्नमें निष्फल होकर और भी संतप्त होती थी ।

धीरे धीरे पतिपरसे उसकी श्रद्धा उठने लगी । उसने तर्क

किया कि ऐसे क्रूर, हृदय-शून्य, कल्पना-हीन मनुष्यसे मैं भी उसीका-सा व्यवहार करूँगी। जो पुरुष केवल रूपका भक्त है, वह प्रेम भक्तिके योग्य नहीं। इस प्रत्याघातने समस्या और भी जटिल कर दी।

मगर मंगलाको केवल अपनी रूप-हीनता हीका रोना न था। शीतलाका अनुपम रूपलालित्य भी उसकी कामनाओं का बाधक था। बल्कि यही उसकी आशालताओंपर पड़ने वाला तुषार था। मंगला सुन्दरी न सही, पर पतिपर जान देती थी। जो अपनेको चाहे, उससे हम विमुख नहीं हो सकते प्रेमकी शक्ति अपार है। पर शीतलाकी मूर्ति सुरेशके हृदय द्वारपर बैठी हुई मंगलाको अंदर न जाने देती थी, चाहे वह कितना ही वेष बदलकर आवे। सुरेश इस मूर्तिको हटानेकी चेष्टा करते थे, उसे बलात् निकाल देना चाहते थे. किंतु सौंदर्य का आधिपत्य धनके आधिपत्यसे कम दुर्निवार नहीं होता। जिस दिन शीतला इस घरमें मंगलाका मुँह देखने आई थी उसी दिन सुरेशकी आँखोंने उसकी मनोहर छविकी एक झलक देख ली थी। वह एक झलक मानो एक क्षणिक क्रिया थी, जिसने एक ही धावेमें समस्त हृदय-राज्यको जीत लिया, उसपर अपना आधिपत्य जमा लिया।

सुरेश एकांतमें बैठे हुए शीतलाके चित्रको मंगलासे मिलाते, यह निश्चय करनेके लिये कि उनमें क्या अंतर है? एक क्यों मनको खींचती है, दूसरी क्यों उसे हटाती है?

पर उनके मनका यह खिंचाव केवल एक चित्रकार या कवि का रसास्वादन-मात्र था। वह पवित्र और वासनाओंसे रहित था। वह मूर्ति केवल उनके मनोरंजनकी सामग्री-मात्र थी। वह अपने मनको बहुत समझाते, संकल्प करते कि अब मंगला को प्रसन्न रक्खूँगा। यदि वह सुंदरी नहीं है, तो उसका क्या दोष? पर उनका यह सब प्रयास मंगलाके सम्मुख जाते ही विफल हो जाता था। वह बड़ी सूक्ष्मदृष्टि से मंगलाके मनके बदलते हुए भावोंको देखते थे; पर एक पक्षाघात-पीड़ित मनुष्यकी भाँति घीके घड़ेको लुढ़कते देखकर भी रोकनेका कोई उपाय न कर सकते थे। परिणाम क्या होगा, यह सोचनेका उन्हें साहस ही न होता था। पर जब मंगलाने अंतको बात बातमें उनकी तीव्र आलोचना करना शुरू कर दिया, वह उनसे उच्छृंखलताका व्यवहार करने लगी, तो उसके प्रति उनका वह उतना सौहार्द्र भी विलुप्त हो गया। घरमें आना-जाना ही छोड़ दिया।

एक दिन संध्याके समय बड़ी गरमी थी। पंखा झलनेसे आग और भी दहकती थी। कोई सैर करने बगीचोंमें भी न जाता था। पसीनेकी भाँति शरीरसे सारी स्फूर्ति बह गई थी जो जहाँ था, वहीं मुर्दासा पड़ा था। आगसे सेंके हुए मृदंग की भाँति लोगोंके स्वर कर्कश हो गये थे। साधारण बात-चीत में भी लोग उत्तेजित हो जाते थे, जैसे साधारण संघर्षसे वन के वृक्षजल उठते हैं। सुरेशसिंह कभी चार क़दम टहलते

थे फिर हाँफकर बैठ जाते थे। नौकरोंपर झुँझला रहे थे कि जल्द जल्द छिड़काव क्यों नहीं करते। सहसा उन्हें अंदरसे गानेकी आवाज़ सुनाई दी। चौंके, फिर क्रोध आया। मधुर गान कानोंको अप्रिय जान पड़ा। यह क्या बेवक़्फ़ी शहनाई है! यहां गरमीके मारे दम निकल रहा है, और इन सबको गानेकी सूझी है! मंगलाने बुलाया होगा, और क्या! लोग नाहक़ कहते हैं कि स्त्रियोंके जीवनका आधार प्रेम है। उनके जीवनका आधार वही भोजन निद्रा, राग-रंग, आमोद-प्रमोद है, जो समस्त प्राणियोंका है। घंटे-भर तो सुन चुका। यह गीत कभी बंद भी होगा या नहीं सब व्यर्थमें गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रही हैं।

अंतको न रहा गया। ज़नानख़ानेमें आकर बोले—"यह तुम लोगोंने क्या काँव-काँव मचा रक्खी है? यह गाने-बजाने का कौनसा समय है? बाहर बैठना मुश्किल हो गया!"

सन्नाटा छा गया। जैसे शोर-गुल मचानेवाले बालकोंमें मास्टर पहुँच जाय। सभीने सिर झुका लिये, और सिमट गईं।

मंगला तुरंत उठकर सामनेवाले कमरेमें चली गई। पति को बुलाया, और आहिस्तेसे बोली—"क्यों इतना बिगड़ रहे हो?"

"मैं इस वक़्त गाना नहीं सुनना चाहता।"

"तुम्हें सुनाता ही कौन है? क्या मेरे कानोंपर भी तुम्हारा अधिकार है?"

"फ़जूल की बमचख़—"

"तुमसे मतलब ?"

"मैं अपने घरमें यह कोलाहल न मचने दूँगा !"

"तो मेरा घर कहाँ और है ?"

सुरेशसिंह इसका उत्तर न देकर बोले—"इन सबसे कह दो, फिर किसी वक्त, आवें।"

मंगला—"इसलिये कि तुम्हें इनका आना अच्छा नहीं लगता ?"

"हाँ, इसीलिये ?"

"तुम क्या सदा वही करते हो, जो मुझे अच्छा लगे ? तुम्हारे यहाँ मित्र आते हैं, हँसी-ठट्ठे की आवाज़ अंदर सुनाई देती है। मैं कभी नहीं कहती कि इन लोगोंका आना बंद कर दो। तुम मेरे कामोंमें दस्तंदाज़ी क्यों करते हो ?"

सुरेशने तेज़ होकर कहा—"इसलिये कि मैं घरका स्वामी हूँ।"

मंगला-"तुम बाहरके स्वामी हो; यहाँ मेरा अधिकार है।"

सुरेश—"क्यों व्यर्थकी बक-बक करती हो ? मुझे चिढ़ाने से क्या मिलेगा ?"

मंगला ज़रा देर चुप-चाप खड़ी रही। वह पतिके मनोगत भावोंकी मीमांसा कर रही थी। फिर बोली—"अच्छी बात है। अब इस घरमें मेरा कोई अधिकार नहीं, तो न रहूंगी। अब तक भ्रममें थी। आज, तुमने वह भ्रम मिटा दिया। मेरा इस घरपर अधिकार कभी नहीं था। जिस स्त्रीका पतिके

हृदयपर अधिकार नहीं उसका उसकी संपत्तिपर भी कोई अधिकार नही हो सकता।"

सुरेशने लज्जित होकर कहा—"बातका बतंगड़ क्यों बनाती हो! मेरा यह मतलब न था। कुछ-का-कुछ समझ गई"।

मंगला—"मनकी बात आदमीके मुँहसे अनायास ही निकल जाती है। सावधान होकर हम अपने भावोंको छिपा लेते हैं।"

सुरेशको अपनी असज्जनतापर दुःख तो हुआ, पर इस भयसे कि मैं इसे जितना ही मनाऊँगा, उतना ही यह और जली-कटी सुनावेगी, उसे वहीं छोड़कर बाहर चले आए।

प्रातःकाल ठंडी हवा चल रही थी। सुरेश खुमारीमें पड़े हुए स्वप्न देख रहे थे कि मंगला सामनेसे चली जा रही है। चौंक पड़े। देखा, द्वारपर सचमुच मंगला खड़ी है। घरकी नौकरानियाँ आँचलसे आँखें पोंछ रही हैं। कई नौकर आस-पास खड़े हैं। सभीकी आँखें सजल और मुख उदास हैं। मानो बहू विदा हो रही है।

सुरेश समझ गये कि मंगलाको कलकी बात लग गई। पर उन्होंने उठकर कुछ पूछनेकी, मनानेकी, या समझानेकी चेष्टा नहीं की। यह मेरा अपमान कर रही है; मेरा सिर नीचा कर रही है। जहाँ चाहे, जाय। मुझसे कोई मतलब नहीं। यों बिना कुछ पूछे-गाछे चले जानेका अर्थ यह है कि मैं इसका कोई नहीं। फिर मैं इसे रोकनेवाला कौन!

यह यों ही जड़वत् पड़े रहे, और मंगला चली गई। उनकी तरफ़ मुँह उठाकर भी न ताका।

(४)

मंगला पांव-पैदल चली जा रही थी। एक बड़े ताल्लुक़ेदार की औरतके लिये यह मामूली बात न थी। हर किसीकी हिम्मत न पड़ती थी कि उससे कुछ कहे। पुरुष उसकी राह छोड़कर किनारे खड़े हो जाते थे। नारियाँ द्वारपर खड़ी करुण-कौतूहलसे देखती थीं, और आंखोंसे कहती थीं—"हा निर्दयी पुरुष ? इतना भी न हो सका कि एक डोलापर बैठा देता।"

इस गाँवसे निकलकर मंगला उस गांवमें पहुँची, जहां शीतला रहती थी। शीतला सुनते ही द्वारपर आकर खड़ी, हो गई. और मंगलासे बोली—'बहन ज़रा आकर दम लेलो।'

मंगलाने अन्दर जाकर देखा तो मकान जगह-जगहसे गिरा हुआ था। दालानमें एक बूढ़ा खाटपर पड़ी थी। चारों ओर दरिद्रताके चिह्न दिखाई देते थे।

शीतलाने पूछा—"यह क्या हुआ ?"

मंगला—"जो भाग्यमें लिखा था।"

शीतला—"कुँअरजीने कुछ कहा सुना क्या ?"

मंगला—"मुँह से कुछ न कहने पर भी तो मनकी बात छिपी नहीं रहती।"

शीतला—"अरे तो क्या अब यहाँ तक नौबत आ गई!"

दुःखकी अंतिम दशा संकोच-हीन होती है। मंगलाने

कहा—"चाहती, तो अब भी पड़ी रहती। उसी घरमें जीवन कट जाता। पर जहाँ प्रेम नहो, पूछ नहीं, मान नही, वहाँ अब नहीं रह सकती।"

मंगला—"तुम्हारा मैका कहाँ है?"

शीतला—"मैके कौन मुँह लेकर जाऊँगी?"

मंगला—"तब कहाँ जाओगी?"

शीतला—"ईश्वरके दरबारमें। पूछूँगी कि तुमने मुझे सुंदरता क्यों नहीं दी? बदसूरत क्यों बनाया? बहन, स्त्री के लिये इससे अधिक दुर्भाग्यकी बात नहीं कि वह रूप-हीन हो। शायद पुरबुले जनमकी पिशाचिनियाँ ही बदसूरत औरतें होती हैं। रूपसे प्रेम मिलता है, और प्रेमसे दुर्लभ कोई वस्तु नहीं है।"

यह कहकर मंगला उठ खड़ी हुई। शीतलाने उसे रोका नही। सोचा—"इसे क्या खिलाऊँगी आज तो चूल्हा जलनेकी कोई आशा नहीं।

उसके जानेके बाद वह बहुत देरतक बैठी सोचती रही—मैं कैसी अभागिन हूँ। जिस प्रेमको न पाकर यह बेचारी जीवन को त्याग रही है. उसी प्रेमको मैंने पाँवसे ठुकरा दिया! इसे ज़ेवरकी क्या कमी थी? क्या ये सारे जड़ाऊ ज़ेवर इसे सुखी रख सके? इसने उन्हें पाँवसे ठुकरा दिया। उन्हीं आभूषणोंके लिये मैंने अपना सर्वस्व खो दिया। हा! न-जाने वह (विमलसिंह) कहाँ हैं. किस दशामें हैं!

अपनी लालसाको, तृष्णाको, वह कितनी ही बार धिक्कार चुकी थी। शीतलाकी दशा देखकर आज उसे आभूषणोंसे घृणा हो गई।

विमलको घर छोड़े दो साल हो गए थे। शीतलाको अब उनके बारेमें भाँति-भाँतिकी शंकाएँ होने लगी थीं। आठों पहर उसके चित्तमें ग्लानि और क्षोभकी आग सुलगा करती थी।

देहातके छोटे-मोटे ज़मींदारोंका काम डाँट-डपट, छीन-झपट ही से चला करता है। विमलकी खेती बेगारमें होती थी। उसके जानेके बाद सारे खेत परती रह गये। कोई जोतनेवाला न मिला। इस ख़यालसे साझेपर भी किसीने न जोता कि बीचमें कहीं विमलसिंह आ गये, तो साझेदारको अँगूठा दिखा देंगे। असामियोंने लगान न दिया। शीतलाने महाजनसे रुपये उधार लेकर काम चलाया। दूसरे वर्ष भी यही कैफ़ियत रही। अबकी महाजनने रुपये नहीं दिये। शीतलाके गहनोंके सिर गई। दूसरा साल समाप्त होते-होते घरकी सब लेई-पूँजी निकल गई। फ़ाक़े होने लगे। बूढ़ी सास, छोटा देवर, ननद, और आप चार प्राणियोंका ख़र्च था। नात हित भी आते ही रहते थे। उसपर यह और मुसीबत हुई कि मैकेमें एक फ़ौजदारी हो गई। पिता और बड़े भाई उसमें फँस गये। दो छोटे भाई, एक बहन और माता, चार प्राणी और सिरपर आ डटे। गाड़ी पहले ही मुशकिलसे चलती थी, अब ज़मीनमें धँस गई।

प्रातः कालसे कलहका आरंभ हो जाता। समधिन समधिनसे, साले बहनोईसे गुथ जाते। कभी तो अन्नके अभावसे भोजन ही न बनता; कभी, भोजन बननेपर भी, गाली गलौज के कारण खानेकी नौबत न आती। लड़के दूसरोंके खेतोंमें जाकर गन्ने और मटर खाते; बूढ़ियाँ दूसरोंके घर जाकर अपना दुखड़ा रोती और ठकुर-सोहाती कहती। पुरुषकी अनुपस्थितिमें स्त्रीके मैकेवालोंका प्राधान्य हो जाता है। इस संग्राममें प्रायः विजय-पताका मैकेवालों हीके हाथ रहती है। किसी भाँति घरमें नाज आ जाता, तो उसे पीसे कौन! शीतलाकी मां कहती, चार दिनके लिये आई हूं, तो क्या चक्की चलाऊँ? सास कहती, खानेकी बेर तो बिल्लीकी तरह लपकेंगी, पीसते क्यों जान निकलती है? विवश होकर शीतला को अकेले पीसना पड़ता। भोजनके समय वह महाभारत मचता कि पड़ोसवाले तंग आ जाते। शीतला कभी मांके पैरों पड़ती कभी सासके चरण पकड़ती, लेकिन दोनों ही उसे झिड़क देतीं। मां कहती, तूने यहां बुलाकर हमारा पानी उतार लिया। सास कहती, मेरी छातीपर सौत लाकर बैठा दी, अब बातें बनाती है? इस घोर विवादमें शीतला अपना विरह-शोक भूल गई। सारी अमंगल शंकायें इस विरोधाग्निमें शांत हो गईं। बस, अब यही चिंता थी कि इस दशासे छुटकारा कैसे हो? मा और सास, दोनों ही का यमराजके सिवा और कोई कहीं ठिकाना न था; पर

यमराज उनका स्वागत करनेके लिये बहुत उत्सुक नहीं जान पड़ते थे। सैकड़ों उपाय सोचती; पर उस पथिककी भाँति, जो दिन भर चलकर भी अपने द्वारहीपर खड़ा हो, उसकी सोचनेकी शक्ति निश्चल हो गई थी। चारों तरफ़ निगाहें दौड़ाती कि कहीं कोई शरणका स्थान है? पर कहीं निगाह न जमती।

एक दिन वह इसी नैराश्यकी अवस्थामें द्वारपर खड़ी थी। मुसीबतमें, चित्तकी उद्विग्नतामें, इंतज़ारमें, द्वारसे हमें प्रेम हो जाता है। सहसा उन्हें बाबू सुरेशसिंहको सामनेसे घोड़े पर जाते देखा। उनकी आँखें उसकी ओर फिरीं। आँखें मिल गईं। वह झिझक-कर पीछे हट गई। किवाड़े बंद कर लिये। कुंअर साहब आगे बढ़ गये। शीतलाको खेद हुआ कि उन्होंने मुझे देख लिया। मेरे सिरपर सारी फटी हुई थी, चारों तरफ़ उसमें पैबंद लगे हुए थे? वह अपने मनमें न जाने क्या कहते होंगे?

कुंअर साहबको गांववालोंसे विमलसिंहके परिवारके कष्टों की ख़बर मिली थी। वह गुप्तरूपसे उनकी कुछ सहायता करना चाहते थे। पर शीतलाको देखते ही संकोचने उन्हें ऐसा दबाया कि द्वारपर एक क्षण भी न रुक सके। मंगला के गृह-त्यागके तीन महीने पीछे आज वह पहली बार घरसे निकले थे। मारे शर्मके बाहर बैठना छोड़ दिया था।

इसमें संदेह नहीं कि कुंअर साहब मन में शीतला के रूप-रस

का आस्वादन करते थे। मंगलाके जानेके बाद उनके हृदय में एक विचित्र दुष्कामना जग उठी। क्या किसी उपायसे यह सुंदरी मेरी नही हो सकती? विमलका मुद्दतसे पता नहीं। बहुत संभव है कि वह अब संसारमें न हो। किंतु वह इस दुष्कल्पनाको विचारसे दबाते रहते थे। शीतलाके विपत्तिकी कथा सुनकर भी वह उसकी सहायता करते हुए डरते थे। कौन जाने, वासना यही वेष रखकर मेरे विचार और विवेकपर कुठाराघात करना चाहती हो। अंतको लालसाकी कपट लीला उन्हें भुलावा दे ही गई। वह शीतला के घर उसका हाल चाल पूछने गये। मनमें तर्क किया—यह कितना घोर अन्याय है कि एक अबला ऐसे संकटमें हो, और मै उसकी बात भी न पूछूँ? पर वहाँ से लौटे, तो बुद्धि और विवेककी रस्सियाँ टूट गई थीं, और नौका मोह और वासनाके अपार सागरमें डुबकियाँ खा रही थी। आह! यह मनोहर छवि! यह अनुपम सौंदर्य!

एक क्षणमें उन्मत्तोंकी भाँति बकने लगे—यह प्राण और यह शरीर तेरी भेंट करता हूं। संसार हँसेगा, हँसे। महापाप है, हो। कोई चिंता नहीं। इस स्वर्गीय-आनंदसे मैं अपनेको वंचित नही कर सकता? वह मुझसे भाग नहीं सकती इस हृदयको छातीसे निकालकर उसके पैरोंपर रख दूँगा। विमल? मर गया। नही मरा, तो अब मरेगा। पाप क्या है। बात नही। कमल कितना कोमल, कितना प्रफुल्ल, कितना

ललित है। क्या उसके अधरों—

अकस्मात् वह ठिठक गये, जैसे कोई भूली हुई बात याद आ जाय। मनुष्यमें बुद्धिके अंतर्गत एक अज्ञात बुद्धि होती है। जैसे रण-क्षेत्रमें हिम्मत हारकर भागनेवाले सैनिकोंको किसी गुप्तस्थानसे आनेवाली कुमक सँभाल लेती है, वैसे ही इस अज्ञात बुद्धिने सुरेशको सचेत कर दिया। वह सँभल गये। ग्लानिसे उनकी आंखें भर आईं। वह कई मिनट तक किसी दंडित क़ैदीकी भाँति क्षुब्ध खड़े सोचते रहे। फिर विजय-ध्वनिसे कह उठे—"कितना सरल है। इस विकारके हाथीको सिंहसे नहीं, चिउटीसे मारूँगा। शीतलाको एक बार 'बहन' कह देनेसे ही यह सब विकार शांत हो जायगा। शीतला! बहन! मैं तेरा भाई हूं!"

उसी क्षण उन्होंने शीतलाको पत्र लिखा—"बहन, तुमने इतने कष्ट झेले; पर मुझे खबर तक न दी! मैं कोई ग़ैर न था। मुझे इसका दुःख है। ख़ैर, अब ईश्वरने चाहा, तो तुम्हें कष्ट न होगा।" इस पत्रके साथ उन्होंने नाज और रुपये भेजे।

शीतलाने उत्तर दिया—"भैया, क्षमा करो। जब तक जिऊँगी, तुम्हारा यश गाऊँगी। तुमने मेरी डूबती नाव पार लगा दी।"

(५)

कई महीने बीत गये। संध्याका समय था। शीतला अपनी मैनाको चारा चुगा रही थी। उसे सुरेश नेपालसे

उसीके वास्ते लाए थे। इतनेमें सुरेश आकर आँगनमें बैठ गए

शीतलने पूछा--"कहाँसे आते हो भैया ?"

सुरेश--"गया था ज़रा थाने। कुछ पता नहीं चला। रंगूनमें पहले कुछ पता मिला था। बादको मालूम हुआ कि वह कोई और आदमी है। क्या करूँ ? इनाम और बढ़ा दूँ ?"

शीतला--"तुम्हारे पास रुपये बढ़े हैं, फूँको। उनकी इच्छा होगी, तो आप ही आवेंगे।"

सुरेश--"एक बात पूछूँ, बताओगी ? किस बातपर तुमसे रूठे थे ?"

शीतला--"कुछ नहीं. मैंने यही कहा कि मुझे गहने बनवा दो। कहने लगे, मेरे पास है क्या ? मैंने कहा (लजाकर), तो ब्याह क्यों किया ? बस, बातों ही बातों तकरार हो गई।"

इतनेमें शीतलाकी सास आ गई। सुरेशने शीतलाकी मा और भाइयोंको उनके घर पहुँचा दिया था, इसलिये यहाँ अब शांति थी। सासने बहूकी बात सुन ली थी। कर्कश स्वरसे बोली—"बेटा, तुमसे क्या परदा है यह महारानी देखने ही को गुलाबका फूल हैं, अंदर सब काँटे हैं। यह अपने बनाव सिंगारके आगे विमलकी बात ही न पूछती थी। बेचारा इस पर जान देता था ; पर इसका मुँह ही न सीधा होता था। प्रेम तो इसे छू नहीं गया। अंतको उसे देशसे निकालकर इसने दम लिया "

शीतलाने रुष्ट होकर कहा—"क्या वही अनोखे धन कमाने घरसे निकले हैं ? देश-विदेश जाना मर्दोंका काम ही है।"

सुरेश—"यूरोपमें तो धनभोगके सिवा स्त्री-पुरुष में कोई संबंध ही नहीं होता। बहनने योरपमें जन्म लिया होता तो हीरे जवाहिरसे जगमगाती होतीं। शीतला, अब तुम ईश्वर से यही कहना कि सुन्दरता देते हो, योरपमें जन्म दो।"

शीतलाने व्यथित होकर कहा—"जिनके भाग्यमें लिखा है, वे यहीं सोनेसे लदी हुई हैं। मेरी भाँति सभीके करम थोड़े ही फूट गए हैं।"

सुरेशसिंह को ऐसा जान पड़ा कि शीतलाकी मुखकांति मलिन हो गई है। पति-वियोगमें भी गहनोंके लिये इतनी लालायित है! बोले—"अच्छा, मैं तुम्हें गहने बनवा दूँगा।"

यह वाक्य कुछ अपमानसूचक स्वरमें कहा गया था; पर शीतलाकी आँखें आनंदसे सजल हो आईं, कंठ गद्‌गद हो गया। उसके हृदय-नेत्रोंके सामने मंगलाके रत्न-जटित आभूषणोंका चित्र खिंच गया। उसने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टिसे सुरेश को देखा। मुँहसे कुछ न बोली; पर उसका प्रत्येक अंग कह रहा था—"मैं तुम्हारी हूं!"

(६)

कोयल आमकी डालियोंपर बैठकर, मछली शीतल निर्मल जलमें क्रीड़ा करके और मृग-शावक विस्तृत हरियालियोंमें छलाँगें भरकर इतने प्रसन्न नहीं होते, जितना मंगलाके आभू-

षणोंको पहनकर शीतला प्रसन्न हो रही है। उसके पैर ज़मीनपर नहीं पड़ते। वह आकाशमें विचरती हुई जान पड़ती है। वह दिन-भर आइनेके सामने खड़ी रहती है; कभी केशोंको सँवारती है, कभी सुरमा लगाती है। कुहरा फट गया है; और निर्मल स्वच्छ चाँदनी निकल आई है। वह घरका एक तिनका भी नहीं उठाती। उसके स्वभावमें एक विचित्र गर्वका संचार हो गया है।

लेकिन शृंगार क्या है? सोई हुई काम-वासनाको जगानेका घोर नाद, उद्दीपनाका मंत्र। शीतला जब नख-शिख से सजकर बैठती है तो उसे प्रबल इच्छा होती है कि मुझे कोई देखे। वह द्वारपर आकर खड़ी हो जाती है। गाँवकी स्त्रियोंकी प्रशंसासे उसे संतोष नहीं होता। गाँवके पुरुषों को वह शृंगार-रस-विहीन समझती है। इसलिये सुरेसिंहको बुलाती है। पहले वह दिनमें एक बार आ जाते थे; अब शीतलाके बहुत अनुनय-विनय करनेपर भी नहीं आते।

पहर रात गई थी। घरोंके दीपक बुझ चुके थे। शीतलाके घरमें दीपक जल रहा था। उसने कुँअर साहबके बग़ीचेसे बेलेके फूल मँगवाए थे, और बैठी हार गूँथ रही थी—अपने लिये नहीं, सुरेशके लिये। प्रेमके सिवा एहसानका बदला देनेके लिये उसके पास और था ही क्या?

एकाएक कुत्तोंके भूँकनेकी आवाज़ सुनाई दी, और दम-भरमें विमलसिंहने मकानके अंदर क़दम रक्खा। उनके एक

हाथमें संदूक थी,दूसरे हाथमें एक गठरी। शरीर दुर्बल, कपड़े मैले, दाढ़ीके बाल बढ़े हुए, मुख पीला; जैसे कोई क़ैदी जेलसे निकलकर आया हो दीपकका प्रकाश देखकर वह शीतला के कमरेकी तरफ़ चले। मैना पिंजरेमें तड़फड़ाने लगी। शीतलाने चौंककर सिर उठाया। घबराकर बोली—"कौन?" फिर पहचान गई। तुरंत फूलोंको एक कपड़ेसे छिपा दिया। उठ खड़ी हुई, और सिर झुकाकर पूछा—"इतनी जल्दी सुध ली ."

विमलने कुछ जवाब न दिया। विस्मित हो-होकर कभी शीतलाको देखता और कभी घरको। मानो किसी नए संसारमें पहुँच गया है। यह वह अध-खिला फूल न था; जिसकी पँखड़ियाँ अनुकूल जल-वायु न पाकर सिमट गई था। यह पूर्ण विकसित कुसुम था—ओसके जलकणोंसे जगमगाता और वायुके झोंकोंसे लहराता हुआ। विमल उसकी सुंदरता पर पहले भी मुग्ध था। पर यह ज्योति वह अग्नि-ज्वाला थी; जिससे हृदयमें ताप और आँखोंमें जलन होती थी। ये आभूषण, ये वस्त्र, यह सजावट! उसके सिरमें एक चक्कर-सा आ गया। ज़मीनपर बैठ गया। इस सूर्यमुखीके सामने बैठते हुए उसे लज्जा आती थी। शीतला अभी तक स्तंभित खड़ी थी। वह पानी लाने नहीं दौड़ी, उसने पतिके चरण नहीं धोए, उसके पंखा तक नहीं झला। वह हतबुद्धि-सी हो गई थी। उसने कल्पनाओंकी कैसी सुरम्य वाटिका लगाई थी! उस पर

तुषार पड़ गया ! वास्तवमें इस मलिन-वदन, अर्ध-नग्न पुरुष से उसे घृणा हो रही थी। यह घरका ज़मींदार विमल न था। वह मज़दूर हो गया था। मोटा काम मुखाकृतिपर असर डाले विना नहीं रहता। मज़दूर सुंदर वस्त्रोंमें भी मज़दूर ही रहता है।

सहसा विमलकी मां चौंकी। शीतलाके कमरेमें आई, तो विमलको देखते ही मातृ स्नेहसे विह्वल होकर उसे छातीसे लगा लिया। विमलने उसके चरणोंपर सिर रक्खा। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी गरम-गरम बूँदें निकल रही थीं। मा पुलकित हो रही थी। मुखसे बात न निकलती थी।

एक क्षणमें विमलने कहा—"अम्मा !"

कंठ-ध्वनिने उसका आशय प्रकट कर दिया।

मा ने प्रश्न समझकर कहा—"नहीं बेटा, यह बात नहीं है।"

विमल—"यह देखता क्या हूं ?"

मा—"स्वभाव ही ऐसा है, तो कोई क्या करे ?"

विमल—"सुरेशने मेरा हुलिया क्यों लिखाया था ?"

मा—"तुम्हारी खोज लेनेके लिये। उन्होंने दया न की होती, तो आज घरमें किसीको जीता न पाते।"

विमल—" बहुत अच्छा होता।"

शीतलाने ताने से कहा—" अपनी ओरसे तो तुमने सबको मार ही डाला था। फूलोंकी सेज नहीं बिछा गए थे !"

विमल—"अब तो फूलोंकी सेज ही बिछी हुई देखता हूं।"

शीतला—"तुम किसीके भाग्यके विधाता हो?"

विमलसिंह उठकर क्रोधसे कॉंपता हुआ बोला—"अम्मा, मुझे यहाँसे ले चलो। मैं इस पिशाचिनीका मुँह नहीं देखना चाहता। मेरी आँखोंमें खून उतरता चला आता है। मैंने इस कुल-कलंकिनीके लिये तीन साल तक जो कठिन तपस्या की है, उससे ईश्वर मिल जाता; पर इसे न पा सका!"

यह कहकर वह कमरेसे निकल आया, और माके कमरे में लेट रहा। मा ने तुरंत उसका मुँह और हाथ-पैर धुलाए। वह चूल्हा जलाकर पूरियाँ पकाने लगी। साथ-साथ घरकी विपत्ति-कथा भी कहती जाती थी। विमलके हृदयमें सुरेशके प्रति जो विरोधाग्नि प्रज्वलित हो रही थी, वह शांत हो गई; लेकिन हृदय-दाहने रक्त-दाहका रूप धारण किया। ज़ोरका बुख़ार चढ़ आया। लंबी यात्राकी थकन और कष्ट तो था ही, बरसोंके कठिन श्रम और तपके बाद यह मानसिक संताप और भी दुस्सह हो गया।

सारी रात वह अचेत पड़ा रहा। मां बैठी पंखा झलती और रोती थी। दूसरे दिन भी वह बेहोश पड़ा रहा। शीतला उसके पास एक क्षणके लिये भी न आई। इन्होंने मुझे कौन सोनेके कौर खिला दिए हैं, जो इनकी धौंस सहूँ। यहां तो 'जैसे कंता घर रहे,वैसे रहे बिदेस।' किसीकी फूटी कौड़ी नहीं जानती। बहुत ताव दिखाकर तो गए थे। क्या लाद लाए?"

संध्याके समय सुरेशको ख़बर मिली। तुरंत दौड़े हुए

आए। आज दो महीनेके बाद उन्होंने इस घरमें क़दम रक्खा। विमलने आंखें खोलीं, पहचान गया। आँखोंसे आँसू बहने लगे। सुरेशके मुखारविन्दपर दयाकी ज्योति झलक रही थी। विमलने उनके बारेमें जो अनुचित संदेह किया था; उसके लिये वह अपनेको धिक्कार रहा था।

शीतलाने ज्यों ही सुना कि सुरेशसिंह आए हैं, तुरंत शीशेके सामने गई; केश छिटका लिए, और विषादकी मूर्ति बनी हुई विमलके कमरेमें आई। कहाँ तो विमलकी आँखें बंद थीं, मूर्च्छित-सा पड़ा था, कहां शीतलाके आते ही आँखें खुल गईं। अग्निमय नेत्रोंसे उसकी ओर देखकर बोला—"अभी आई है? आजके तीसरे दिन आना। कुँअर साहबसे उस दिन फिर भेंट हो जायगी।"

शीतला उलटे पाँव चली गई। सुरेशपर घड़ों पानी पड़ गया। मनमें सोचा, कितना रूप-लावण्य है; पर कितना विषाक्त! हृदयकी जगह केवल शृंगार-लालसा!

आतंक बढ़ता ही गया। सुरेशने डाक्टर बुलवाए। पर मृत्यु-देवने किसी की न मानी। उनका हृदय पाषाण है। किसी भांति नहीं पसीजता। कोई अपना हृदय निकालकर रख दे, आँसुओंकी नदी बहा दे; पर उन्हें दया नहीं आती। बसे हुए घरको उजाड़ना, लहराती हुई खेतीको सुखाना उनका काम है। और, उनकी निर्दयता कितनी विनोदमय है! वह नित्य नए रूप बदलते रहते हैं। कभी दामिनी बन जाते हैं, तो कभी

पुष्प-माला। कभी सिंह बन जाते हैं, तो कभी सियार। कभी अग्निके रूपमें दिखाई देते हैं, तो कभी जलके रूपमें।

तीसरे दिन, पिछली रातको, विमलकी मानसिक पीड़ा और हृदय-तापका अंत हो गया। चोर दिनको कभी चोरी नहीं करता। यमके दूत प्रायः रात हीको सबकी नजरें बचाकर आते हैं, और प्राण-रत्नको चुरा ले जाते हैं। आकाशके फूल मुरझाए हुए थे। वृक्षसमूह स्थिर थे: पर शोकमें मग्न, सिर झुकाए हुए। रात शोकका नाग्नरूप है। रात मृत्युका क्रीड़ाक्षेत्र है। उसी समय विमलके घरसे आर्त-नाद सुनाई दिया--वह नाद, जिसे सुननेके लिये मृत्यु-देव विकल रहते हैं।

शीतला चौंक पड़ी, और घबराई हुई मरण-शय्याकी ओर चली। उसने मृतदेहपर निगाह डाली, और भय-भीत होकर एक पग पीछे हट गई। उसे जान पड़ा, विमलसिंह उसकी ओर अत्यंत तीव्र दृष्टिसे देख रहे हैं। बुझे हुए दीपकमें उसे भयंकर ज्योति दिखाई पड़ी। वह मारे भयके वहां ठहर न सकी। द्वारसे निकल ही रही थी कि सुरेशसिंहसे भेंट हो गई। कातरस्वरमें बोली—"मुझे यहां डर लगता है।" उसने चाहा कि रोती हुई इनके पैरोंपर गिर पड़ूं; पर वह अलग हट गए।

(७)

जब किसी पथिकको चलते-चलते ज्ञात होता है कि मैं रास्ता भूल गया हूं, तो वह सीधे रास्तेपर आनेके लिये बड़े

वेगसे चलता है। झुंझलाता है कि मैं इतना अस्नावधान क्यों हो गया? सुरेश भी अब शांति-मार्गपर आनेके लिये विकल हो गए। मंगलाकी स्नेहमयी सेवाएँ याद आने लगी। हृदय में वास्तविक सौंदर्योपासनाका भाव उदय हुआ। उसमें कितना प्रेम, कितना त्याग, कितनी क्षमा थी! उसकी अतुल पति-भक्तिको याद करके कभी-कभी वह तड़प जाते। आह! मैंने घोर अत्याचार किया। ऐसे उज्ज्वल रत्नका आदर न किया। मैं यहीं जड़वत पड़ा रहा, और मेरे सामने ही लक्ष्मी घरसे निकल गई! मंगलाने चलते-चलते शीतलासे जो बातें कही थीं, वे उन्हें मालूम थीं। पर उन बातोंपर विश्वास न होता था। मंगला शांतिप्रकृतिकी थी। वह इतनी उद्दंडता नहीं कर सकती। उसमें क्षमा थी। वह इतना विक्षेप नहीं कर सकती उनका मन कहता था कि जीती है, और कुशलमें है। उसके मैकेवालोंको कई पत्र लिखे। पर वहाँ व्यंग्य और कटुवाक्योंके सिवा और क्या रक्खा था? अंतको उन्होंने लिखा—"अब उस रत्नकी खोजमें स्वयं जाता हूं। या तो लेकर ही आऊँगा, या कहीं मुहमें कालिख लगाकर डूब मरूँगा।"

इस पत्रका उत्तर आया—"अच्छी बात है, जाइए, पर यहांसे होते हुए जाइएगा। यहाँसे भी कोई आपके साथ चला जायगा।"

सुरेशसिंहको इन शब्दोंमें आशाकी झलक दिखाई दी। उसी दिन प्रस्थान कर दिया। किसीको साथ नहीं लिया।

ससुरालमें किसीने उनका प्रेममय स्वागत नहीं किया। सभीके मुँह फूले हुए थे। ससुरजीने तो उन्हें पति-धर्मपर एक लंबा उपदेश दिया।

रातको जब वह भोजन करके लेटे, तो छोटी साली आकर बैठ गई, और मुसकिराकर बोली—"जीजाजी, कोई सुंदरी अपने रूप-हीन पुरुषको छोड़ दे, उसका अपमान करे, तो आप उसे क्या कहेंगे?"

सुरेश (गंभीरस्वरसे)—"कुटिला!"

साली—"और ऐसे पुरुषको, जो अपनी रूप-हीन स्त्री को त्याग दे?"

सुरेश —"पशु?"

साली—"और जो पुरुष विद्वान् हो?"

सुरेश—"पिशाच!"

साली (हँसकर)—"तो मैं भागती हूं। मुझे आपसे डर लगता है।"

सुरेश –'पिशाचोंका प्रायश्चित्त भी तो स्वीकार हो जाता है।"

साली —"शर्त यह है कि प्रायश्चित्त सच्चा हो।"

सुरेश—"यह तो वह अंतर्यामी ही जान सकते हैं।"

साली—सच्चा होगा, तो उसका फल भी अवश्य मिलेगा। मगर दीदीको लेकर इधर ही से लौटिएगा।

सुरेशकी आशा-नौका फिर डगमगाई। गिड़गिड़ाकर

बोले—"प्रभा, ईश्वरके लिये मुझपर दया करो मैं बहुत दुखी हूं। साल-भरसे ऐसा कोई दिन नही गया कि मैं रोकर न सोया हूं।"

प्रभाने उठकर कहा—"अपने किएका क्या इलाज? जाती हूं, आराम कीजिये।"

एक क्षणमें शीलाकी माता आकर बैठ गई, और बोली—"बेटा, तुमने तो बहुत पढ़ा लिखा है, देस-विदेस घूम आए हो, सुंदर बननेकी कोई दवा कहीं नहीं देखी?"

सुरेशने विनय-पूर्वक कहा—"माताजी, अब ईश्वरके लिए और लज्जित न कीजिए।"

माता—"तुमने तो मेरी प्यारी बेटीके प्राण ले लिए! मैं क्या तुम्हें लज्जित करनेसे भी गई! जी मे तो था कि ऐसी-ऐसी सुनाऊँगी कि तुम भी याद करोगे:पर मेरे मेहमान हो, क्या जलाऊँ? आराम करो।"

सुरेश आशा और भयकी दशामें पड़े करवटें बदल रहे थे कि एकाएक द्वारपर किसीने धीरे से कहा—"जाती क्यों नही, जागते तो है। "किसीने जवाब दिया—"लाज आती है।"

सुरेशने आवाज़ पहचानी। प्यासेको पानी मिल गया एक क्षणमें मंगला उनके सम्मुख आई, और सिर झुकाकर खड़ी हो गई। सुरेशको उसके मुखपर एक अनूठी छवि दिखाई दी, जैसे कोई रोगी स्वास्थ्य-लाभ कर चुका हो।

रूप वही था, पर आँखे और थीं।

राज्य-भक्त

(१)

संध्याका समय था। लखऊके बादशाह नासिरुद्दीन अपने मुसाहबों और दरबारियोंके साथ बाग़की सैर कर रहे थे। उनके सिरपर रत्न-जटित मुकुटकी जगह अंगरेज़ी टोपी थी। वस्त्र भी अंगरेज़ी ही थे। मुसाहबोंमें पाँच अंगरेज थे। उनमेंसे एकके कंधेपर सिर रखकर बादशाह चल रहे थे। तीन-चार हिंदुस्तानी भी थे। उनमें एक राजा बख्तावरसिंह थे। वह बादशाही सेनाके अध्यक्ष थे। उन्हें सब लोग "जेनरल" कहा करते थे। वह अधेड़ आदमी थे। शरीर खूब गठा हुआ था। लखनवी पहनाव उनपर बहुत सजता था। मुखसे विचारशीलता झलक रही थी। दूसरे महाशयका नाम रोशनुद्दौला था। यह राज्यके प्रधान मंत्री थे। बड़ी-बड़ी मूछें और नाटा डील था; जिसे ऊँचा करनेके लिये वह तनकर चलते थे। नेत्रोंसे गर्व टपक रहा था। शेष लोगोंमें एक कोतवाल था, और दो बादशाहके रक्षक। यद्यपि अभी १६ वीं शताब्दीका आरंभ ही था, पर बादशाहने अंगरेज़ी रहन सहन अख्तियार कर ली थी। भोजन भी प्रायः अँगरेज़ी ही करते थे। अँगरेज़ोंपर उनका असीम विश्वास था। वह सदैव उनका पक्ष लिया करते थे।

मजाल न थी कि कोई बड़े-से-बड़ा राजा या राज-कर्मचारी किसी अँगरेजसे बराबरी करनेका साहस कर सके।

अगर किसीमें यह हिम्मत थी, तो वह राजा बख्तारसिंह थे उनसे कंपनीका बढ़ता हुआ अधिकार न देखा जाता था; कंपनीकी उस सेनाकी संख्या, जो उसने अवधके राज्यकी रक्षाके लिये लखनऊमें नियुक्त की थी, दिन-दिन बढ़ती जाती थी। उसी प्रमाणसे सेनाका व्यय भी बढ़ रहा था। राज-दरबार उसे चुका न सकनेके कारण कंपनीका ऋणी होता जाता था। बादशाही सेनाकी दशा हीन-से-हीनतर होती जाती थी। उसमें न संगठन था, न बल। बरसों तक सिपाहियोंका वेतन न मिलता था। शस्त्र सभी पुराने ढंगके; वरदी फटी हुई। क़वायदका नाम नहीं। कोई उनका पूछनेवाला न था। अगर राजा बख्तावरसिंह वेतन-वृद्धि या नए शस्त्रोंके संबंधमें कोई प्रयत्न करते, तो कंपनीका रेज़िडेंट उसका घोर विरोध और राज्यपर विद्रोहात्मक शक्ति-संचारका दोषारोपण करता था। उधरसे डाँट पड़ती, तो बदशाह अपना गुस्सा राजा साहबपर उतारते। बादशाहके सभी अँगरेज़ मुसाहब राजा साहबसे शंकित रहते और उनकी जड़ खोदने का प्रयास करते थे। पर वह राज्यका सेवक एक ओरसे अवहेलना और दूसरी ओर से घोर विरोध सहते हुए अपने कर्तव्यका पालन करता जाता था। मज़ा यह कि सेना भी उनसे संतुष्ट न थी। सेनामें अधिकांश लखनऊके शोहदे

और गुंडे भरे हुए थे। राजा साहब जब उन्हें हटाकर अच्छे-अच्छे जवानोंकी भरती करनेकी चेष्टा करते, तो सारी सेना में हाहाकार मच जाता। लोगोंको शंका होती कि यह राजपूतोंकी सेना बनाकर कहीं राज्य ही पर तो हाथ नहीं बढ़ाना चाहते? इसलिये मुसलमान भी उनसे बदगुमान रहते थे। राजा साहबके मनमें बार-बार प्रेरणा होती कि इस पदको त्यागकर चले जायें; पर यह भय उन्हें रोकता था कि मेरे हटते ही अँगरेज़ोंकी बन आवेगी, और बादशाह उनके हाथोंमें कठपुतली बन जायँगे, रही-सही सेनाके साथ अवध राज्यका अस्तित्व भी मिट जायगा। अतएव, इतनी कठिनाइयोंके होते हुए भी, चारों ओर वैर-विरोधसे घिरे होनेपर भी, वह अपने पदसे हटनेका निश्चय न कर सकते थे। सबसे कठिन समस्या यह थी कि रोशनुद्दौला भी राजा साहबसे खार खाता था। उसे सदैव शंका रहती थी कि यह मराठोंसे मैत्री करके अवध-राज्यको मिटाना चाहते हैं। इसलिये वह भी राजा साहबके प्रत्येक कार्यमें बाधा डालता रहता था। उसे अब भी आशा थी कि अवधका मुसलमानी राज्य अगर जीवित रह सकता है, तो अँगरेज़ोंके संरक्षणमें; अन्यथा वह अवश्य हिन्दुओंकी बढ़ती हुई शक्तिका ग्रास बन जायगा।

वास्तवमें बख़्तावरसिंहकी दशा अत्यंत करुण थी। वह अपनी चतुराईसे जिह्वाकी भाँति दाँतोंके बीचमें पड़े हुये अपना काम किये जाते थे। यों तो वह स्वभावसे अक्खड़ थे, पर अपना

काम निकालनेके लिये मधुरता और मृदुलता, शील और विनयका आवाहन करते रहते थे। इससे उनके व्यवहारमें कृत्रिमता आ जाती थी, और वह शत्रुओंको उनकी ओरसे और भी सशंक बना देती थी।

बादशाहने एक अँगरेज-मुसाहेबसे पूछा—तुमको मालूम है, मैं तुम्हारी कितनी ख़ातिर करता हूं? मेरी सल्तनतमें किसी की मजाल नहीं कि वह किसी अँगरेज़को कड़ी निगाहोंसे देख सके।

अँगरेज़-मुसाहबने सिर झुकाकर जवाब दिया—हम हुजूरकी इस मिहरबानीको कभी नहीं भूल सकते।

बा०—इमामहुसैनकी क़सम, अगर यहां कोई आदमी तुम्हें तकलीफ़ दे, तो मैं उसे फ़ौरन् ज़िंदा दीवारमें चुनवा दूं।

बादशाहकी आदत थी कि वह बहुधा अपनी अँगरेज़ी टोपी हाथमें लेकर उसे उंगलीपर नचाने लगते थे। रोज़ नचाते-नचाते टोपीमें उंगलीका घर हो गया था। इस समय जो उन्होंने टोपी उठाकर उंगलीपर रक्खी, तो टोपीमें छेद हो गया। बादशाहका ध्यान अँगरेज़ोंकी तरफ़ था। बख़्ता वरसिंह बादशाहके मुंहसे ऐसी बातें सुनकर कबाब हुए जाते थे। उक्त कथनमें कितनी खुशामद, कितनी नीचता और अवधकी प्रजा तथा राजाओंका कितना अपमान था! और लोग तो टोपीका छिद्र देखकर हंसने लगे, पर राजा बख़्ता-वरसिंहके मुंहसे अनायास निकल गया—हुज़ूर, ताजमें

सूराख़ हो गया !

राजा साहबके शत्रुओंने तुरंत कानोंपर उँगलियाँ रख लीं। बादशाहको भी ऐसा मालूम हुआ कि राजाने मुझपर व्यंग्य किया। उनके तेवर बदल गये। अँगरेज़ों और अन्य सभासदोंने इस प्रकार काना-फूसी शुरू की, जैसे कोई महान् अनर्थ हो गया। राजा साहबके मुँहसे अनर्गल शब्द अवश्य निकले थे। इसमें कोई संदेह नहीं था। संभव है, उन्होंने जान-बूझकर व्यंग न किया हो, उनके दुःखी हृदयने साधारण चेतावनीको यह तीव्र रूप दे दिया हो, पर बात बिगड़ ज़रूर गई थी। अब उनके शत्रु उन्हें कुचलनेके ऐसे सुन्दर अवसरको हाथसे क्यों जाने देते?

राजा साहबने सभाका यह रंग देखा, तो ख़ून सर्द हो गया। समझ गये, आज शत्रुओंके पंजेमें फँस गया, और ऐसा बुरा फँसा कि भगवान् ही निकालें, तो निकल सकता हूं।

बादशाहने कोतवालसे, लाल आंखें करके, कहा—इस नमकहरामको क़ैद कर लो, और इसी वक्त इसका सिर उड़ा दो। इसे मालूम हो जाय कि बादशाहोंसे बेअदबी करने का क्या नतीजा होता है।

कोतवालको सहसा 'जेनरल' पर हाथ बढ़ानेकी हिम्मत न पड़ी। रोशनुद्दौलाने उससे इशारेसे कहा—खड़े सोचते क्या हो, पकड़ लो, नहीं तो तुम भी इसी आगमें जल जाओगे।

तब कोतवालने आगे बढ़कर बख़्तावरसिंहको गिरफ्तार

कर लिया। एक क्षणमें उनकी मुश्कें कस दी गईं। लोग उन्हें चारों ओरसे घेरकर क़त्ल करने ले चले।

बादशाहने मुसाहबोंसे कहा—मैं भी वहीं चलता हूं। ज़रा देखूँगा कि नमकहरामोंकी लाश क्योंकर तड़पती है। कितनी घोर पशुता थी! यही प्राणी ज़रा देर पहले बादशाहका विश्वास-पात्र था!

एकाएक बादशाहने कहा—पहले इस नमकहरामकी ख़िलअत उतार लो। मैं नहीं चाहता कि मेरी ख़िलअतकी बेइज़्ज़ती हो।

किसकी मजाल थी, जो ज़रा भी जबान हिला सके। सिपाहियोंने राजा साहबके वस्त्र उतारने शुरू किये। दुर्भाग्य-वश उनकी एक जेबसे पिस्तौल निकल आई। उसकी दोनों नालियाँ भरी हुई थीं। पिस्तौल देखते ही बादशाहकी आँखोंसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। बोले—क़सम है हजरत इमाम-हुसैनकी, अब इसकी जाँबख़्शी नहीं करूंगा। मेरे साथ भरी हुई पिस्तौलकी क्या ज़रूरत! ज़रूर इसकी नीयतमें फ़ितूर था। अब मैं इसे कुत्तोंसे नुचवाऊंगा। (मुसाहबोंकी तरफ देखकर) देखी तुम लोगोंने इसकी नीयत! मैं अपनी आस्तीन में सांप पाले हुये था। आप लोगोंके ख़यालमें इसके पास भरी हुई पिस्तौलका निकलना क्या माने रखता है?

अंगरेज़ोंको केवल राजा साहबको नीचा दिखाना मंजूर था। वे उन्हे अपना मित्र बनाकर जितना काम निकाल सकते

थे उतना उनके मारे जानेसे नहीं। इसीसे एक अँगरेज़-मुसाहबने कहा— मुझे तो इसमें कोई ग़ैरमुनासिब बात नहीं मालूम होती। जेनरल आपका बाडी गार्ड (रक्षक) है। उसे हमेशा हथियार-बंद रहना चाहिये। ख़ासकर जब आपकी ख़िदमतमें हो। नहीं मालूम किस वक्त इसकी जरूरत आ पड़े।

दूसरे अँगरेज़-मुसाहबोंने भी इस विचारकी पुष्टि की। बादशाहके क्रोधकी ज्वाला कुछ शांत हुई। अगर ये ही बातें किसी हिन्दुस्तानी मुसाहेबकी जबानसे निकली होती, तो उसकी जानकी ख़ैरियत न थी कदाचित् अँगरेज़ोंको अपनी न्याय-परताका नमूना दिखानेहीके लिये उन्होंने यह प्रश्न किया था। बोले—क़सम हज़रत इमामकी, तुम सबके सब शेरके मुँहसे उसका शिकार छीनना चाहते हो! पर मैं एक न मानूँगा, बुलाओ कप्तान साहबको। मैं उनसे यही सवाल करता हूं। अगर उन्होंने भी तुम लोगोंके ख़यालकी ताईद की, तो इसको जान लूँगा। और, अगर उनकी राय इसके ख़िलाफ़ हुई, तो इस मक्कारको इसी वख्त जहन्नुम भेज दूँगा। मगर ख़बरदार, कोई उनकी तरफ किसी तरह का इशारा न करे; वर्ना मैं ज़रा भी रू-रिआयत न करूँगा। सबके सब सिर झुकाये बैठे रहें।

कप्तान साहब थे तो राजा साहबके आउरन्दे, पर इन दिनों बादशाहकी उनपर विशेष कृपा थी। वह उन सच्चे राज-भक्तोंमें थे, जो अपनेको राजाका नहीं, राज्यका सेवक सम

झुकते हैं। वह दरबारसे अलग रहते थे। बादशाह उनके कामों से बहुत संतुष्ट थे। एक आदमी तुरंत कप्तान साहबको बुला लाया। राजा साहबकी जान उनकी मुट्ठीमें थी। रोशनुद्दौला को छोड़कर ऐसा शायद एक व्यक्ति भी न था, जिसका हृदय आशा और निराशासे न धड़क रहा हो। सब मनमें भगवानसे यही प्रार्थना कर रहे थे कि कप्तान साहब किसी तरहसे इस समस्याको समझ जायं। कप्तान साहब आए उड़ती हुई दृष्टिसे सभाकी ओर देखा। सभीकी आंखें नीचे झुकी हुई थीं। वह कुछ अनिश्चित भावसे सिर झुकाकर खड़े हो गये।

बादशाहने पूछा—मेरे मुसाहबोंको अपने जेबमें भरी हुई पिस्तौल रखना मुनासिब है या नहीं?

दरबारियोंकी नीरवता, उनके आशंकित चेहरे, और उनकी चिंता-युक्त अधीरता देखकर कप्तान साहबको वर्तमान समस्याकी कुछ टोह मिल गई। वह निर्भीकभावसे बोले—हुजूर, मेरे ख़यालमें तो यह उनका फ़र्ज़ है। बादशाहके दोस्त-दुशमन सभी होते हैं। अगर मुसाहब लोग उनकी रक्षाका भार न लेंगे, तो कौन लेगा? उन्हें सिर्फ़ पिस्तौल ही नहीं, और भी छिपे हुए हथियारोंसे लैस रहना चाहिए। न-जाने कब हथियारोंकी ज़रूरत आ पड़े, तो वह ऐन वक्तपर कहाँ दौड़ते फिरेंगे।

राजा साहबके जीवनके दिन बाक़ी थे। बादशाहने निराश

होकर कहा—रोशन, इसे क़त्ल मत करना, काल कोठरीमें क़ैद कर दो। मुझसे पूछे बग़ैर इसे दाना पानी कुछ न दिया जाय। जाकर इसके घरका सारा माल-असबाब ज़ब्त कर लो, और सारे ख़ानदानको जेलमें बन्द करा दो। इसके मकानकी दीवारें ज़मीं-दोज़ करा देना। घरमें एक फूटी हाँड़ी भी न रहने पावे।

इससे तो यही कहीं अच्छा था कि राजा साहब ही की जान जाती। ख़ानदानकी बेइज़्ज़ती तो न होती, महिलाओंका अपमान तो न होता, दरिद्रताकी चोटें तो न सहनी पड़तीं! विकारको निकलनेका मार्ग नहीं मिलता, तो वह सारे शरीरमें फैल जाता है। राजाके प्राण तो बचे, पर सारे ख़ानदानको विपत्तिमें डालकर!

रोशनुद्दौलाको मुंह-माँगी मुराद मिली। उसकी ईर्षा कभी इतनी सन्तुष्ट न हुई थी। वह मगन था कि आज वह काँटा निकल गया, जो बरसोंसे हृदयमें चुभा हुआ था। आज हिन्दू-राज्यका अन्त हुआ। अब मेरा सिक्का चलेगा। अब मैं समस्त राज्यका विधाता हूँगा। संध्यासे पहले ही राजा साहबकी सारी स्थावर और जङ्गम संपत्ति कुर्क़ हो गई। वृद्ध माता-पिता, सुकोमल रमणियाँ, छोटे-छोटे बालक, सबके-सब जेलमें क़ैद कर दिए गए। कितनी करुण दशा थी! वे महिलाएँ, जिनपर कभी देवताओंकी भी निगाह न पड़ी थी, खुले मुँह, नंगे पैर, पाँव घसीटती, शहरकी भरी हुई सड़कों और

गलियोंसे होती हुई, सिर झुकाए, शोक-चित्रोंकी भाँति, जेलकी तरफ़ चली जाती थीं। सशस्त्र सिपाहियोंका एक बड़ा दल साथ था। जिस पुरुषके एक ईशारे पर कई घंटे पहले सारे शहरमें हलचल मच जाती, उसीके ख़ानदानकी यह दुर्दशा!

(२)

राजा बख़्तावरसिंहको बंदी-गृहमें रहते हुए एक मास बीत गया। वहाँ उन्हें सभी प्रकारके कष्ट दिए जाते थे। यहाँ तक कि भोजन भी यथासमय न मिलता था। उनके परिवार को भी असह्य यातनाएँ दी जाती थीं। लेकिन राजा साहब को बंदी-गृहमें एक प्रकारकी शांतिका अनुभव होता था। वहाँ प्रति-क्षण यह खटका तो न रहता था कि बादशाह मेरी किसी बातसे नराज़ न हो जायँ; मुसाहब लोग कहीं मेरी शिकायत तो नहीं कर रहे हैं। शारीरिक कष्टोंका सहना उतना कठिन नहीं, जितना कि मानसिक कष्टोंका। यहाँ सब तकलीफ़ें थीं, पर सिरपर तलवार तो नहीं लटक रही थी। उन्होंने मनमें निश्चय किया कि अब चाहे बादशाह मुझे मुक्त भी कर दें, मगर मैं राज-काजसे अलग ही रहूँगा। इस राज्यका सूर्य अस्त होनेवाला है; कोई मानवीशक्ति उसे विनाश-निशामें लीन होनेसे नहीं रोक सकती। ये उसी पतनके लक्षण हैं। नहीं तो क्या मेरी राज-भक्तिका यही पुरस्कार मिलना चाहिए था। मैंने अब तक कितनी कठिनाइयोंसे राज्यकी रक्षा की है, यह भगवान् ही जानते हैं। एक तो बादशाहकी निरंकुशता,

दूसरी ओर बलवान् और युक्ति-संपन्न शत्रुओंकी कूटनीति—इस शिला और भँवरके बीचमें राज्यकी नौकाको चलाते रहना कितना कष्ट-साध्य था ! शायद ही ऐसा कोई दिन गुज़रा होगा, जिस दिन मेरा चित्त प्राण-शंकासे आंदोलित न हुआ हो। इस सेवा, भक्ति और तल्लीनताका यह पुरस्कार है ! मेरे मुखसे अप्रिय शब्द अवश्य निकले, लेकिन उनके लिये इतना कठोर दंड ? इससे तो यह कहीं अच्छा था कि मैं क़त्ल कर दिया गया होता। अपनी आँखोंसे अपने परिवारकी यह दुर्गति तो न देखता। सुनता हूं, पिताजीको सोनेके लिये चटाई नहीं दी गई है ! न-जाने स्त्रियोंपर कैसे-कैसे अत्याचार हो रहे होंगे। लेकिन इतना जानता हूं कि प्यारी सुखदा अन्त तक अपने सतीत्वकी रक्षा करेगी; अन्यथा प्राण त्याग देगी। मुझे इन बेड़ियोंकी परवा नहीं। पर सुनता हूं, लड़कोंके पैरोंमें भी बेड़ियां डाली गई हैं। यह सब इसी कुटिल रोशनुद्दौलाकी शरारत है। जिसका जी चाहे, इस समय सता ले,कुचल ले, मुझे किसीसे कोई शिकायत नहीं। भगवान्से यही प्रार्थना है कि अब संसारसे उठा ले। मुझे अपने जीवन में जो कुछ करना था, कर चुका, और उसका खूब फल पा चुका। मेरे-जैसे आदमीके लिये संसारमें स्थान नहीं है।

राजा इन्हीं विचारोंमें डूबे थे। सहसा उन्हें अपनी काल-कोठरीकी ओर किसीके आनेकी आहट मिली। रात बहुत जा चुकी थी। चारों ओर सन्नाटा छाया था, और उस

अंधकारमय सन्नाटेमें किसीके पैरोंकी चाप स्पष्ट सुनाई देती थी। कोई बहुत पाँव दबा-दबाकर चला आ रहा था। राजा साहबका कलेजा धक-धक करने लगा। वह उठकर खड़े हो गए। हम निःशस्त्र और प्रतिकारके लिये असमर्थ होनेपर भी बैठे-बैठे वारोंका नहीं निशाना बनना चाहते। खड़े हो जाना आत्मरक्षाका अन्तिम प्रयत्न है। कोठरीमें ऐसी कोई वस्तु न थी, जिससे वह अपनी रक्षा कर सकते। समझ गए, अंतिम समय आ गया। शत्रुओंने इस तरह मेरे प्राण लेनेकी ठानी है। अच्छा है, जीवनके साथ इस विपत्तिका भी अंत हो जायगा।

एक क्षणमें उनके सम्मुख एक आदमी आकर खड़ा हो गया। राजा साहबने पूछा—कौन है ? उत्तर मिला—मैं हूं, आपका सेवक।

राजा—ओ हो तुम हो कप्तान ! मैं शंकामें पड़ा हुआ था कि कहीं शत्रुओंने मेरा वध करनेके लिये कोई दूत न भेजा हो।

कप्तान—शत्रुओंने कुछ और ही ठानी है। आज बादशाह-सलामतकी जान बचती नहीं नज़र आती।

राजा—अरे ! यह क्योंकर ?

कप्तान—जबसे आपको यहां नज़रबन्द किया गया है, सारे राज्यमें हाहाकार मचा हुआ है। स्वार्थी कर्मचारियोंने लूट मचा रक्खी है। अँगरेजोंकी खुदाई फिर रही है। जो जीमें आता है, करते हैं ; किसीकी मजाल नहीं कि चू कर

सके। इस एक महीनेमें शहरके सैकड़ों बड़े-बड़े रईस मिट गए। रोशनुद्दौलाकी बादशाही है। बाज़ारोंका भाव चढ़ता जाता है। बाहरसे व्यापारी लोग डरके मारे कोई जिंस ही नहीं लाते। दूकानदारोंसे मनमानी रक़में महसूलके नामपर वसूल की जा रही हैं। ग़ल्लेका भाव इतना चढ़ गया है कि कितनेही घरोंमें चूल्हा जलनेकी नौबत नहीं आती। सिपाहियोंको अभी तक तनख़्वाह नहीं मिली। वे जाकर दूकानदारोंको लूटते हैं। सारे राज्यमें बद-अमली हो रही है। मैंने कई बार यह कैफ़ियत बादशाह-सलामतके कानों तक पहुँचानेकी कोशिश की; मगर वह यह तो कह देते हैं कि मैं इसकी तहक़ीक़ात करूँगा, और फिर बेख़बर हो जाते हैं। आज शहरके बहुतसे दूकानदार फ़रियाद लेकर आए थे कि हमारे हाल पर निगाह न की गई, तो हम शहर छोड़कर कहीं और चले जायँगे। क्रिस्तानोंने उनको सख़्त कहा, धमकाया; लेकिन उन्होंने जब तक अपनी सारी मुसीबत न बयान कर ली, वहाँसे न हटे। आख़िर जब बादशाह-सलामतने उनको दिलासा दिया, तो चले गए।

राजा—बादशाह पर इतना असर हुआ, मुझे तो यही ताज्जुब है!

कप्तान—असर वसर कुछ नहीं हुआ; यह भी उनकी एक दिल्लगी है। शामको ख़ास मुसाहबोंको बुलाकर हुक्म दिया है कि आज मैं भेस बदलकर शहरका गश्त करूँगा; तुम

लोग भी भेस बदले हुए मेरे साथ रहना। मैं देखना चाहता हूँ कि रियाया क्यों इतनी घबराई हुई है। सब लोग मुझसे दूर रहें; किसीको न मालूम हो कि मैं कौन हूं। रोशनुद्दौला और पाँचों अंगरेज़-मुसाहब साथ रहेंगे।

राजा—तुम्हें क्योंकर यह बात मालूम हो गई?

कप्तान—मैंने उसी अंगरेज़ हज्जामको मिला रक्खा है। दरबारमें जो कुछ होता है, उसका पता मुझे मिल जाता है। उसीकी सिफारिशसे आपकी खिदमतमें हाजिर होनेका मौका मिला। (घड़ियालमें १० बजते हैं, ग्यारह बजे चलनेकी तैयारी है। बारह बजते बजते लखनऊका तख़्त खाली हो जायगा।

राजा (घबराकर)—क्या इन सबोंने उन्हें क़त्ल करनेकी साज़िश कर रक्खी है?

कप्तान—जी नहीं, क़त्ल करनेसे उनका मंशा न पूरा होगा। बादशाहको बाज़ारकी सैर कराते हुए गोमतीकी तरफ़ ले जायँगे। वहाँ अंगरेज़ सिपाहियोंका एक दस्ता तैयार रहेगा। वह बादशाहको फ़ौरन् एक गाड़ीपर बिठाकर रेज़िडेंसीमें ले जायगा। वहाँ रेज़िडेंट साहब बादशाह-सलामतको सल्तनतसे इस्तीफ़ा देनेपर मजबूर करेंगे। उसी वक्त उनसे इस्तीफ़ा लिखा लिया जायगा, और इसके बाद रातो-रात उन्हें कलकत्ते भेज दिया जायगा।

राजा—बड़ा ग़ज़ब हो गया। अब तो वक्त बहुत कम है; बादशाह-सलामत निकल पड़े होंगे?

कप्तान—ग़ज़ब क्या हो गया। इनकी ज़ातसे किसे आराम था। दूसरी हुक़ूमत चाहे कितनी ही ख़राब हो, इससे अच्छी ही होगी।

राजा—अंगरेज़ोंकी हुकूमत होगी?

कप्तान—अंगरेज इनसे कहीं बेहतर इन्तज़ाम करेंगे।

राजा (करुणस्वरसे)—कप्तान! ईश्वरके लिये ऐसी बातें न करो। तुमने मुझसे ज़रा देर पहले क्यों न यह कैफ़ियत बयान की?

कप्तान (आश्चर्यसे)—आपके साथ तो बादशाहने कोई अच्छा सलूक नहीं किया!

राजा—मेरे साथ कितनाही बुरा सलूक किया हो, लेकिन एक राज्यकी क़ीमत एक आदमी या एक ख़ानदानकी जानसे कहीं ज़्यादा होती है। तुम मेरे पैरोंकी बेड़ियाँ खुलवा सकते हो?

कप्तान—सारे अवध-राज्यमें एक भी ऐसा आदमी न निकलेगा, जो बादशाहको सच्चे दिलसे दुआ देता हो। दुनिया उनके ज़ुल्मसे तंग आ गई है।

राजा—मैं अपनोंके ज़ुल्मको ग़ैरोंकी बंदगीसे कहीं बेहतर ख़्याल करता हूं। बादशाहकी यह हालत ग़ैरों हीके भरोसे पर हुई है। वह इसीलिये किसीकी पर्वा नहीं करते कि उन्हें अंगरेज़ोंकी मददका यक़ीन है। मैं इन फ़िरंगियोंकी चालोंको ग़ौरसे देखता आता हूं। बादशाहके मिज़ाजको उन्होंने बिगाड़ा

है। उनका मंशा यही थी, जो हुआ। रिआयाके दिलसे बादशाहकी इज़्ज़त और मुहब्बत उठ गई। आज सारा मुल्क बग़ावत करनेपर आमादा है। ये लोग इसी मौक़ेका इन्तज़ार कर रहे थे। वह जानते हैं कि बादशाहकी माज़ूली (गद्दीसे हटाये जाने) पर एक आदमी भी आंसू न बहायेगा। लेकिन मैं जताए देता हूं कि अगर इस वक्त तुमने बादशाहको दुश्मनोंके हाथोंसे न बचाया, तो तुम हमेशाके लिये अपने ही वतनमें गुलामीकी ज़ंजीरोंमें बंध जाओगे। किसी ग़ैर क़ौमके चाकर बनकर अगर तुम्हें आफ़ियत (शांति) भी मिली, तो आफ़ियत न होगी। वह मौत होगी। ग़ैरोंके बेरहम पैरोंके नीचे पड़कर तुम हाथ भी न हिला सकोगे, और यह उम्मीद कि कभी हमारे मुल्कमें आईनी सल्तनत (वैध शासन) क़ायम होगी, हसरतका दाग़ बनकर रह जायगी। नहीं, मुझमें अभी मुल्ककी मुहब्बत बाक़ी है। मैं अभी इतना बेजान नहीं हुआ हूं। मैं इतनी आसानीसे सल्तनतको हाथसे न जाने दूंगा, अपनेको इतने सस्ते दामों ग़ैरोंके हाथों न बेचूंगा, मुल्ककी इज़्ज़तको न मिटने दूंगा, चाहे इस कोशिशमें मेरी जान ही क्यों न जाय। कुछ और नहीं कर सकता, अपनी जान तो दे ही सकता हूं। मेरी बेड़ियाँ खोल दो।

कप्तान—मैं आपका ख़ादिम हूं, मगर मुझे यह मजाज़ नहीं है।

राजा (जोशमें आकर)—ज़ालिम, यह इन बातोंका वक्त नहीं है। एक-एक पल हमें तबाहीकी तरफ़ लिए जा रहा है।

खोल दे ये बेड़ियाँ। जिस घरमें आग लगी है, उसके आदमी खुदाको नही याद करते, कुएँकी तरफ़ दौड़ते हैं।

कमान—आप मेरे मुहसिन हैं। आपके हुक्मसे मुँह नहीं मोड़ सकता। लेकिन—

राजा—जल्दी करो, जल्दी करो। अपनी तलवार मुझे दे दो। अब इन तकल्लुफ़की बातोंका मौक़ा नहीं है।

कमान साहब निरुत्तर हो गए। सजीव उत्साहमें बड़ी संक्रामक-शक्ति होती है। यद्यपि राजा साहबके नीति-पूर्ण वार्तालापने उन्हें माक़ूल नही किया, तथापि वह अनिवार्य-रूपसे उनकी बेड़ियाँ खोलनेपर तत्पर हो गए। उसी वक्त जेल के दारोग़ाको बुलाकर कहा-साहबने हुक्म दिया है कि राजा साहबको फ़ौरन आज़ाद कर दिया जाय। इसमें एक पलकी भी ताख़ीर (विलंब) हुई, तो तुम्हारे हक़में अच्छा न होगा।

दारोग़ाको मालूम था कि कमान साहब और मि०...में गाढ़ी मैत्री है। अगर...साहब नाराज हो जायँगे, तो रोशनुद्दौलाकी कोई सिफ़ारिश मेरी रक्षा न कर सकेगी। उसने राजा साहबकी बेड़ियाँ खोल दीं।

राजा साहब जब तलवार हाथमें लेकर जेलसे निकले, तो उनका हृदय राज्य-भक्तिकी तरंगोंसे आंदोलित हो रहा था। उसी वक्त घड़ियालने ११ बजाए।

(३)

आधी रातका समय था। मगर लखनऊकी तंग गलियोंमें

खूब चहल-पहल थी। ऐसा मालूम होता था कि अभी ६ बजे होंगे। सराफ़ेमें सबसे ज्यादा रौनक़ थी। मगर आश्चर्य यह था कि किसी दूकानपर जवाहरात या गहने नहीं दिखाई देते थे। केवल आदमियोंके आने-जानेकी भीड़ थी। जिसे देखो, पाँचों शस्त्रोंसे सुसज्जित, मूछें खड़ी किए, ऐंठता हुआ चला जाता था। बाज़ारके मामूली दूकानदार भी निःशस्त्र न थे।

सहसा एक आदमी, भारी साफा बाँधे, पैरकी घुटनियों तक नीची क़बा पहने, कमरमें पटका बाँधे, आकर एक सराफ़की दूकानपर खड़ा हो गया। जान पड़ता था, कोई ईरानी सौदागर है। उन दिनों ईरानके व्यापारी लखनऊमें बहुत आने-जाते थे। इस समय ऐसे किसी आदमीका आ जाना असाधारण बात न थी।

सराफ़का नाम माधोदास था। बोला—कहिए मीर साहब, कुछ दिखाऊँ?

सौदागर—सोनेका क्या निर्ख है?

माधो (सौदागरके कानके पास मुँह लेजाकर)—निर्ख की कुछ न पूछिए। आज करीब एक महीनेसे बाज़ारका निर्ख बिगड़ा हुआ है। माल बाज़ारमें आता ही नहीं। लोग दबाए हुए हैं। बाज़ारमें ख़ौफके मारे नहीं लाते। अगर आपको ज्यादा माल दरकार हो, तो मेरे साथ ग़रीबख़ाने तक तकलीफ़ कीजिए। जैसा माल चाहिए, लीजिए। निर्ख मुनासिब ही होगा। इसका इतमीनान रखिए।

सौदागर—आजकल बाजारका निर्ख क्यों बिगड़ा हुआ है ?

माधो—क्या आप हाल ही में वारिद हुए हैं ?

सौदागर—हाँ, मैं आज ही आया हूँ। कहाँ पहले की-सी रौनक़ नहीं नज़र आती। कपड़ेका बाज़ार भी सुस्त था। ढाकेका एक क़ीमती थान बहुत तलाश करने पर भी न मिला।

माधो—इसके बड़े क़िस्से हैं; कुछ ऐसा ही मुआमला है।

सौदागर—डाकुओंका ज़ोर तो नहीं है ? पहले तो यहाँ इस क़िस्मकी वारदातें न होती थीं।

माधो—अब वह कैफ़ियत नहीं है। दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं। उन्हें कोतवाल क्या, बादशाह-सलामत भी गिरफ़्तार नहीं कर सकते। अब और क्या कहूँ। दीवारके भी कान होते हैं। कहीं कोई सुन ले, तो लेनेके देने पड़ जायँ।

सौदागर—सेठजी, आप तो पहेलियाँ बुझाने लगे। मैं परदेसी आदमी हूँ; यहाँ किससे कहने जाऊँगा। आख़िर बात क्या है ? बाज़ार क्यों इतना बिगड़ा हुआ है ? नाजकी मंडीकी तरफ़ गया था। सन्नाटा छाया हुआ। मोटी जिंस भी दूने दामोंपर बिक रही थी।

माधो (इधर-उधर चौकन्नी आँखोंसे देखकर)—एक महीना हुआ; रोशनुद्दौलाके हाथमें सियाह-सफ़ेदका अख़्तियार आ गया है। यह सब उन्हींकी बदइन्तज़ामीका फल है। उनके पहले राजा बख़्तावरसिंह हमारे मालिक थे। उनके वक़्तमें

किसीकी मजाल न थी कि व्यापारियोंको टेढ़ी आंखसे देख सके। उनका रोब सभीपर छाया हुआ था। फ़िरंगियोंपर उनकी कड़ी निगाह रहती थी। हुक्म था कि कोई फ़िरंगी बाजारमें आवे, तो थानेका सिपाही उसकी देख-भाल करता रहे। इसी वजहसे फ़िरंगी उनसे जला करते थे। आख़िर सबोंने रोशनुद्दौलाको मिलाकर बख्तावरसिंहको बेक़सूर क़ैद करा दिया। बस, तबसे बाज़ारमें लूट मची हुई है। सरकारी अमले अलग लूटते हैं; फ़िरंगी अलग नोचते खसोटते हैं। जो चीज़ चाहते हैं, उठा ले जाते हैं। दाम माँगो, तो धमकियां देते हैं। शाही दरबारमें फ़रियाद करो, तो उलटे सज़ा होती है। अभी हाल हीमें हम सब मिलकर बादशाह-सलामतकी ख़िदमतमें हाजिर हुए थे। पहले तो वह बहुत नाराज़ हुए पर आख़िर रहम आ गया। बादशाहोंका मिज़ाज ही तो है। हमारी सब शिकायतें सुनी, और तसकीन दी कि हम तहक़ीक़ात करेंगे। मगर अभी तक तो वही लूट खसोट जारी है।

इतनेमें तीन आदमी राजपूती ढंगकी मिर्ज़ई पहने आकर दूकानके सामने खड़े हो गए। माधोदास उनका रंगढंग देखकर चौंका। शाही फ़ौजके सिपाही बहुधा इसी सज-धजसे निकलते थे। तीनों आदमी सौदागरको देखकर ठिठके; पर उसने उन्हें कुछ ऐसी निगाहोंसे देखा कि तीनों आगे चले गए। तब सौदागरने माधोदाससे पूछा—इन्हें देखकर तुम क्यों चौंके?

माधोदासने कहा—ये फ़ौजके सिपाही हैं। जबसे राजा

बख्तावरसिंह नज़र-बंद हुए हैं, इनपर किसीकी दाब ही नहीं रही। खुले साँड़की तरह बाज़ारोंमें चक्कर लगाया करते हैं। सरकारसे तलब मिलनेका कुछ ठीक तो है नहीं। बस, नोच खसोट करके गुज़र करते हैं।—हाँ, तो फिर अगर मरज़ी हो, तो मेरे साथ घर तक चलिए, आपको माल दिखाऊं।

सौदागर—नहीं भई, इस वक्त नहीं। सुबह आऊँगा। देर हो गई है, और मुझे भी यहाँकी हालत देखकर खौफ़ मालूम होने लगा है।

यह कहकर सौदागर उसी तरफ़ चला गया, जिधर वे तीनों राजपूत गए थे। थोड़ी देरमें तीन आदमी और सराफ़े में आए। एक तो पंडितोंकी तरह नीची चपकन पहने हुए था; सिरपर गोल पगिया थी, और कंधेपर जरीके कामका शाल। उसके दोनों साथी ख़िदमतगारोंकेसे कपड़े पहने हुए थे तीनों इस तरह इधर-उधर ताक रहे थे, मानों किसीको खोज रहे हों। यों ताकते हुए तीनों आगे चले गए।

ईरानी सौदागर तीव्र नेत्रोंसे इधर उधर देखता हुआ एक मील चला गया। वहाँ एक छोटा-सा बाग़ था। एक पुरानी मसजिद भी थी। सौदागर वहाँ ठहर गया। एकाएक तीनों राजपूत मसजिदसे बाहर निकल आए, और बोले—हुज़ूर तो बहुत देरतक सराफ़की दुकानपर बैठे रहे। क्या बातें हुईं?

सौदागरने अभी कुछ जवाब न दिया था कि पीछेसे पंडित और उनके दोनों ख़िदमतगार भी आ पहुँचे। सौदागर

ने पंडितको देखते ही भर्त्सना-पूर्ण शब्दोंमें कहा—मियां रोशनुद्दौला,मुझे इस वक़् तुम्हारे ऊपर इतना गुस्सा आ रहा है कि तुम्हें कुत्तोंसे नुचवा दूं। नमकहराम कहींका! दग़ा-बाज! तूने मेरी सल्तनतको तबाह कर दिया! सारा शहर तेरे जुल्मका रोना रो रहा है! मुझे आज मालूम हुआ कि तूने क्यों राजा बख़्तावरसिंहको क़ैद कराया। मेरी अक़्ल-पर न-जाने क्यों पत्थर पड़ गए थे कि मैं तेरी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें आ गया। इस नमकहरामीकी तुझे वह सज़ा दूंगा कि देखनेवालोंको भी इबरत (शिक्षा) हो।

रोशनुद्दौलाने निर्भीकतासे उत्तर दिया—आप मेरे बाद-शाह हैं, इसलिये आपका अदब करता हूं; वर्ना इसी वक़् इस बद-ज़बानीका मज़ा चखा देता। खुद आप तो महलमें हसी-नोंके साथ ऐश किया करते हैं, दूसरोंको क्या ग़रज़ पड़ी है कि सल्तनतकी फ़िक्रसे दुबले हों। खूब, हम अपना खून जलावें, और आप जशन मनावें। ऐसे अहमक़ कहीं और रहते होंगे।

बादशाह (क्रोधसे कांपते हुए)—मि०..मैं तुम्हें हुक्म देता हूं कि इस नमकहरामको अभी गोली मार दो। मैं इसकी सूरत नहीं देखना चाहता। और, इसी वक़् जाकर इसकी सारी जायदाद ज़ब्त कर लो। इसके ख़ानदानका एक बच्चा भी ज़िंदा न रहने पावे।

रोशन—मि०...मैं तुमको हुक्म देता हूं कि इस मुल्क

और क़ौमके दुशमन, रैयतके क़ातिल और बदकार आदमी को फ़ौरन गिरफ्तार कर लो। यह इस क़ाबिल नहीं कि ताज और तख़्तका मालिक बने।

इतना सुनते ही पाचों अंगरेज़-मुसाहबोंने, जो भेस बदले हुये साथ थे, बादशाहके दोनों हाथ पकड़ लिये, और खींचने गोमती-नदीकी तरफ ले चले। तब बादशाहकी आंखें खुलीं। समझ गये कि पहले हीसे यह षड्यंत्र रचा गया था। इधर-उधर देखा, कोई आदमी नहीं। शोर मचाना व्यर्थ था। बादशाहीका नशा उतर गया। दुरवस्था ही वह परीक्षाग्नि है, जो मुलम्मे और रोग़नको उतारकर मनुष्यका यथार्थ रूप दिखा देती है। ऐसे ही अवसरोंपर विदित होता है कि मानव-हृदयपर कृत्रिम भावोंका कितना गहरा रंग चढ़ा होता है। एक क्षणमें बादशाहकी उद्दंडता और घमंडने दीनता और विनय-शीलताका आश्रय लिया। बोले—मैंने तो आप लोगोंकी मरज़ीके ख़िलाफ़ ऐसा कोई काम नहीं किया जिसकी यह सजा मिले। मैंने आप लोगोंको हमेशा अपना दोस्त समझा है।

रोशन—तो हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, वह भी आपके फ़ायदे हीके लिये कर रहे हैं। हम आपके सिरसे सल्तनतका बोझ उतारकर आपको आज़ाद कर देंगे। तब आपके ऐशमें ख़लल न पड़ेगा। आप बेफ़िक्र होकर हसीनोंके साथ ज़िंदगी की बहार लूटियेगा।

बादशाह—तो क्या आपलोग मुझे तख़्तसे उतारना चाहते हैं ?

रोशन—नहीं, आपको बादशाहीकी ज़िम्मेदारियोंसे आज़ाद कर देना चाहते हैं।

बादशाह—हज़रत इमामकी क़सम, मैं यह ज़िल्लत न बर्दाश्त करूंगा। मैं अपने बुज़ुर्गोंका नाम न डुबाऊंगा।

रोशन—आपके बुज़ुर्गोंके नामकी फ़िक्र हमें आपसे ज्यादा है। आपकी ऐश-परस्ती बुज़ुर्गोंका नाम रोशन नहीं कर रही है।

बादशाह (दीनतासे)—मैं वादा करता हूं कि आइन्दा से मैं आप लोगोंको शिकायतका कोई मौक़ा न दूंगा।

रोशन—नशेबाज़ोंके वादोंपर कोई दीवाना ही यक़ीन कर सकता है।

बादशाह—तुम मुझे ज़बरदस्ती तख़्तसे नहीं उतार सकते।

रोशन—इन धमकियोंकी ज़रूरत नहीं। चुप-चाप चले चलिये; आगे आपको सेज-गाड़ी मिल जायगी। हम आपको इज़्ज़तके साथ रुख़सत करेंगे।

बादशाह—आप जानते हैं, रिआयापर इसका क्या असर होगा ?

रोशन—खूब जानता हूं ! आपकी हिमायतमें एक उंगली भी न उठेगी। कल सारी सल्तनतमें घीके चिराग़ जलेंगे।

इतनी देरमें सब लोग उस स्थानपर आ पहुंचे, जहां

बादशाहको ले जानेके लिये सवारी तैयार खड़ी थी । लग-भग २५ सशस्त्र गोरे सिपाही भी खड़े थे। बादशाह सेज-गाड़ी को देखकर सम्हल गये । उनके रुधिरकी गति तीव्र हो गई; भोग और विलासके नीचे दबी हुई मर्यादा सजग हो गई। उन्होंने ज़ोरसे झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लिया, और नैराश्य-पूर्ण दुस्साहसके साथ, परिणाम-भयको त्यागकर, उच्चस्वरसे बोले—ऐ लखनऊके बसनेवालो! तुम्हारा बाद-शाह यहाँ दुश्मनोंके हाथो क़त्ल किया जा रहा है। उसे इनके हाथसे बचाओ, दौड़ो, वर्ना पछताओगे!

यह आर्त पुकार आकाशकी नीरवताको चीरती हुई गोम-तीकी लहरोंमें विलीन नहीं हुई, बल्कि लखनऊवालोंके हृदयों में जा पहुंची। राजा बख़्तावरसिंह वंदी-गृहसे निकलकर नगर-निवासियोंको उत्तेजित करते, और प्रतिक्षण रक्षाका-रियोंके दल को बढ़ाते, बड़े वेगसे दौड़े चले आ रहे थे। एक पलका विलंब भी षड्यंत्रकारियोंके घातक विरोधको सफल कर सकता था। देखते देखते उनके साथ दो-तीन हज़ार सशस्त्र मनुष्योंका दल हो गया था। यह सामूहिक शक्ति बादशाहका और लखनऊ राज्यका उद्धार कर सकती थी। समय सब कुछ था। बादशाह गोरी सेनाके पंजेमें फँस गये, तो फिर समस्त लखनऊ भी उन्हें मुक्त न कर सकता था। राजा साहब ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाते थे, नैराश्यसे दिल बैठा जाता था। विफल-मनोरथ होनेकी शंकासे उ-

त्साह भंग हुआ जाता था। अब तक कहीं उन लोगोंका पता नहीं! अवश्य हम देरमें पहुंचे विद्रोहियोंने अपना काम पूरा कर लिया। लखनऊ-राज्यकी स्वाधीनता सदाके लिये विसर्जित हो गई!

ये लोग निराश होकर लौटना ही चाहते थे कि अचानक बादशाहका आर्त-नाद सुनाई दिया। कई हज़ार कंठोंसे आकाश-भेदी ध्वनि निकली—हुज़ूरको खुदा सलामत रक्खे हम फ़िदा होनेको आ पहुंचे!

समस्त दल एक ही प्रबल इच्छासे प्रेरित होकर, वेगवती जल-धाराकी भाँति, घटना-स्थलकी ओर दौड़ा। अशक्त लोग भी सशक्त हो गये। पिछड़े हुये लोग आगे निकल जाना चाहते थे। आगेके लोग चाहते थे कि उड़कर जा पहुंचे!

इन आदमियोंकी आहट पाते ही गोरोंने बंदूकें भरीं, और २५ बंदूकोंकी बाढ़ सर हो गई। रक्षा-कारियोंमें कितने ही लोग गिर पड़े; मगर क़दम पीछे न हटे। वीर-मदने और भी मतवाला कर दिया। एक क्षणमें दूसरी बाढ़ आई; कुछ लोग फिर वीर-गतिको प्राप्त हुए। लेकिन क़दम आगे ही बढ़ते ही गए। तीसरी बाढ़ छूटने ही वाली थी कि लोगोंने विद्रोहियोंको जा लिया। गोरे भागे।

जब लोग बादशाहके पास पहुँचे, तो अद्भुत दृश्य देखा। बादशाह रोशनुद्दौलाकी छातीपर सवार थे। जब गोरे जान लेकर भागे, तो बादशाहने इस नरपिशाचको

पकड़ लिया, और उसे बल-पूर्वक भूमिपर गिराकर उसकी छातीपर बैठ गए। अगर उसके हाथोंमें हथियार होता, तो इस वक़्त रोशनकी लाश फड़कती हुई दिखाई देती।

राजा बख्तावरसिंह आगे बढ़कर बादशाहको आदाब बजा लाए। लोगोंकी जय ध्वनिसे आकाश हिल उठा। कोई बादशाहके पैरोंको चूमता था, कोई उन्हें आशीर्वाद देता था। और, रोशनुद्दौलाका शरीर ता लातों और घूसोंका लक्ष्य बना हुआ था। कुछ बिगड़े दिल ऐसे भी थे, जो उसके मुँह पर थूकते भी संकोच न करते थे।

(४)

प्रातःकाल था। लखनऊमें आनंदोत्सव मनाया जा रहा था। बादशाही महलके सामने लाखों आदमी जमा थे। सब लोग बादशाहको यथा-योग्य नज़र देने आए थे। जगह जगह ग़रीबोंको भोजन कराया जा रहा था। शाही नौबतखानेमें नौबत झड़ रही थी।

दरबार सजा। बादशाह हीरे और जवाहरसे जगमगाते, रत्न-जड़ित आभूषणोंसे सजे हुए, सिंहासनपर बिराजे। रईसों और अमीरोंने नजरें गुज़ारीं। कवि-जनोंने क़सीदे पढ़े। एकाएक बादशाहने पूछा—राजा बख्तावरसिंह कहां हैं? कप्तानने जवाब दिया—क़ैदखानेमें।

बादशाहने उसी वक़्त कई कर्मचारियोंको भेजा कि राजा साहबको जेलख़ानेसे इज़्ज़तके साथ लावें। जब थोड़ी देरके

बाद राजाने आकर बादशाहको सलाम किया, तो तख्तसे उतरकर उनसे गले मिले, और उन्हें अपनी दाहनी ओर सिंहासनपर बैठाया। फिर दरबारमें खड़े होकर उनकी सुकीर्ति और राज-भक्तिकी प्रशंसा करनेके उपरांत अपने ही हाथोंसे उन्हें खिलअत पहनाई। राजा साहबके कुटुम्बके प्राणी भी आदर और सम्मानके साथ विदा किए गए।

अंतको जब दोपहरके समय दरबार बर्खास्त होने लगा तो बादशाहने राजा साहबसे कहा—आपने मुझपर और मेरी सल्तनतपर जो एहसान किया है, उसका सिला (पुरस्कार) देना मेरे इमकानसे बाहर है। मेरी आपसे यही इल्तिजा (अनुरोध) है कि आप वज़ारतका क़लमदान अपने हाथमें लीजिए, और सल्तनतका, जिस तरह मुनासिब समझिये, इंतज़ाम कीजिए। मैं आपके किसी काममें दख़ल न दूंगा। मुझे एक गोशेमें पड़ा रहने दीजिए। नमकहराम रोशनको भी मैं आपके सिपुर्द किए देता हूं। आप इसे जो सज़ा चाहें, दें। मैं इसे कबका जहन्नुम भेज चुका होता; पर यह समझकर कि यह आपका शिकार है, इसे छोड़े हुए हूं।

लेकिन बख्तावरसिंह बादशाहके उच्छृंखल स्वभावसे भली भांति परिचित थे। वह जानते थे, बादशाहकी ये सदिच्छाएँ थोड़े ही दिनोंकी मेहमान हैं। मानवचरित्रमें आकस्मिक परिवर्तन बहुत कम हुआ करते हैं। दो-चार महीनेमें दरबारका फिर वही रंग हो जायगा। इसलिये मेरा तटस्थ रहना

ही अच्छा है। राज्यके प्रति मेरा जो कुछ कर्तव्य था, वह मैंने पूरा कर दिया। मैं दरबारसे अलग रहकर निष्कामभावसे जितनी सेवा कर सकता हूं, उतनी दरबारमें रहकर कदापि नहीं कर सकता। हितैषी मित्रका जितना सम्मान होता है, स्वार्थसिद्ध सेवकका उतना नहीं हो सकता।

वह विनीत भावसे बोले—हुज़ूर, मुझे इस ओहदेसे मुआफ़ रक्खें। मैं यों ही आपका ख़ादिम हूँ। इस मसबपर किसी लायक़ आदमीको मामूर फ़रमाइए (नियुक्त कीजिए)। मैं अक्खड़ राजपूत हूं। मुल्की इन्तज़ाम करना क्या जानूँ।

बादशाह—मुझे तो आपसे ज़्यादा लायक़ और वफ़ादार आदमी नज़र नहीं आता।

मगर राजा साहब उनकी बातोंमें न आये। आख़िर मजबूर होकर बादशाहने उन्हें ज़्यादा न दबाया। इसके बाद जब रोशनुद्दौलाको सज़ा देनेका प्रश्न उठा, तब दोनों आदमियोंमें इतना मत-भेद हुआ कि वाद-विवादकी नौबत आ गई। बादशाह आग्रह करते थे कि इसे कुत्तोंसे नुचवा दिया जाय। राजा साहब इस बातपर अड़े हुए थे कि इसे जानसे न मारा जाय, केवल नज़र-बंद कर दिया जाय। अंतमें बादशाहने क्रुद्ध होकर कहा—यह एक दिन आपको ज़रूर दग़ा देगा!

राजा—इस ख़ौफ़से मैं इसकी जान न लूंगा।

बादशाह—तो जनाब, आप चाहे इसे मुआफ़ कर दें, मैं कभी मुआफ़ नहीं कर सकता।

राजा—आपने तो इसे मेरे सिपुर्द कर दिया था। दी हुई चीज़को आप वापस कैसे लेंगे?

बादशाहने कहा—तुमने मेरे निकलनेका कहीं रास्ता ही नहीं रखा। रोशनुद्दौलाकी जान बच गई। मजारतका पत्र कप्तान साहबको मिला। मगर सबसे विचित्र बात यह थी कि रेजिडेंटने इस षड्यंत्रसे पूर्ण अनभिज्ञता प्रकट की, और साफ लिख दिया कि बादशाह-सलामत अपने अँगरेज़ मुसाहबोंको जो सजा चाहें दें; मुझे कोई आपत्ति न होगी। मैं उन्हें पाता, तो स्वयं बादशाहकी खिदमतमें भेज देता लेकिन पाँचों महानुभावोंमें से एकका भी पता न चला। शायद वे सब-के-सब रातोंरात कलकत्ते भाग गए थे। इतिहासमें उक्त घटनाका कहीं उल्लेख नहीं किया गया; लेकिन किंवदंतियाँ, जो इतिहाससे अधिक विश्वसनीय हैं, उसकी सत्यता की साक्षी हैं।

———

अधिकार-चिंता ।

(१)



मी यों देखनेमें तो बहुत तगड़ा था । भूंकता तो सुननेवालोंके कानोंके परदे फट जाते । डील-डौल भी ऐसा कि अंधेरी रातमें उसपर गधेका भ्रम हो जाता । लेकिन उसकी श्वानोचित वीरता किसी संग्रामक्षेत्रमें प्रमाणित न होती थी । दो-चार दफे जब बाज़ारके लेंडियोंने उसे चुनौती दी, तो वह उनका गर्व-मर्दन करनेके लिये मैदानमें आया, और देखनेवालोंका कहना है कि जब तक लड़ा जीवटसे लड़ा, नखों और दांतोंसे ज्यादा चोटें उसकी दुमने कीं । निश्चितरूपसे नहीं कहा जा सकता कि मैदान किसके हाथ रहता, किंतु जब उस दलको कुमक मंगानी पड़ी, तो रण-शास्त्रके नियमोंके अनुसार विजयका श्रेय टामी हीको देना उचित न्यायानुकूल जान पड़ता है । टामीने उस अवसरपर कौशलसे काम लिया और दांत निकाल दिये, जो संधिकी याचना थी । किंतु तबसे उसने ऐसे सन्नीति-विहीन प्रतिद्वन्द्वियोंके मुंह लगना उचित न समझा ।

इतना शांति-प्रिय होनेपर भी टामीके शत्रुओंकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती थी । उसके बराबरवाले तो उससे

इसलिये जलते कि वह इतना मोटा-ताज़ा होकर इतना भीरु क्यों है। बाजारी दल इसलिये जलता कि टामीके मारे घूरों परकी हड्डियां भी न बचने पाती थीं। वह घड़ी-रात रहे उठता और हलवाइयोंकी दूकानोंके सामनेके दोने और पत्तल, कसाई खानेके सामनेकी हड्डियां और छीछड़े चबा डालता। अतएव इतने शत्रुओंके बीचमें रहकर टामीका जीवन संकटमय होता जाता था। महीनों बीत जाते और पेटभर भोजन न मिलता। दो-तीन बार उसे मन-माने भोजन करनेकी ऐसी प्रबल उत्कंठा हुई कि उसने संदिग्ध साधनों द्वारा उसको पूरा करनेकी चेष्टा की; पर जब परिणाम आशाके प्रतिकूल हुआ और स्वादिष्ट पदार्थोंके बदले अरुचिकर, दुर्ग्राह्य वस्तुएं भर-पेट खानेको मिलीं—जिससे पेटके बदले कई दिन तक पीठमें विषम वेदना होती रही—तो उसने विवश होकर फिर सन्मार्ग का आश्रय लिया। पर डंडोंसे पेट चाहे भर गया हो, वह उत्कंठा शांत न हुई। वह किसी ऐसी जगह जाना चाहता था, जहां खूब शिकार मिले; खरगोश, हिरन, भेड़ोंके बच्चे मैदानोंमें विचर रहे हों; और उनका कोई मालिक न हो, जहां किसी प्रतिद्वन्द्वीकी गंध तक न हो; आराम करनेको सघन वृक्षोंकी छाया हो पीनेको नदीका पवित्र जल। वहां मन-माना शिकार करूं, खाऊं और मीठी नींद सोऊं। वहां चारों ओर मेरी धाक बैठ जाय; सबपर ऐसा रोब छा जाय कि मुझीको अपना राजा समझने लगें और धीरे धीरे मेरा

ऐसा सिक्का बैठ जाय कि किसी हाथीको वहां पैर रखनेका साहस ही न हो।

संयोग-वश एक दिन वह इन्हीं कल्पनाओंके सुख-स्वप्न देखता हुआ सिर झुकाए सड़क छोड़कर गलियोंमें चला जा रहा था कि सहसा एक सज्जनसे उसकी मुठभेड़ हो गई। टामीने चाहा कि बचकर निकल जाऊं; पर वह पुरुष इतना शांतिप्रिय न था। उसने तुरन्त झपटकर टामीका टेंटुआ पकड़ लिया। टामीने बहुत अनुनय-विनय की; गिड़गिड़ाकर कहा —ईश्वरके लिये मुझे यहांसे चले जाने दो; कसम ले लो, जो इधर पैर रक्खूं। मेरी शामत आई थी कि तुम्हारे अधिकार-क्षेत्रमें चला आया। पर उस मदान्ध और निर्दय प्राणीने ज़रा भी रिआयत न की। अंतमें हारकर टामीने गर्दभ-स्वरमें फरि-याद करनी शुरू की। यह कोलाहल सुनकर मोहल्लेके दो-चार नेता लोग एकत्र हो गये; पर उन्होंने भी दीनपर दया करनेके बदले उलटे उसीपर दंत-प्रहार करना शुरू किया। इस अन्यायपूर्ण व्यवहारने टामीका दिल तोड़ दिया। वह जान छोड़कर भागा। उन अत्याचारी पशुओंने बहुत दूर तक उसका पीछा किया; यहांतक कि मार्गमें एक नदी पड़ गई। टामीने उसमें कूदकर अपनी जान बचाई।

कहते हैं, एक दिन सबके दिन फिरते हैं। टामीके दिन भी नदीमें कूदते ही फिर गये। कूदा था जान बचानेके लिये, हाथ लग गये मोती। तैरता हुआ उस पार पहुंचा, तो वहां

उसकी चिर-संचित अभिलाषाएं मूर्तिमती हो रही थीं।

(२)

यह एक विस्तृत मैदान था। जहां तक निगाह जाती थी, हरियालीकी छटा दिखाई देती थी। कहीं नालोंका मधुर कलरव था, कहीं झरनोंका मन्दगान, कहीं वृक्षोंके सुन्दर पुंज थे, कहीं रेतके सपाट मैदान। बड़ा सुरम्य मनोहर दृश्य था।

यहां बड़े तेज नखोंवाले पशु थे, जिनकी सूरत देखकर टामीका कलेजा दहल उठता था। पर उन्होंने टामीकी कुछ परवा न की। वे आपसमें नित्य लड़ा करते थे; नित्य खून की नदी बहा करती थी। टामीने देखा, यहां इन भयंकर जंतुओंसे पेश न पा सकूंगा। उसने कौशलसे काम लेना शुरू किया। जब दो लड़नेवाले पशुओंमें एक घायल और मुर्दा होकर गिर पड़ता, तो टामी लपककर मांसका कोई टुकड़ा ले भागता और एकान्तमें बैठकर खाता। विजयी पशु विजय के उन्मादमें उसे तुच्छ समझ कर कुछ न बोलता।

अब क्या था, टामीके पौ-बारह हो गये। सदा दिवाली रहने लगी। न गुड़की कमी थी, न गेहूंकी। नित नए पदार्थ उड़ाता और वृक्षोंके नीचे आनन्दसे सोता। उसने ऐसे सुख-स्वर्गकी कल्पना भी न की थी। वह मरकर नहीं, जीते जी स्वर्ग पा गया।

थोड़े ही दिनोंमें पौष्टिक पदार्थों के सेवनसे टामीकी चेष्टा

ही कुछ और हो गई। उसका शरीर तेजस्वी और सुसंगठित हो गया। अब वह छोटे-मोटे जीवोंपर स्वयं हाथ साफ करने लगा। जंगलके जंतु अब चौंके, और उसे वहांसे भगा देने का यत्न करने लगे। टामीने एक नई चाल चली। वह कभी किसी पशुसे कहता तुम्हारा फलां शत्रु तुम्हें मार डालनेकी तैयारी कर रहा है; किसीसे कहता फलाँ तुमको गाली देता था। जंगलके जंतु उसके चकमेमें आकर आपसमें लड़ जाते और टामीकी चांदी हो जाती। अंतमें यहां तक नौबत पहुंची कि बड़े बड़े जंतुओंका नाश हो गया। छोटे छोटे पशुओंका उससे मुकालबा करनेका साहस न होता था। उसकी उन्नति और शक्ति देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों यह विचित्र जीव आकाशसे हमारे ऊपर शासन करनेके लिए भेजा गया। टामी भी अब अपनी शिकारबाज़ीके जौहर दिखाकर उनकी इस भ्रांतिको दिखाकर पुष्ट किया करता था। बड़े गर्वसे कहता—"परमात्माने मुझे तुम्हारे ऊपर राज्य करनेके लिये भेजा है। यह ईश्वरकी इच्छा है। तुम आरामसे अपने घरोंमें पड़े रहो। मैं तुमसे कुछ न बोलूंगा, केवल तुम्हारी सेवा करनेके पुरस्कारस्वरूप तुममेंसे एकाध का शिकार कर लिया करूंगा। आखिर मेरे भी तो पेट है; बिना आहारके कैसे जीवित रहूंगा और कैसे तुम्हारी रक्षा करूंगा?" वह अब बड़ी शानसे जंगलमें चारों ओर गौरवान्वित दृष्टिसे ताकता हुआ विचरा करता।

टामीको अब कोई चिन्ता थी तो यह कि इस देशमें मेरा कोई मुद्दई न उठ खड़ा हो। वह नित्य सजग और सशस्त्र रहने लगा। ज्यों-ज्यों दिन गुजरते थे और उसके सुख-भोग का चसका बढ़ता जाता था, त्यों त्यों उसकी चिन्ता भी बढ़ती जाती थी। वह अब बहुधा रातको चौंक पड़ता और किसी अज्ञात शत्रु के पीछे दौड़ता। अक्सर "अन्धा कुक्कुर बतासे भूंके" वाली लोकोक्तिको चरितार्थ करता। वनके पशुओंसे कहता—"ईश्वर न करे कि तुम किसी दूसरे शासक के पंजेमें फंस जाओ। वह तुम्हें पीस डालेगा। मैं तुम्हारा हितैषी हूं; सदैव तुम्हारी शुभकामनामें मग्न रहता हूं। किसी दूसरेसे यह आशा मत रक्खो।" पशु एक हो स्वरसे कहते जब तक हम जियेंगे, आपहीके अधीन रहेंगे."

आखिरकार यह हुआ कि टामीको क्षण भर भी शांतिसे बैठना दुर्लभ हो गया। वह रात-रात और दिन-दिन भर नदी के किनारे इधरसे-उधर चक्कर लगाया करता। दौड़ते-दौड़ते हांफने लगता, बेदम हो जाता. मगर चित्तको शांति न मिलती। कहीं कोई शत्रु न घुस आये।

लेकिन क्वारका महीना आया तो टामीका चित्त एकबार फिर अपने पुराने सहचरोंसे मिलनेके लिये लालायित होने लगा। वह अपने मनको किसी भांति रोक न सका। वह दिन याद आया जब वह दो-चार मित्रोंके साथ किसी प्रेमिका के पीछे गली-गली और कूचे-कूचेमें चक्कर लगाता

था। दो-चार दिन तो उसने सब्र किया, पर अंतमें आवेग इतना प्रबल हुआ कि वह तक्दीर ठोंककर खड़ा हुआ। उसे अब अपने तेज और बलपर अभिमान भी था। दो-चारको तो वही मजा चखा सकता था।

किन्तु नदीके इसपार आते ही उसका आत्मविश्वास प्रातःकालके तमके समान फटने लगा। उसकी चाल मन्द पड़ गई, आप ही आप सिर झुक गया, दुम सिकुड़ गई। मगर एक प्रेमिकाको आते देखकर वह विह्वल हो उठा, उसके पीछे हो लिया। प्रेमिकाको उसकी वह कुचेष्टा अप्रिय लगी। उसने तीव्र स्वरसे उसकी अवहेलना की। उसकी आवाज़ सुनते ही उसके कई प्रेमी आ पहुंचे, और टामीको वहां देखते ही जामेसे बाहर हो गये। टामी सिटपिटा गया। अभी निश्चय न कर सका था कि क्या करूं कि चारों ओरसे उस पर दांतों और नखोंकी वर्षा होने लगी। भागते भी न बन पड़ा। देह लहू-लुहान हो गई। भागा भी, तो शैतानोंका एक दल पीछे था।

उस दिनसे उसके दिलमें शंका-सी समा गई। हर घड़ी यह भय लगा रहता कि आक्रमणकारियोंका दल मेरे सुख और शांतिमें बाधा डालनेके लिये, मेरे स्वर्गको विध्वंस करनेके लिये, आ रहा है। यह शंका पहले भी कम न थी; अब और भी बढ़ गई।

एक दिन उसका चित्त भयसे इतना व्याकुल हुआ कि

उसे जान पड़ा, शत्रु-दल आ पहुँचा। वह बड़े वेगसे नदीके किनारे आया और इधर-से उधर दौड़ने लगा।

दिन बीत गया, रात बीत गई; पर उसने विश्राम न लिया। दूसरा दिन आया और गया, पर टामो निराहार; निर्जल नदीके किनारे चक्कर लगाता रहा।

इस तरह पाँच दिन बीत गए। टामीके पैर लड़खड़ाने लगे, आँखों-तले अँधेरा छाने लगा। क्षुधासे व्याकुल होकर गिर-गिर पड़ता, पर वह शंका किसी भाँति शांत न हुई।

अंतमें सातवें दिन अभागा टामी अधिकारचिंतासे ग्रस्त, जर्जर और शिथिल होकर परलोक सिधारा। उसका कोई पशु उसके निकट न गया। किसीने उसकी चर्चा तक न की; किसीने उसकी लाशपर आँसू तक न बहाए। कई दिनों तक उसपर गिद्ध और कौए मँडलाते रहे, अंतमें अस्थिपंजरोंके सिवा और कुछ न रह गया।



दुराशा

(प्रहसन)

(पात्र)

दयाशंकर—कार्य्यालयके एक साधारण लेखक।

आनन्दमोहन—कालिजका एक विद्यार्थी तथा दयाशंकर का मित्र।

ज्योतिस्वरूप—दयाशंकर का एक सुदूर-सम्बन्धी।

सेवती—दयाशंकरकी पत्नी।

(होलीका दिन)

(समय-९ बजे रात्रि, आनन्दमोहन तथा दयाशंकर वार्तालाप करते जा रहे हैं।)

आ० मो०—हम लोगोंको देर तो नहीं हुई। अभी तो नव बजे होंगे।

द० शं०—नहीं, अभी क्या देर होगी।

आन०—वहां बहुत इन्तजार न कराना। क्योंकि एक तो दिन भर गली गली घूमनेके पश्चात् मुझमें इन्तजार करनेकी शक्ति ही नहीं, दूसरे ठीक ग्यारह बजे बोर्डिंग हौसका दरवाजा बन्द हो जाता है।

द० शं०—अजी, चलते चलते थाली सामने आयेगी। मैंने तो सेवतीसे पहलेही कह दिया है कि नौ बजे तक सब सामान तैयार रखना।

आ०—तुम्हारा घर तो अभी दूर है। यहां मेरे पैरोंमें चलनेकी शक्ति ही नहीं। आओ कुछ बात चीत करते चलें। भला यह तो बताओ कि परदेके सम्बन्धमें तुम्हारा क्या विचार है। भाभीजी मेरे सामने आयेंगी या नहीं, क्या मैं उनके चन्द्र मुखका दर्शन कर सकूंगा ? सच कहो।

द०—तुम्हारे और मेरे बीचमें तो भाईचारेका सम्बन्ध है। यदि सेवती मुह खोले हुये भी तुम्हारे सम्मुख आ जाय तो मुझे कोई ग्लान नही। किन्तु साधारणतः मैं परदेकी प्रथाका सहायक और समर्थक हूं। क्यों कि हम लोगोंकी सामाजिक नीति इतनी पवित्र नहीं है कि कोई स्त्री अपने लज्जाभावको चोट पहुंचाये बिनाही अपने घरसे बाहर निकले।

आ०—मेरे विचारमें तो पर्दाही कुचेष्टाओंका मूल कारण है। पर्देसे स्वभावतः पुरुषोंके चित्तमें उत्सुकता उत्पन्न होती है और वह भाव कभी तो बोली ठोलीमें प्रगट होता है और कभी नेत्रोंकी कटाक्षोंमें।

द०—जब तक हम लोग इतने दृढ़प्रतिज्ञ न हो जावें कि सतीत्वरक्षाके पीछे प्राण भी बलिदान कर दें तब तक परदेकी प्रथाका तोड़ना समाज मार्गमें विष बोना है।

आ०—आपके विचारसे तो यही सिद्ध होता है कि यूरोपमें सतीत्वरक्षाके लिये रात दिन रुधिरकी नदियां बहा करती हैं।

द०—वहां इसी बेपर्दगीने तो सतीत्वधर्मको निर्मूल कर

दिया है। अभी मैंने किसी समाचारपत्रमें पढ़ा था कि एक स्त्रीने किसी पुरुषपर इस प्रकारका अभियोग चलाया था कि उसने मुझे निर्भीकतापूर्वक कुदृष्टिसे घूरा था किन्तु विचारकने उस स्त्रीको [illegible] देय कर यह कह कर मुकदमा खारिज कर दिया कि प्रत्येक मनुष्यको अधिकार है कि हाट बाटमें नवजवान स्त्रियोंको घूर कर देखे। मुझे तो यह अभियोग और यह फैसला सर्वथा हास्यजनक जान पड़ते हैं और किसी भी समाजको लज्जित करनेवाले हैं।

आ०—इस विषयको छोड़ो। यह तो बताओ कि इस समय क्या क्या खिलाओगे। मिष्ट नहीं तो मिष्टका चरचाही हो।

इ०—यह तो सेवतीकी पाककला कुशलतापर निर्भर है। पूरियां और कचौरियां तो होंगी ही। यथासम्भव खूब खरी भी होंगी। यथाशक्ति खस्ते और समोसे भी आवेंगे। खीर आदिके बारेमें भविष्यवाणी की जा सकती है। आलू और गोभीकी शोरबेदार तरकारी और मटर, दालमोठ भी मिलेंगे। फीरिनीके लिये भी कह आया था। गूलरके कोफ्ते और आलूके कबाब-यह दोनों सेवती खूब पकाती है। इनके सिवा दहीबड़े और चटनी अचारकी चर्चा तो व्यर्थही है। हां, शायद किशमिशका रायता भी मिले जिसमें केसरकी सुगंध उड़ती होगी।

अ०—मित्र, मेरे मुंहमें तो पानी भर आया। तुम्हारी

बातोंने तो मुझे पैरोंमें जान डाल दी। शायद पर होता तो उड़कर पहुंच जाता।

द०—लो, अब आही जाते हैं। यह तम्बाकूवालेकी दूकान है इसके बाद चौथा मकान मेराही है।

आ०—मेरे साथ बैठ कर एकही थालोंमें खाना। कहीं ऐसा न हो कि अधिक खानेके लिये मुझे भाभीजीके सामने लज्जित होना पड़े।

द०—इससे तुम निश्शंक रहो। उन्हें मिताहारी आदमीसे चिढ़ है। वे कहती हैं—"जो खायेगाही नहीं वह दुनियामें काम क्या करेगा।" आज शायद तुम्हारी बदौलत मुझे भी काम करनेवालोंकी पंक्तिमें स्थान मिल जावे। कमसे कम कोशिश तो ऐसीही करना।

आ०—भई, यथाशक्ति चेष्टा करूंगा। शायद तुम्हेंही प्रशंसापत्र मिल जावे।

द०—यह लो आ गये। देखना सीढ़ियोंपर अंधेरा है। शायद चिराग जलाना भूल गई।

आ०—कोई हर्ज नहीं। तिमिरलोकहीमें तो सिकन्दरको अमृत मिला था।

द०—अन्तर इतनाही है कि तिमिरलोकमें पैर फिसले तो पानीमें गिरोगे और यहां फिसला तो पथरीली सड़कपर।

(ज्योतिस्वरूप आते हैं।)

ज्योति०—सेवक भी उपस्थित हो गया। देर तो नहीं हुई? डबलमार्च करता आया हूं।

द०—नहीं, अभी तो देर नहीं हुई। शायद आपकी भोजना-भिलाश आपको समयसे पहले खींच लायी।

आ०—आपका परिचय कराइये। मुझे आपसे देखा देखी नहीं है।

द०—(अंगरेजीमें) मेरे सुदूरके सम्बन्धमें साले होते हैं। एक वकीलके मुहर्रिर हैं। जबर्दस्ती नाता जोड़ रहे हैं। सेवतीने निमंत्रण दिया होगा। मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। ये अंगरेजी नहीं जानते।

आ०—इतना तो अच्छा है। अंगरेजीमेंही बातें करेंगे।

द०—सारा मजा किरकिरा हो गया। कुमानुषोंके साथ बैठकर खाना फोड़ेके आपरेशन करानेके बराबर है।

आ०—किसी उपायसे इन्हें विदा कर देना चाहिये।

द०—मुझे तो चिन्ता यह है कि अब संसारके कार्यकर्ताओंमें हमारी और तुम्हारी गणनाही न होगी। पाला इसीके हाथ रहेगा।

आ०—खैर ऊपर चलो। आनन्द तो जब आवे कि इन महाशयको आधे पेटही उठना पड़े।

(तीनों आदमी ऊपर जाते हैं।)

द०—अरे! कमरेमें भी रोशनी नहीं, घुप अंधेरा है। लाला ज्योतिस्वरूप, देखियेगा कहीं ठोकर खाकर न गिर पड़ियेगा।

आ०—अरे गजब.........(अलमारीसे टकराकर धमसे गिर पड़ता है)।

द०—लाला ज्योतिस्वरूप, क्या आप गिरे। चोट तो नहीं आई ?

आ०—अजी, मैं गिर पड़ा। कमर टूट गई। तुमने अच्छी दावत की।

द०—भले आदमी, सैकड़ों बार तो आये हो। मालूम नहीं था कि सामने आलमारी रखी हुई है? क्या ज्यादा चोट लगी ?

आ०—भीतर जाओ। थालियां लाओ और भाभीजीसे कह देना कि थोड़ासा तेल गर्म कर लें। मालिश कर लूंगा।

ज्योति०—महाशय, यह आपने क्या रख छोड़ा है। जमीन पर गिर पड़ा।

द०—उगालदान तो नहीं लुढ़का दिया। हां, वही तो है। सारा फर्श खराब हो गया।

आ०—बरधुवर, जाकर लालटेन जला लाओ। कहां लाकर कालकोठरीमें डाल दिया।

द०—(घरमें जाकर) अरे ! यहां भी अन्धेरा है ! चिराग तक नहीं। सवती कहां हो ?

सव०—बैठी तो हूं।

द्या०—यह बात क्या है। चिराग क्यों नहीं जले। तबीयत तो अच्छी है ?

सव०—बहुत अच्छी है। बारे, तुम आ तो गये। मैंने समझा था कि आज आपका दर्शन ही न होगा।

द०—ज्वर है क्या। कबसे आया है ?

सेव०—नहीं, ज्वर ख्वर कुछ नहीं चैनसे बैठी हूं।

द०—तुम्हारा पुराना बायगोला तो नहीं उभर आया ?

सेव०—(व्यङ्गसे) हां, बायगोलाही तो है। लाओ कोई दवा है ?

द०—अभी डाक्टरके यहांसे मंगवाता हूं।

से०—कुछ मुफ्तकी रकम हाथ आ गई है क्या ? लाओ मुझे दे दो अच्छी हो जाऊं।

द०—तुम तो हँसी कर रही हो। साफ साफ कोई बात नहीं कहतीं। क्या मेरे देरसे आनेका यही दण्ड है ? मैंने नौ बजे आनेका वचन दिया था शायद दो चार मिनट अधिक हुए हों। सब चीजें तैयार है न ?

से०—हां, बहुतही खस्ता। आधोआध मक्खन डाला था।

द०—आनन्दमोहनसे मैंने तुम्हारी खूब प्रशंसा की है।

सेव०—ईश्वरने चाहा तो वे भी प्रशंसाही करेंगे। पानी रख आओ हाथ वाथ तो धोवें।

द०—चटनियां भी बनवा ली है न ? आनन्दमोहनको चटनियोंसे बहुत प्रेम है।

से०—खूब चटनी खिलाओ। सगी बना रखी है।

दया०—पानीमें केवड़ा डाल दिया है ?

सेव०—हां, लेजाकर पानी रख आओ। पीना आरम्भ करें प्यास लगी होगी।

आ० मो०—(बाहरसे) मित्र, शीघ्र आओ। अब इन्तजार करनेकी शक्ति नहीं है।

दया०-जल्दी मचा रहा है। लाओ थालियां परसा।

सत्य०-पहले चटनी, और पानी तो रख आओ।

दया०-(रसोईमें जाकर) अरे! यहां तो चूल्हा बिल्कुल ठंढा पड़ गया है। महरी आज सबेरे ही काम कर गई क्या?

सत्य०-हां, खाना पकनेसे पहले ही आ गयी थी।

दया०-बर्तन सब मजे हुए रखे हैं। क्या कुछ पकाया ही नहीं?

सत्य०-भूतप्रेत आकर खा गये होंगे।

दया०-क्या चूल्हा ही नहीं जलाया? गजब कर दिया।

सत्य०-गजब मैंने कर दिया या तुमने?

दया०-मैंने तो सब सामान लाकर रख दिया था। तुमसे बार बार पूछ लिया था कि किसी चीज़की कमी हो तो बतलाओ फिर खाना क्यों न पका? क्या विचित्र रहस्य है! भला मैं इन दोनोंको क्या मुख दिखाऊंगा।

आ०-मित्र, क्या तुम अकेले ही सब सामग्री चट कर रहे हो इधर भी लोग आशा लगाये बैठे हैं। इन्तज़ार दम तोड़ रहा है।

सत्य०-यदि सब सामग्री लाकर रख ही देते तो मुझे बनानेमें क्या आपत्ति थी।

दया०-अच्छा, यदि दो एक वस्तुओंकी कमी हो रह गई थी तो इसका क्या अभिप्राय कि चूल्हा ही न जले। यह तो किसी अपराधका दण्ड दिया है। आज होलीका दिन और यहां आग ही न जली!

संब०—जब तक ऐसे चरके न खाओगे । तुम्हारी आंखें न खुलेंगी ।

दया०—तुम तो पहेलियोंमें बातें कर रही हो । आखिर किस बातपर अप्रसन्न हो ? मैंने कौनसा अपराध किया है । जब मैं यहांसे जाने लगा था तुम प्रसन्नमुख थीं और इसके पहले भी मैंने तुम्हें दुखी नहीं देखा था । तो मेरी अनुपस्थितिमें कौन ऐसी बात हो गई कि तुम इतनी रूठ गईं ?

संब०—घरमें स्त्रियोंको क़ैद करनेका यह दण्ड है ।

दया०—अच्छा तो यह इस अपराधका दण्ड है ? मगर तुमने मुझसे परदेकी निन्दा नहीं की । बल्कि इस विषयपर जब कोई बात छिड़ती थी तो तुम मेरे विचारोंसे सहमत ही रहती थीं । मुझे आज ही ज्ञात हुआ है कि तुम्हें परदेसे इतनी घृणा है । क्या दोनों अतिथियोंसे यह कह दूं कि परदेकी सहायताके दण्डमें मेरे यहां अनशनव्रत है । आप लोग ठण्डी २ हवा खायें ।

संब०—जो चीज़ें तैयार हैं । वह जाकर खिलाओ और जो नहीं है उसके लिये क्षमा मांगो ।

दया०—मैं तो कोई चीज़ तैयार नहीं देखता ।

संब०—हैं क्यों नहीं, चटनी बना ही डाली है और पानी भी पहलेसे तैयार है ।

दया०—यह दिल्लगी तो हो चुकी । सचमुच बतलाओ खाना क्यों नहीं पकाया । क्या तबीयत खराब हो गई थी अथवा

किसी कुत्तेने रसोईं आकर अपवित्र कर दिया था ?

आ०-बाहर क्यों नहीं आते हो भाई, भीतरही भीतर क्या भिसकौट कर रहे हो। अगर सब चीजें नहीं तैयार हैं, नहीं सही। जो कुछ तैयार हो वही लाओ। इस समय तो सादी पूरियां भी खस्तेमें अधिक स्वादिष्ट जान पड़ेंगी। कुछ लाओ, भला श्रीगणेश तो हो। मुझसे अधिक उत्सुक मेरे मित्र मुंशी ज्योतिस्वरूप हैं।

सेव०-भैयाने दावतके इन्तजारमें आज दोपहरको भी खाना न खाया होगा।

दया०-बात क्यों टालती हो। मेरी बातोंका जवाब क्यों नहीं देती।

सेव०-नहीं जवाब देती, क्या कुछ आपका कर्ज खाया है या रसोई बनानेके लिये लौंडी हूं ?

दया०-यदि मै घरका काम करके अपनेको दास नहीं समझता तो तुम घरका काम करके अपनेको दासी क्यों समझती हो !

सेव०-मै नहीं समझती, तुम समझते हो।

दया०-क्रोध मुझे आना चाहिये, उल्टी तुम बिगड़ रही हो।

सेव०-तुम्हें क्यों मुझपर क्रोध आना चाहिये ? इसीलिये कि तुम पुरुष हो।

दया०-नहीं इसलिये कि तुमने आज मुझे मेरे मित्रों तथा सम्बन्धियोंके सम्मुख नीचा दिखाया।

सेव०-नीचा दिखाया तुमने मुझे, कि मैंने तुम्हें ? तुम तो किसी प्रकार क्षमा करा लोगे किन्तु कालिमा तो मेरे मुख लगेगी।

आ०-भई अपराध क्षमा हो, मैं भी वहीं आता हूं। यहां तो किसी पदार्थकी सुगन्ध तक नहीं आती।

दया०-क्षमा क्या करा लूँगा, लाचार होकर बहाना करना पड़ेगा।

सेव०-चटनी खिला कर पानी पिलाओ। इतना सत्कार बहुत है। होलीका दिन है, यह भी एक प्रहसन रहेगा।

दया०-प्रहसन क्या रहेगा कहीं मुख दिखाने योग्य न रहूंगा। आखिर तुम्हें यह क्या शरारत सूझी।

सेव०-फिर वही बात! शरारत क्यों सूझती! क्या तुमसे और तुम्हारे मित्रोंसे कोई बदला लेना था? लेकिन जब लाचार हो गई तो क्या करती। तुम तो दस मिनट पछता कर और मुझपर अपना क्रोध मिटा कर आनन्दसे सोओगे। यहाँ तो मैं तीन बजेसे बैठी भीक रही हूं। और यह सब तुम्हारे करतूत है।

दया०-यही तो पूछता हूं कि मैंने क्या किया?

सेव- तुमने मुझे पिंजरेमें बन्द कर दिया, पर काट दिये! मेरे सामने दाना रख दो तो खाऊं, सुघियामें पानी डाल दो तो पीऊं, यह किसका कसूर है?

दया०-भाई छिपी छिपी बातें न करो। साफ़ साफ़ क्यों नहीं कहती।

आ०—विदा होना हूं मौज उडाइये। नही बाजारकी दूकानें भी बन्द हो जायंगी। खूब चकमा दिया मित्र, फिर समझेंगे। लाला ज्योतिस्वरूप तो बैठे बैठे अपनी निराशाको खर्राटोंसे भुला रहे हैं। मुझे यह सन्तोष कहां! तारे भी नही हैं कि बैठ कर उन्हें ही गिनूं। इस समय तो स्वादिष्ट पदार्थोंको स्मरण कर रहा हूं।

श्या०—बन्धुवर, दो मिनट और सन्तोष करो। आया। हां! लाला ज्योतिस्वरूपसे कह दो कि किसी हलवाईकी दूकानसे पूरियां ले आयें। यहां कम पड़ गई हैं। आज दोपहर हीसे इनकी तबीअत खराब हो गई है। मेरे मेजकी दराजमें रुपये रखे हुये हैं।

सेव०—साफ साफ़ तो यही है कि तुम्हारे परदेने मुझे पंगुल बना दिया है। कोई मेरा गला भी घोंट जाय तो फरियाद नही कर सकती।

श्या०—फिर भी वही अन्योक्ति! इस विषयका अन्त भी होगा या नहीं।

से० दियासलाई तो थी हो नही, फिर आग कैसे जलाती!

श्या०—अहा! मैंने जाते समय दियासलाईकी डिबिया जेबमें रख ली थी...जरासी बातका तुमने इतना बतगड़ बना दिया। शायद मुझे तंग करनेके लिये अवसर ढूंढ रही थी। कमसे कम मुझे तो ऐसा ही जान पडता है।

सेव०—यह तुम्हारी ज्यादती है। ज्योंहीं तुम सीढ़ीसे

उतरे मेरी दृष्टि डिबियापर पड़ गई किन्तु वह न्दापता थी ताड़ गई कि तुम ले गये। तुम मुश्किलसे दरवाजेतक पहुंचे होगे। अगर जोरसे पुकारती तो तुम सुन लेते। लेकिन नीचे दूकानदारोंके कानमें भी आवाज जाती तो सुन कर तुम न जाने मेरी कौन कौन दुर्दशा करते। हाथ मलकर रह गई। उसी समयसे बहुत व्याकुल हो रही हूं कि किसी प्रकार भी दियासलाई मिल जाती तो अच्छा होता। मगर कोई वश न चलता था अन्तमें लाचार होकर बैठ रही।

दया०—यह कहो कि तुम मुझे तंग करना चाहती थी। नहीं तो क्या आग या दियासलाई न मिल जाती।

सेव०-अच्छा, तुम मेरी जगह होते तो क्या करते? नीचे सबके सब दूकानदार हैं। और तुम्हारी जान पहचानके हे। घरके एक ओर पण्डितजी रहते हैं। इनके घरमें कोई स्त्री नहीं। सारे दिन फाग हुई है बाहरके सैकडों आदमी जमा थे दूसरी ओर बंगाली बाबू रहते हैं। उनके घरकी स्त्रियाँ किसी सम्बन्धीसे मिलने गई हैं। और अब तक नहीं आईं। इन दोनों घरोंसे भी बिना छज्जे पर आये चीज न मिल सकती थी। लेकिन शायद तुम इतनी बेपर्दगी को क्षमा न करते। और कौन ऐसा था जिससे कहती कि कहींसे आग ला दो। महरी तुम्हारे सामने ही चौका बर्तन करके चली गयी थी। रह रह कर तुम्हारे ही ऊपर क्रोध आता था।

दया०-तुम्हारी लाचारीका कुछ अनुमान कर सकता हूं

पर मुझे अब भी यह माननेमें आपत्ति है कि दियासलाईका न होना चूल्हा न जलनेका वास्तविक कारण हो सकता है।

सेव०—तुम्हीसे पूछती हूं कि बतलाओ क्या करती ?

दया०—मेरा मन इस समय स्थिर नहीं है किन्तु मुझे विश्वास है कि यदि मैं तुम्हारी स्थानपर होता तो होलीके दिन और खासकर जब अतिथि भी उपस्थित हों चूल्हा ठण्डा न रहता। कोई न कोई उपाय अवश्य ही निकालता।

सेव०—जैसे ?

दया०—एक रुक्का लिखकर किसी दुकानदारके सामने फेंक देता।

सेव०—यदि मैं ऐसा करती तो शायद तुम आंख मिलाने का मुझपर कलंक लगाते।

दया०—अन्धेरा हो जानेपर सिरसे पैर तक चादर ओढ़ कर बाहर निकल जाता और दियासलाई ले आता। घण्टे दो घण्टेमें अवश्यही कुछ न कुछ तैयार हो जाता ऐसा उपवास तो न करना पड़ता।

सेव०—बाजार जानेसे मुझे तुम गली गली घूमनेवाली कहने और गला काटने पर उतारू हो जाते। तुमने मुझे कभी भी इतनी स्वतंत्रता नहीं दी। यदि कभी स्नान करने जाती हूं तो गाड़ीका पट बन्द रहता है।

दया०—अच्छा, तुम जीती और मैं हारा। यह सदैवके लिये उपदेश मिल गया कि ऐसे अत्यावश्यक समय पर तुम्हे

घरसे बाहर निकलनेकी स्वतंत्रता है।

संव०–मैं तो इसे आकस्मिक समय नहीं कहती। आकस्मिक समय तो यह है कि दैवात घरमें कोई बीमार हो जाय और उसे डाक्टरके यहां ले जाना आवश्यक हो।

दया०–निस्सन्देह वह समय आकस्मिक है। इस दशामें तुम्हारे जानेमें कोई हस्तक्षेप नहीं।

संव०–और भी आकस्मिक समय गिनाऊँ!

दया०– नहीं भाई, इसका फैसला तुम्हारी बुद्धिपर निर्भर है।

आ०–मित्र, सन्तोषकी सीमा तो अन्त हो गई अब प्राण-पीड़ा हो रही है। ईश्वर करे घर आबाद रहे, विदा होता हूं।

दया०–बस एक मिनट और। उपस्थित हुआ।

संव०–चटनी और पानी लेते जाओ और पूरियां बाजार-से मंगवा लो। इसके सिवा इस समय हो ही क्या सकता है।

दया०–(मरदाने कमरेमें आकर) पानी लाया हूं प्यालि-योंमें चटनी है आपलोग जबतक भोग लगावें। मैं अभी आता हूं।

आ०–धन्य हे ईश्वर ! भला तुम बाहर तो निकले। मैंने तो समझा था कि एकांतवास करने लगे। मगर निकले भी तो चटनियां लेकर। वह स्वादिष्ट वस्तुयें क्या हुई जिनका आपने वादा किया था और जिनका स्मरण मैं प्रेमानुरक्त भावसे कर रहा हूं।

दया०-ज्योतिस्वरूप कहां गये?

आ०-ऊर्द्ध संसारमें भ्रमण कर रहे हैं। बड़ा ही अद्भुत उदासीन मनुष्य है कि आनेही आते सो गया और अभी तक नहीं चौंका।

दया०—मेरे यहां एक दुर्घटना हो गई। उसे और क्या कहूं। सब सामान मौजूद और चूल्हेमें आग न जली।

आ०-खूब? यह एक ही रही। लकड़ियां न रही होंगी।

घरमें तो लकड़ियोंका पहाड़ लगा है। अभी थोड़े ही दिन हुये कि गांवसे एक गाड़ी लकड़ी आ गई थी। दिया सलाई न थी।

आ०—(अट्टहास कर) वाह! यह अच्छा प्रहसन हुआ। थोड़ी सी भूलने सारा स्वप्न ही नष्ट कर दिया। कमसे कम मेरी तो बधिया बैठ गयी।

दया०—क्या कहूं मित्र, अत्यन्त लज्जित हूं। तुमसे सत्य कहता हूं। आजसे मैं परदेका शत्रु हो गया। इस निगोड़ी प्रथाकी बन्धनने ठीक होलीके दिन ऐसा विश्वासघात की जिसकी कभी भी संभावना न थी। अच्छा अब बतलाओ बाजारसे लाऊं पूरियां। अभी तो ताज़ी मिल जायेंगी।

आन०—बाजारका रास्ता तो मैंने भी देखा है। कष्ट न करो जाकर बोर्डिंग हौसमें खा लूंगा। रहे ये महाशय, मेरे विचारमें तो इन्हें छेड़ना ठीक नहीं पड़े पड़े खर्राटे लेने दो प्रातःकाल चौकेंगे तो घरका मार्ग पकड़ेंगे।

दया०—तुम्हारा यों वापस जाना मुझे खल रहा है। क्या सोचा था क्या हुआ। मजे ले ले कर समोसे और कोफते खाते और गपड़चौथ मचाते। सभी आशायें मिट्टीमें मिल गयीं। ईश्वरने चाहा तो शीघ्र इसका प्रायश्चित करूंगा।

आन०—मुझे तो इस बातकी प्रसन्नता है कि तुम्हारा सिद्धान्त टूट गया। अब इतनी आज्ञा दो कि भाभीजीको धन्यवाद दे आऊं।

दया०—शौकसे जाओ।

आन०—(भीतर जाकर) भाभीजीको साष्टांग प्रणाम कर रहा हूं। यद्यपि कि आजके आकाशी भोजसे मुझे दुराशा तो अवश्य हुई किन्तु वह उस आनन्दके सामने शून्य है जो भाई साहबके विचार परिवर्तनसे हुआ है। आज एक विया सलाईने जो शिक्षा प्रदान की है वह लाखों प्रामाणिक प्रमाणोंसे भी संभव नहीं है। इसके लिये मैं आपको सहर्ष धन्यवाद देता हूं। अबसे बन्धुवर परदेके पक्षपाती न होंगे यह मेरा अटल विश्वास है।

(पटाक्षेप)

गृह-दाह

(१)

सत्यप्रकाशके जन्मोत्सवमें लाला देवप्रकाशने बहुत रुपये खर्च किये थे। उसका विद्यारम्भ संस्कार भी खूब धूम धामसे किया गया। उसके हवा खानेको एक छोटी सी गाड़ी थी। शामको नौकर उसे टहलाने ले जाता था। एक नौकर उसे पाठशाला पहुंचाने जाता। दिन भर वहीं बैठा रहता और उसे साथ लेकर घर आता था। कितना सुशील, होनहार बालक था! गोरा मुखड़ा, बड़ी बड़ी आंखें, ऊंचा मस्तक पतले पतले लाल अधर, भरे हुये हाथ पांव। उसे देखकर सहसा मुंहसे निकल पड़ता था—भगवान इसे जिला दे, प्रतापी मनुष्य होगा। उसकी बालबुद्धिकी प्रखरतापर लोगोंको आश्चर्य होता था। नित्य उसके मुखचन्द्रपर हंसी खेलती रहती थी। किसीने उसे हठ करते या रोते नहीं देखा।

वर्षाके दिन थे। देवप्रकाश बहिनको लेकर गंगास्नान करने गये। नदी खूब चढ़ी हुई थी; मानों अनाथकी आंखें हों। उनकी पत्नी निर्मला जलमें बैठकर जलक्रीड़ा करने लगी। कभी आगे जाती कभी पीछे जाती, कभी डुबकी मारती, कभी अञ्जुलियोंसे छींटे उड़ाती। देवप्रकाशने कहा—अच्छा अब निकलो, नहीं सरदी हो जायगी। निर्मलाने कहा—कहो तो मैं छाती तक पानीमें चली जाऊं?

देवप्रकाश—और जो कहीं पैर फिसल जाय !

निर्मला—पैर क्या फिसलेगा !

यह कहकर वह छाती तक पानीमें चली गई। पतिने कहा—अच्छा अब आगे पैर न रखना। किन्तु निर्मलाके सिर पर मौत खेल रही थी। यह जलक्रीड़ा नहीं; मृत्युक्रीड़ा थी। उसने एक पग और आगे बढ़ाया और फिसल गई। मुंहसे एक चीख निकली, दोनों हाथ सहारेके लिये ऊपर उठे और फिर जलमग्न हो गये। एक पलमें प्यासी नदी उसे पी गई। देवप्रकाश खड़े तौलियेसे देह पोंछ रहे थे। तुरंत पानीमें कूदे, साथका कहार भी कूदा। दो मल्लाह भी कूद पड़े। सबने डुबकियां मारीं टटोला पर निर्मलाका पता न चला। तब डोंगी मंगवाई गई। मल्लाहोंने बार बार गोते मारे पर लाश हाथ न आई। देवप्रकाश शोकमें डूबे हुये घर आये। सत्यप्रकाश किसी उपहारकी आशामें दौड़ा। पिताने गोदमें उठा लिया और बड़े यत्न करनेपर भी अपनी सिसकीको न रोक सके। सत्यपालने पूछा—अम्मा कहां हैं ?

देव०—बेटा, गंगाने उन्हें नेवता खानेके लिये रोक लिया।

सत्यप्रकाशने उनके मुखकी ओर जिज्ञासाभावसे देखा और आशय समझ गया। अम्मा, अम्मा कहकर रोने लगा।

(२)

मातृहीन बालक संसारका सबसे करुणाजनक प्राणी है। दीनसे दीन प्राणियोंको भी ईश्वरका आधार होता है, जो

उनके हृदयको सम्हालता रहता है। मातृहीन बालक इस आधारसे वंचित होता है। माता ही उसके जीवनका एकमात्र आधार होती है। माताके बिना वह पंखहीन पक्षी है।

सत्यप्रकाशको एकान्तसे प्रेम हो गया। अकेला बैठा रहता। वृक्षोंमें उसे कुछ कुछ उस सहानुभूतिका अज्ञात अनुभव होता था, जो घरके प्राणियोंमें उसे न मिलती थी। माताका प्रेम था, तो सभी प्रेम करते थे, माताका प्रेम उठ गया, तो सभी निष्ठुर हो गये। पिताकी आंखोंमें भी वह प्रेम-ज्योति न रही। दरिद्रको कौन भिक्षा देता है?

छः महीने बीत गये। सहसा एक दिन उसे मालूम हुआ मेरी नई माता आनेवाली है। दौड़ा पिताके पास गया और पूछा--क्या मेरी नई माता आयेगी? पिताने कहा-हां, बेटा वे आकर तुम्हें प्यार करेंगी।

सत्य--क्या मेरी ही मां स्वर्गसे आ जायेंगी?

देव---हां वही माता आ जायेंगी।

सत्य---मुझे उसी तरह प्यार करेंगी?

देवप्रकाश इसका क्या उत्तर देते? मगर सत्यप्रकाश उस दिनसे प्रसन्नमन रहने लगा। अम्मां आयेंगी! मुझे गोदमें लेकर प्यार करेंगी! अब मैं उन्हें कभी दिक़ न करूंगा, कभी ज़िद न करूंगा, उन्हें अच्छी अच्छी कहानियां सुनाया करूंगा।

विवाहके दिन आये। घरमें तैयारियां होने लगीं। सत्य प्रकाश खुशीसे फूला न समाता। मेरी नई अम्मा आयेंगी।

बारातमें वह भी गया। नये नये कपड़े मिले। पालकी पर बैठा। नानीने अन्दर बुलाया और उसे गोदमें लेकर एक अशरफी दी। यहीं उसे नई माताके दर्शन हुये। नानीने नई मातासे कहा—बेटी कैसा सुन्दर बालक है! इसे प्यार करना।

सत्यप्रकाशने नई माताको देखा और मुग्ध हो गया। बच्चे भी रूपके उपासक होते हैं। एक लावण्यमयी मूर्ति आभूषणोंसे लदी सामने खड़ी थी। उसने दोनों हाथोंसे उसका अञ्चल पकड़ कर कहा—अम्मां!

कितना अरुचिकर शब्द था, कितना लज्जायुक्त, कितना अप्रिय! वह ललना जो 'देवप्रिया' नामसे सम्बोधित होती थी, यह उत्तरदायित्व, त्याग और क्षमाका सम्बोधन न सह सकी। अभी वह प्रेम और विलासका सुखस्वप्न देख रही थी—यौवनकालकी मदमय वायुतरंगोंमें आंदोलित हो रही थी। इस शब्दने उसके स्वप्नको भंग कर दिया। कुछ रुष्ट होकर बोली—मुझे अम्मा मत कहो।

सत्यप्रकाशने विस्मित नेत्रोंसे देखा उसका बालस्वप्न भी भंग हो गया। आंखें डबडबा गईं। नानीने कहा—बेटा, देखो लड़केका दिल छोटा हो गया। वह क्या जाने क्या कहना चाहिये। अम्मा कह दिया तो तुम्हें कौनसी चोट लग गई? देवप्रियाने कहा—मुझे अम्मा न कहे।

(३)

सौतका पुत्र विमाताकी आंखोंमें क्यों इतना खटकता है।

इसका निर्णय आज तक किसी मनोभावके पण्डितने नहीं किया। हम किस गिनतीमें हैं। देवप्रिया जब तक गर्भिणी न हुई वह सत्यप्रकाशसे कभी कभी बातें करती, कहानियां सुनाती किन्तु गर्भिणी होते ही उसका व्यवहार कठोर हो गया, और प्रसवकाल ज्यों ज्यों निकट आता था, उसकी कठोरता बढ़ती ही जाती थी। जिस दिन उसकी गोदमें एक चांदसे बच्चेका आगमन हुआ, सत्यप्रकाश खूब उछला कूदा और सौरगृहमें दौड़ा हुआ, बच्चेको देखने गया। बच्चा देवप्रियाकी गोदमें सो रहा था। सत्यप्रकाशने बड़ी उत्सुकतासे बच्चेको विमाताकी गोदसे उठाना चाहा कि सहसा देवप्रियाने सरोषस्वरमें कहा—खबरदार, इसे मत छूना, नहीं तो कान पकड़ कर उखाड़ लूंगी!

बालक उलटे पांव लौट आया और कोठेकी छतपर जाकर खूब रोया, कितना सुन्दर बच्चा है! मैं उसे गोदमें लेकर बैठता, तो कैसा मजा आता! मैं उसे गिराता थोड़े ही, फिर इन्होंने क्यों मुझे झिड़क दिया? भोला बालक क्या जानता था कि इस झिड़कीका कारण माताकी सावधानी नहीं, कुछ और ही है।

एक दिन शिशु सो रहा था। उसका नाम ज्ञानप्रकाश रखा गया था। देवप्रिया स्नानागारमें थी। सत्यप्रकाश चुपकेसे आया और बच्चेका ओढ़ना हटा कर उसे अनुरागमय नेत्रोंसे देखने लगा। उसका जी कितना चाहा कि उसे

गोदमें लेकर प्यार करूं। पर डरके मारे उसने उसे उठाया नहीं, केवल उसके कपोलोंको चूमने लगा। इतनेमें देवप्रिया निकल आई। सत्यप्रकाशको बच्चेको चूमते देखकर आग हो गई। दूर ही से डाँटा —हट जा वहांसे!

सत्यप्रकाश माताको दीननेत्रोंसे देखता हुआ बाहर निकल आया।

संध्या समय उसके पिताने पूछा–तुम लल्लाको क्यों रुलाया करते हो?

सत्य०—मैं तो उसे कभी नहीं रुलाता। अम्मा खिलानेको नहीं देतीं।

देव०—झूठ बोलते हो। आज तुमने बच्चेको चुटकी काटी।

सत्य०—जी नहीं। मैं तो उसकी मुच्छियां ले रहा था।

देव०—झूठ बोलता है!

सत्य०—मैं झूठ नहीं बोलता।

देवप्रकाशको क्रोध आ गया। लड़केको दो तीन तमाचे लगाये। पहिली बार यह ताड़ना मिली, और निरपराध! इसने उसके जीवनकी काया पलट कर दी।

(४)

उस दिनसे सत्यप्रकाशके स्वाभावमें एक विचित्र परिवर्तन दिखायी देने लगा। वह घरमें बहुत कम आता। पिता आते, तो उनसे मुँह छिपाता फिरता। कोई खाना खानेको बुलाने आता, तो चोरोंकी भांति दबकता हुआ जाकर खा लेता।

न कुछ माँगता, न कुछ बोलता। पहिले अत्यन्त कुशाग्रबुद्धि था। उसकी सफाई, सलीक़े और फुरतीपर लोग मुग्ध हो जाते थे। अब वह पढ़नेसे जी चुराता, मैले-कुचैले कपड़े पहिने रहता। घरमें कोई प्रेम करनेवाला न था। बाजारके लड़कोंके साथ गली गली घूमता, कनकौवे लूटता। गालियाँ बकना भी सीख गया। शरीर भी दुर्बल हो गया। चेहरेकी कान्ति ग़ायब हो गयी। देवप्रकाशको अब आये दिन उसकी शरारतोंके उलहने मिलने लगे और सत्यप्रकाश नित्य घुड़कियाँ और तमाचे खाने लगा, यहाँ तक कि अगर वह कभी घरमें किसी कामसे चला जाता, तो सब लोग दूर दूर करके दौड़ते।

ज्ञानप्रकाशको पढ़ानेके लिए मास्टर आता था। देवप्रकाश उसे रोज़ सैर कराने साथ ले जाते। हँसमुख लड़का था। देवप्रिया उसे सत्यप्रकाशके सायेसे भी बचाती रहती थी। दोनों लड़कोंमें कितना अन्तर था! एक साफ़-सुथरा, सुन्दर कपड़े पहिने, शील और विनयका पुतला, सच बोलनेवाला देखनेवालोंके मुँहसे अनायास ही दुआ निकल आती थी, दूसरा मैला, नटखट चोरोंकी तरह मुह छिपाये हुये, मुँह फट, बात बात पर गालियाँ बकनेवाला। एक हरा भरा पौधा था, प्रेमसे प्लावित स्नेहसे सिंचित; दूसरा सूखा हुआ, टेढ़ा, पल्लवहीन नववृक्ष था; जिसकी जड़ोंको एक मुद्दतसे पानी नहीं नसीब हुआ। एक को देखकर पिताकी छाती ठंडी होती थी; दूसरे को देखकर देहमें आग लग जाती थी।

(५)

आश्चर्य यह था कि सत्यप्रकाशको अपने छोटे भाईसे लेशमात्र भी ईर्ष्या न थी। अगर उसके हृदयमें कोई कोमल भाव शेष रह गया था, तो वह अपने भाईके प्रति स्नेह था। उस मरुभूमिमें यही एक हरियाली थी। ईर्ष्या साम्यभावकी द्योतक है। सत्यप्रकाश अपने भाईको अपनेसे कहीं ऊंचा, कहीं भाग्यशाली समझता था। उसमें ईर्ष्याका भाव ही लोप हो गया था।

घृणासे घृणा उत्पन्न होती है। प्रेमसे प्रेम। ज्ञानप्रकाश भी बड़े भाईको चाहता था। कभी कभी उसका पक्ष लेकर अपनी मांसे वाद विवाद कर बैठता। कहता, भैयाकी अचकन फट गई है आप नई अचकन क्यों नहीं बनवा देती? मां उत्तर देती—उसके लिये वही अचकन अच्छी है। अभी क्या अभी तो वह नंगा फिरेगा। ज्ञानप्रकाश बहुत चाहता था कि अपने जेब खर्चसे बचाकर कुछ अपने भाईको दे, पर सत्य-प्रकाश कभी इसे स्वीकार न करता था। वास्तवमें जितनी देर वह छोटे भाईके साथ रहता, उतनी देर उसे एक शांति-मय आनन्दका अनुभव होता। थोड़ी देरके लिये वह सद्-भावोंके साम्राज्यमें विचरने लगता। उसके मुखसे कोई भद्दी और अप्रिय बात न निकलती। एक क्षणके लिये उसकी सोई हुई आत्मा जाग उठती।

एक बार कई दिन तक सत्यप्रकाश मदरसे न गया।

पिताने पूछा—तुम आजकल पढ़ने क्यों नहीं जाते ? क्या सोच रखा है कि मैंने तुम्हारी जिन्दगी भरका ठेका ले रखा है ?

सत्य—मेरे ऊपर जुर्माने और फीसके कई रुपये हो गये हैं। जाता हूं तो दरजेसे निकाल दिया जाता हूं।

देव०—फीस क्यों बाकी है ? तुम तो महीने महीने ले लिया करते हो न ?

सत्य०—आये दिन चन्दे लगा करते हैं, फीसके रुपये चन्देमें दे दिये।

देव०—और जुर्माना क्यों हुआ ?

सत्य—फीस न देनेके कारण।

देव०—तुमने चन्दा क्यों दिया ?

सत्य०—ज्ञानूने चन्दा दिया तो मैंने भी दिया।

देव०—तुम ज्ञानूसे जलते हो ?

सत्य०—मैं ज्ञानूसे क्यों जलने लगा। यहां हम और वह दो हैं बाहर हम और वह एक समझे जाते हैं। मैं यह नहीं कहना चाहता कि मेरे पास कुछ नहीं है।

देव०—क्यों यह कहते शर्म आती है ?

सत्य०—जी हां, आपकी बदनामी होगी।

देव०—अच्छा, तो आप मेरी मानरक्षा करते हैं ! यह क्यों नहीं कहते कि पढ़ना अब मुझे मंजूर नहीं है। मेरे पास इतना रुपया नहीं कि तुम्हें एक एक क्लासमें तीन तीन साल पढ़ाऊं ऊपरसे तुम्हारे खर्चके लिये भी प्रतिमास कुछ दूं। ज्ञान बाबू

तुमसे कितना छोटा है, लेकिन तुमसे एक ही दफा नीचे है। तुम इस साल जरूर ही फेल होओगे, वह जरूर ही पास होगा अगले साल तुम्हारे साथ हो जायगा। तब तो तुम्हारे मुंहमें कालिख लगेगी।

सत्य०—विद्या मेरे भाग्य हीमें नहीं है।

देव०—तुम्हारे भाग्यमें क्या है?

सत्य०—भीख मांगना।

देव०—तो फिर भीख ही मांगो। मेरे घरसे निकल जाओ। देवप्रिया भी आ गई। बोली—शरमाना तो नहीं, और बातों का जवाब देता है।

सत्य०—जिनके भाग्यमें भीख मांगना होता है वहीं ब चपनमें अनाथ हो जाते हैं।

देवप्रिया—ये जली कटी बातें अब मुझसे न सही जायगी मैं खूनका घूंट पी पी कर, रह जाती हूं।

देवप्रकाश—बेहया है। कलसे इसका नाम कटवा दूंगा। भीख मांगनी है; तो भीख ही मांगो।

(६)

दूसरे दिन सत्यप्रकाशने घरसे निकलनेकी तैयारी कर दी। उसकी उम्र अब १६ सालकी हो गई थी। इतनी बातें सुननेके बाद अब उसे उस घरमें रहना असह्य हो गया था। जबतक हाथ पांव न थे, किशोरावस्थाकी असमर्थता थी तब तक अवहेलना; निरादर, निठुरता, भर्त्सना सब कुछ सहकर

घरमें रहता था। अब हाथ पांव हो गये थे, उस बंधनमें क्यों रहता। आत्माभिमान आशाकी भांति बहुत चिरजीवी होता है।

गर्मीके दिन थे। दोपहरका समय। घरके सब प्राणी सो रहे थे। सत्यप्रकाशने अपनी धोती बगलमें दबाई, एक छोटा सा बेग हाथमें लिया और चाहता था कि चुपकेसे बैठकसे निकल जाय कि ज्ञानू आ गया और उसे कहीं जानेको तैयार देखकर बोला---कहां जाते हो भैया ?

सत्य०---जाता हूं, कहीं नौकरी करूंगा।

ज्ञानू०---मैं जाकर अम्मासे कह देता हूं।

सत्य०---तो फिर मैं तुमसे छिपाकर चला जाऊंगा।

ज्ञानू०---क्यों चले जाओगे ? तुम्हें मेरी जरा भी मुहब्बत नहीं है !

सत्यप्रकाशने भाईको गले लगाकर कहा--'तुम्हें छोड़कर जानेको जी तो नहीं चाहता, लेकिन जहां कोई पूछनेवाला नहीं है वहां पड़े रहना बेहयाई है। कहीं दस पांचकी नौकरी कर लूंगा और पेट पालता रहूंगा और किस लायक हूं ?

ज्ञान०---तुमसे अम्मा क्यों इतना चिढ़ती हैं ? मुझे तुमसे मिलनेको मना किया करती हैं।

सत्य०---मेरे नसीब खोटे हैं, और क्या।

ज्ञान०---तुम लिखने पढ़नेमें जी नहीं लगाते ?

सत्य०---लगता ही नहीं, कैसे लगाऊं ? जब कोई परवा नहीं करता तो मैं भी सोचता हूं--उंह, यही न होगा, ठोकर

खाऊँगा । बलासे !

ज्ञानू०—मुझे भूल तो न जाओगे ? मैं तुम्हारे पास खत लिखा करूंगा मुझे भी एक बार अपने यहां बुलाना ।

सत्य०—तुम्हारे स्कूलके पतेसे चिट्ठी लिखूंगा ।

ज्ञान०—(रोते रोते) मुझे न जाने क्यों तुम्हारी बड़ी मुहब्बत लगती है !

सत्य०—मैं तुम्हें सदैव याद रखूंगा ।

यह कहकर उसने फिर भाईको गलेसे लगाया और घर से निकल पड़ा । पास एक कौड़ी भी न थी और वह कलकत्ते जा रहा था ।

(७)

सत्यप्रकाश कलकत्ते क्योंकर पहुंचा, इसका वृतान्त लिखना व्यर्थ है । युवकोंमें दुस्साहसकी मात्रा अधिक होती है । वे हवामें किले बना सकते हैं—धरतीपर नाव चला सकते हैं । कठिनाइयोंकी उन्हें कुछ परवा नहीं होती । अपने ऊपर असीम विश्वास होता है । कलकत्ते पहुंचना ऐसा कष्ट-साध्य न था । सत्यप्रकाश चतुर युवक था । पहिले ही उसने निश्चय कर लिया था कि कलकत्तेमें क्या करूंगा, कहां रहूंगा । उसके बेगमें लिखनेकी सामग्री मौजूद थी । बड़े शहरोंमें जीविकाका प्रश्न कठिन भी है और सरल भी । सरल है उसके लिए, जो हाथसे काम कर सकते हैं, कठिन है उनके लिए, जो क़लमसे काम करते हैं । सत्यप्रकाश मज़दूरी करना करीच

समझता था। उसने एक धर्मशालामें असबाव रखा। बादमें शहरके मुख्य २ स्थानोंका निरीक्षण करके एक डाकघरके सामने लिखनेका सामान लेकर बैठ गया और अपढ़ मज़दूरोंकी चिट्ठियाँ, मनीआर्डर आदि लिखनेका व्यवसाय करने लगा। पहिले कई दिन तो उसको इतने पैसे भी न मिले कि भर पेट भोजन करता, लेकिन धीरे धीरे आमदनी बढ़ने लगी। वह मजदूरोंसे इतने विनयके साथ बातें करता और उनके समाचार इतने विस्तारसे लिखता कि बस वे पत्रको सुनकर बहुत प्रसन्न होते। अशिक्षित लोग एक ही बातको दो-दो तीन-तीन बार लिखाते हैं। उनकी दशा ठीक रोगियों कीसी होती है, जो वैद्यसे अपनी व्यथा और वेदनाका वृत्तान्त कहते नहीं थकते। सत्यप्रकाश सूत्रको व्याख्याका रूप देकर मज़दूरोंको मुग्ध कर देता था। एक सन्तुष्ट होकर जाता, तो अपने कई अन्य भाइयोंको खोज लाता। एक ही महीनेमें उसे १) दिन मिलने लगा। उसने धर्मशालासे निकलकर शहरसे बाहर ५) महीने पर एक छोटी-सी कोठरी ले ली। एक जून बनाता, दोनों जून खाता। बर्तन अपने हाथोंसे धोता। ज़मीनपर सोता। उसे अपने निर्वासनपर ज़रा भी खेद और दुःख न था। घर के लोगोंकी कभी याद न आती। वह अपनी दशापर सन्तुष्ट था। केवल ज्ञानप्रकाशकी प्रमयुक्त बातें न भूलतीं। अन्धकारमें यही एक प्रकाश था। विदाईका अन्तिम दृश्य आंखोंके सामने फिरा करता। जीविकासे निश्चिन्त होकर उसने ज्ञानप्रकाशको

एक पत्र लिखा। उत्तर आया, तो उसके आनन्दकी सीमा न रही। शानू मुझे याद करके रोता है, मेरे पास आना चाहता है स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है। प्यासेको पानीसे जो तृप्ति होती है, वही तृप्ति इस पत्रसे सत्यप्रकाशको हुई। मैं अकेला नहीं हूं, कोई मुझे भी चाहता है—मुझे भी याद करता है।

उस दिनसे सत्यप्रकाशको यह चिन्ता हुई कि शानूके लिए कोई उपहार भेजूँ। युवकोंको मित्र बहुत जल्द मिल जाते हैं। सत्यप्रकाशको भी कई युवकोंसे मित्रता हो गयी थी। उनके साथ कई बार सिनेमा देखने गया। कई बार बूटी-भंग, शराब-कबाबकी भी ठहरी। आईना, तेल, कंघीका शौक़ भी पैदा हुआ; जो कुछ पाता, उड़ा देता। बड़े वेगसे नैतिक पतन और शारीरिक विनाशकी ओर दौड़ा चला जाता था। इस प्रेम-पत्रने उसके पैर पकड़ लिये। उपहारके प्रयासने इन दुर्व्यसनोंको तिरोहित करना शुरू किया। सिनेमाका चसका छूटा, मित्रोंको हीले-हवाले करके टालने लगा। भोजन भी रूखा-सूखा करने लगा। धन- संचयकी चिन्ताने सारी इच्छा-ओंको परास्त कर दिया। उसने निश्चय किया कि एक अच्छी सी घड़ी भेजूँ। उसका दाम कमसे कम ४०) होगा। अगर तीन महीने तक एक कौड़ीका भी अपव्यय न करूँ, तो घड़ी मिल सकती है। शानू घड़ी देख कर कैसा खुश होगा! अम्माँ और बाबूजी भी देखेंगे। उन्हें मालूम हो जायगा कि मैं भूखों नहीं मर रहा हूं। किफ़ायतकी धुनमें वह बहुधा दिया-बत्ती

भी न करता। बड़े सवेरे काम करने चला जाता और सारे दिन दो-चार पैसेकी मिठाई खाकर काम करता रहता। उसके ग्राहकोंकी संख्या दिन दूनी होती जाती थी। चिट्ठी-पत्रीके अतिरिक्त अब उसने तार लिखनेका भी अभ्यास कर लिया था। दो ही महीनोंमें उसके पास ५०) एकत्र हो गये और जब घड़ीके साथ सुनहरी चेनका पारसल बनाकर ज्ञानूके नाम भेज दिया, तो उसका चित्त इतना उत्साहित था मानो किसी निस्सन्तान पुरुषके बालक हुआ हो।

(८)

'घर' कितनी कोमल, पवित्र, मनोहर स्मृतियोंको जागृत कर देता है! यह प्रेमका निवास-स्थान है। प्रेमने बहुत तपस्या करके यह वरदान पाया है।

किशोरावस्थामें 'घर' माता-पिता, भाई-बहिन, सखी-सहेलीके प्रेमकी याद दिलाता है, प्रौढ़ावस्थामें गृहिणी और बाल बच्चोंके प्रेमकी। यही वह लहर है, जो मानव-जीवन मात्रको स्थिर रखता है, उसे समुद्रकी वेगवती लहरोंमें बहने और चट्टानोंसे टकरानेसे बचाता है। यही वह मंडप है, जो जीवनको समस्त विघ्न-बाधाओंसे सुरक्षित रखता है।

सत्यप्रकाशका 'घर' कहाँ था? वह कौनसी शक्ति थी, जो कलकत्तेके विराट् प्रलोभनोंसे उसकी रक्षा करती थी?—माताका प्रेम, पिताका स्नेह, बाल बच्चोंकी चिन्ता?—नहीं, उसका रक्षक, उद्धारक, उसका पारितोषक केवल ज्ञानप्रकाश

का स्नेह था। उसीके निमित्त वह एक एक पैसेकी किफ़ायत करता था, उसीके लिए वह कठिन परिश्रम करता था और धनोपार्जनके नये नये उपाय सोचता था। उसे ज्ञानप्रकाशके पत्रोंसे मालूम हुआ था कि इन दिनों देवप्रकाशकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। वे एक घर बनवा रहे हैं, जिसमें व्यय अनुमानसे अधिक हो जानेके कारण ऋण लेना पड़ा है: इसलिए अब ज्ञानप्रकाशको पढ़ानेके लिए घर पर मास्टर नहीं आता। तबसे सत्यप्रकाश प्रतिमास ज्ञानूके पास कुछ न कुछ अवश्य भेज देता था। वह अब केवल पत्रलेखक न था, लिखनेके सामानकी एक छोटी-सी दूकान भी उसने खोल ली थी। इससे अच्छी आमदनी हो जाती थी। इस तरह पाँच वर्ष बीत गये। रसिक मित्रोंने जब देखा कि अब यह हत्थे नहीं चढ़ता, तो उसके पास आना जाना छोड़ दिया।

(६)

सन्ध्याका समय था। देवप्रकाश अपने मकानमें बैठे देवप्रियासे ज्ञानप्रकाशके विवाहके सम्बन्धमें बातें कर रहे थे। ज्ञानू अब १७ वर्षका सुन्दर युवक था। बालविवाहके विरोधी होने पर भी देवप्रकाश अब इस शुभमुहूर्तको न टाल सकते थे। विशेषतः जब कोई महाशय ५,०००) दायज देनेको प्रस्तुत हों।

देवप्रकाश—मैं तो तैयार हूं, लेकिन तुम्हारा लड़का भी तो तैयार हो।

देवप्रिया—तुम बात-चीत पक्की कर लो, वह तैयार हो ही

जायगा। सभी लड़के पहिले 'नहीं' करते हैं।

देव०—आनूका इन्कार केवल संकोचका इन्कार नहीं है, वह सिद्धान्तका इन्कार है। वह साफ़ साफ़ कह रहा है कि जब तक भैयाका विवाह न होगा, मैं अपना विवाह करने पर राजी नहीं हूं।

देवप्रिया—उसकी कौन चलाये, वहां कोई रखेली रख ली होगी, विवाह क्यों करेगा? वहां कोई देखने आता है?

देव०—(झुंझलाकर) रखेली रख ली होती तो तुम्हारे लड़केको ४०) महीने न भेजता और न ये चीज़ ही देता, जो हे पहिले महीने से अब तक बराबर देता चला आता है। न-जाने क्यों तुम्हारा मन उसकी ओरसे इतना मैला हो गया है! चाहे वह जान निकालकर भी दे दे लेकिन तुम न पसीजोगी।

देवप्रिया नाराज़ होकर चली गयी। देवप्रकाश उससे यही कहलाना चाहते थे कि पहले सत्यप्रकाशका विवाह करना उचित है, किन्तु वह कभी इस प्रसंगको आने ही न देती थी। स्वयम् देवप्रकाशकी यह हार्दिक इच्छा थी की पहिले बड़े लड़के का विवाह करें, पर उन्होंने भी आज तक सत्यप्रकाशको कोई पत्र न लिखा था। देवप्रियाके चले जानेके बाद उन्होंने आज पहली बार सत्यप्रकाशको पत्र लिखा। पहिले इतने दिनों तक चुपचाप रहनेके लिए क्षमा मांगी, तब उसे एक बार घर आनेका प्रेमाग्रह किया। लिखा, अब मैं कुछही दिनोंका मेह-मान हूँ। मेरी अभिलाषा है कि तुम्हारा और तुम्हारे छोटे भाई

का विवाह देख लूँ । मुझे बहुत दुःख होगा, यदि तुम मेरी विनय स्वीकार न करोगे । ज्ञानप्रकाशके असमंजसकी बात भी लिखी अन्तमें इस बात पर ज़ोर दिया कि किसी और विचारसे नहीं, तो ज्ञानूके प्रेमके नातेही तुम्हें इस बन्धनमें पड़ना होगा ।

सत्यप्रकाशको यह पत्र मिला, तो उसे बहुत खेद हुआ । मेरे भ्रातृस्नेहका यह परिणाम होगा, मुझे न मालूम था । इसके साथ ही उसे यह ईर्ष्यामय आनन्द हुआ कि अम्मा और दादा को अब तो कुछ मानसिक पीड़ा होगी । मेरी उन्हें क्या चिन्ता थी ? मैं तो मर भी जाऊँ, तो भी उनकी आँखोंमें आँसू न आवें । ७ वर्ष हो गये, कभी भूलकर भी पत्र न लिखा कि मरा है या जीता है । अब कुछ चेतावनी मिलेगी । ज्ञानप्रकाश अन्तमें विवाह करनेपर राज़ी तो होही जायगा, लेकिन सहजमें नहीं । कुछ न हो, तो मुझे तो एक बार अपने इन्कारके कारण लिखनेका अवसर मिला । ज्ञानूको मुझसे प्रेम है, लेकिन उसके कारण मैं पारिवारिक अन्यायका दोषी न बनूंगा । हमारा पारिवारिक जीवन सम्पूर्णतः अन्याय-मय है । यह कुमती और वैमनस्य, क्रूरता और नृशंसताका बीजारोपण करता है । इसी मायामें फँसकर मनुष्य अपनी प्यारी सन्तानका शत्रु हो जाता है । न, मैं आँखों देखकर यह मक्खी न निगलूँगा । मैं ज्ञानूको समझाऊँगा अवश्य । मेरे पास जो कुछ जमा है, वह सब उसके विवाहके निमित्त अर्पण भी कर दूँगा । बस,

इससे ज्यादा मै और कुछ नही कर सकता। अगर ज्ञानू भी अविवाहित ही रहे, तो संसार कौन सूना हो जायगा? ऐसे पिताका पुत्र क्या वंशपरम्पराका पालन न करेगा? क्या उसके जीवनमें फिर वही अभिनय न दुहराया जायगा, जिसने मेरा सर्वनाश कर दिया?

दूसरे दिन सत्यप्रकाशने ५००) पिताके पास भेजे और पत्रका उत्तर लिखा कि मेरा अहोभाग्य जो आपने मुझे याद किया। ज्ञानूका विवाह निश्चित हो गया, इसकी बधाई! इन रुपयोंसे नववधूके लिए कोई आभूषण बनवा दीजियेगा। रही मेरे विवाहकी बात। मैने अपनी आँखोंसे जो कुछ देखा है और मेरे सिरपर जो कुछ बीती है, उसपर ध्यान देते हुए यदि मैं कुटुम्ब-पाशमें फंसूँ, तो मुझसे बड़ा उल्लू संसारमें न होगा। मुझे आशा है, आप मुझे क्षमा करेंगे। विवाहकी चर्चा हीसे मेरे हृदयको आघात पहुँचता है

दूसरा पत्र ज्ञानप्रकाशको लिखा कि माता पिताकी आज्ञा को शिरोधार्य करो। मैं अपढ़, मूर्ख, बुद्धि-हीन आदमी हूं; मुझे विवाह करनेका कोई अधिकार नहीं है। मैं तुम्हारे विवाहके शुभोत्साहमें सम्मिलित न हो सकूंगा, लेकिन मेरे लिए इससे बढ़कर आनन्द और सन्तोषका विषय नहीं हो सकता।

(१०)

देवप्रकाश यह पढ़कर अवाक् रह गये। फिर आग्रह

करनेका साहस न हुआ। देवप्रियाने नाक सिकोड़कर कहा-यह लौंडा देखने हीको सीधा है, है जहरका बुझाया हुआ! कैसा सो फाँसमें बैठा हुआ बरछियोंसे छेद रहा है!

किन्तु ज्ञानप्रकाशने यह पत्र पढ़ा, तो उसे मर्माघात पहुँचा। दादा और अम्माके अन्यायनेही उन्हें यह भीषण व्रत धारण करनेपर बाध्य किया है। इन्होंने उन्हें निर्वासित किया है, और शायद सदाके लिये। न-जाने अम्माको उनसे क्यों इतनी जलन हुई। मुझे तो अब याद आता है कि किशोरावस्थाहीसे वे बड़े आज्ञाकारी, विनयशील और गम्भीर थे। अम्माकी बातोंका उन्हें जवाब देते नहीं सुना। मैं अच्छेसे अच्छा खाता था, फिर भी, उनके तीवर मैले न हुए, हालांकि उन्हें जलना चाहिए था। ऐसी दशामें अगर उन्हें गार्हस्थ्य-जीवनसे घृणा हो गयी, तो आश्चर्यही क्या? फिर, मैं ही क्यों इस विपत्तिमें फँसूँ? कौन जाने, मुझे भी ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना पड़े। भैयाने बहुत सोच-समझकर यह धारणा की है।

सन्ध्या-समय जब उसके माता-पिता बैठे हुए इसी समस्यापर विचार कर रहे थे, ज्ञानप्रकाशने आकर कहा—मैं कल भैयासे मिलने जाऊँगा।

देवप्रिया—क्या कलकत्ते जाओगे?

ज्ञान०—जी हाँ।

देवप्रिया—उन्हींको क्यों नहीं बुलाते?

ज्ञान०—उन्हें कौन मुँह लेकर बुलाऊँ ? आप लोगोंने तो पहिले ही मेरे मुँहमें कालिख लगा दी है। ऐसा देव-पुरुष आप लोगोंके कारण विदेशमें ठोकर खा रहा है और मैं इतना निर्लज्ज हो जाऊँ कि. .

देवप्रिया—अच्छा चुप रह, नहीं ब्याह करना है न कर, जले पर लोन मत छिड़क ! माता-पिता का धर्म है, इसलिए कहती हूं, नहीं तो यहां ठेंगेको परवा नहीं है। तू चाहे ब्याह कर, चाहे क्वांरा रह पर मेरी आँखोंसे दूर हो जा।

ज्ञान०—क्या मेरी सूरतसे भी घृणा हो गयी ?

देवप्रिया—जब तू हमारे कहने हीमें नहीं, तो जहां चाहे रह। हम भी समझ लेंगे कि भगवानने लड़का ही नहीं दिया।

देव०—क्यों व्यर्थमें ऐसे कटुवचन बोलती हो ?

ज्ञान०—अगर आप लोगोंकी यही इच्छा है तो यही होगा। देवप्रकाशने देखा कि बातका बतंगड़ हुआ चाहता है, तो ज्ञानप्रकाशको इशारेसे टाल दिया और पत्नीके क्रोध को शान्त करनेकी चेष्टा करने लगे। मगर देवप्रिया फूट फूट कर रो रही थी और बार बार कहती थी, मैं इसकी सूरत न देखूँगी। अन्तमें देवप्रकाशने चिढ़कर कहा—तो तुम्हीने तो कटुवचन कहकर उसे उत्तेजित कर दिया।

देवप्रिया—यह सब विष उसी चाण्डालने बोया है, जो यहांसे सात समुद्र-पार बैठा हुआ मुझे मिट्टीमें मिलानेका उपाय कर रहा है। मेरे बेटेको मुझसे छीनने हीके लिए

उसने यह प्रेमका स्वांग भरा है। मैं उसकी नस नस पहिचानती हूं। उसका यह मंत्र मेरी जान लेकर छोड़ेगा; नहीं तो मेरा ज्ञानू, जिसने कभी मेरी बातका जवाब नहीं दिया, यों मुझे न जलाता!

देव०—अरे, तो क्या वह विवाह ही न करेगा! अभी गुस्सेमें अनाप-सनाप बक गया है। ज़रा शान्त हो जायगा तो मैं समझाकर राज़ी कर दूँगा।

देवप्रिया—मेरे हाथसे निकल गया।

देवप्रियाकी आशङ्का सत्य निकली। देवप्रकाशने बेटेको बहुत समझाया, कहा—तुम्हारी माता इस शोकमें मर जायगी, किन्तु कुछ असर न हुआ। उसने एक बार 'नहीं' करके 'हां' न की। निदान पिता भी निराश होकर बैठ रहे।

तीन साल तक प्रतिवर्ष विवाहके दिनोंमें यह प्रश्न उठता रहा, पर ज्ञानप्रकाश अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहा। माताका रोना-धोना निष्फल हुआ। हां, उसने माताकी एक बात मान ली—वह भाईसे मिलने कलकत्ता न गया।

तीनसालमें घरमें बड़ा परिवर्तन हो गया। देवप्रियाकी तीनों कन्याओंका विवाह हो गया। अब घरमें उसके सिवा कोई स्त्री न थी। सूना घर उसे फाड़े खाता था। जब वह नैराश्य और क्रोधसे व्याकुल हो जाती, तो सत्यप्रकाशको खूब जी भरकर कोसती। मगर दोनों भाइयोंमें प्रेम-पत्र-व्यवहार बराबर होता रहता था।

देवप्रकाशके स्वभावमें एक विचित्र उदासीनता प्रकट होने लगी। उन्होंने पेन्शन ले ली थी और प्रायः धर्मग्रन्थोंका अध्ययन किया करते थे। ज्ञानप्रकाशने भी 'आचार्य' की उपाधि प्राप्त कर ली थी और एक विद्यालयमें अध्यापक हो गये थे। देवप्रिया अब संसारमें अकेली थी।

देवप्रिया अपने पुत्रको गृहस्थीकी ओर खींचनेके लिए नित्य टोने-टोटके किया करती। बिरादरीमें कौनसी कन्या सुन्दर है, गुणवती है, सुशिक्षिता है—उसका बखान किया करती, पर ज्ञानप्रकाशको इन बातोंके सुननेकी भी फुरसत न थी।

मोहल्लेके और घरोंमें नित्य ही विवाह होते रहते थे। बहुएं आती थीं, उनकी गोदमें बच्चे खेलने लगते थे, घर गुलज़ार हो जाता था। कहीं विदाई होती थी, कहीं बधाइयां आती थीं, कहीं गाना-बजाना होता था, कहीं बाजे बजते थे। यह चहलपहल देखकर देवप्रियाका चित्त चञ्चल हो जाता। उसे मालूम होता, मैं ही संसारमें सबसे अभागिनी हूं। मेरे ही भाग्यमें यह सुख भोगना नहीं बदा है। भगवान् ऐसा भी कोई दिन आयेगा कि मैं अपनी बहूका मुखचन्द्र देखूंगी, उसके बालकोंको गोदमें खिलाऊँगी। वह भी कोई दिन होगा कि मेरे घरमें भी आनन्दोत्सवके मधुर गानकी तानें उठेंगी! रात-दिन यही बातें सोचते सोचते देवप्रियाकी दशा उन्मादिनीकी-सी हो गयी। आपही आप सत्यप्रकाशको

कोसने लगती। वही मेरे प्राणोंका घातक है। तल्लीनता उन्मादका प्रधान गुण है। तल्लीनता अत्यन्त रचनाशील होती है। वह आकाशमें देवताओंके विमान उड़ाने लगती है। अगर भोजनमें नमक तेज़ हो गया, तो यह शत्रुने कोई षेड़ा रख दिया होगा। देवप्रियाको अब कभी कभी धोखा हो जाता कि सत्यप्रकाश घरमें आ गया है, वह मुझे मारना चाहता है, ज्ञानप्रकाशको विष खिलाये देता है। एक दिन उसने सत्यप्रकाशके नाम एक पत्र लिखा और उसे जितना कोसते बना, उतना कोसा। तू मेरे प्राणोंका वैरी है, मेरे कुल का घातक है, हत्यारा है। वह कौन दिन आयगा कि तेरी मिट्टी उठेगी। तूने मेरे लड़कोंपर वशीकरण-मंत्र चला दिया है दूसरे दिन फिर ऐसा ही एक पत्र लिखा; यहाँ तक कि यह उसका नित्यका कर्म हो गया। जब तक एक चिट्ठीमें सत्यप्रकाशको गालियाँ न दे लेती; उसे चैन ही न आता था! इन पत्रोंको वह कहारिनके हाथ डाकघर भिजवा दिया करती थी।

१२

ज्ञानप्रकाशका अध्यापक होना सत्यप्रकाशके लिए घातक हो गया। परदेशमें उसे यही सन्तोष था कि मैं संसारमें निराधार नहीं हूँ। अब यह अवलम्ब जाता रहा। ज्ञानप्रकाशने ज़ोर देकर लिखा, अब आप मेरे हेतु कोई कष्ट न उठावें। मुझे अपनी गुज़र करनेके लिए काफ़ीसे ज्यादा मिलने लगा है।

यद्यपि सत्यप्रकाशकी दूकान खूब चलती थी, लेकिन कलकत्ते-जैसे शहरमें एक छोटेसे दूकानदारका जीवन बहुत सुखी नहीं होता। ६०) ७०) की मासिक आमदनी होती ही क्या है? अबतक वह जो कुछ बचाता था, वह वास्तवमें बचत न थी, बल्कि त्याग था। एक वक्त रूखा-सूखा खाकर, एक तंग आर्द्र कोठरीमें रहकर २५)-३०) बच रहते थे। अब दोनों वक्त भोजन मिलने लगा। कपड़े भी जरा साफ़ पहिनने लगा। मगर थोड़े ही दिनोंमें उसके खर्चमें औषधियोंकी एक मद बढ़ गयी और फिर वही पहिलेकी-सी दशा हो गयी। बरसों तक शुद्ध वायु, प्रकाश और पुष्टिकर भोजनसे वञ्चित रहकर अच्छेसे अच्छा स्वास्थ्य भी नष्ट हो सकता है। सत्यप्रकाशको भी अरुचि मन्दाग्नि आदि रोगोंने आ घेरा। कभी कभी ज्वर भी आ जाता। युवावस्थामें आत्म विश्वास होता है, किसी अवलम्बकी परवा नहीं होती। वयोवृद्धि दूसरोंका मुंह ताकती है, कोई आश्रय ढूंढ़ती है। सत्यप्रकाश पहिले सोता, तो एक ही करवटमें सवेरा हो जाता। कभी बाजारसे पूरियां लेकर खा लेता, कभी मिठाइयोंपर टाल देता। पर अब रातको अच्छी तरह नींद न आती, बाजारी भोजनसे घृणा होती, रातको घर आता, तो थककर चूर चूर हो जाता था। उस वक्त चूल्हा जलाना, भोजन पकाना बहुत अखरता। कभी कभी वह अपने अकेलेपन पर रोता। रातको जब किसी तरह नींद न आती, तो

उसका मन किसीसे बातें करनेको लालायित होने लगता। पर वहाँ निशान्धकारके सिवा और कौन था? दीवालोंके कान चाहे हों, मुँह नहीं होता। इधर ज्ञानप्रकाशके पत्र भी अब कम आते थे और वे भी रूखे। उनमें अब हृदयके सरल उद्गारोंका लेश भी न होता था। सत्यप्रकाश अब भी वैसे ही भावमय पत्र लिखता था; पर एक अध्यापकके लिये भावुकता कब शोभा देती है? शनैः शनैः सत्यप्रकाशको भ्रम होने लगा कि ज्ञानप्रकाश भी मुझसे निष्ठुरता करने लगा, नहीं तो क्या मेरे पास दो-चार दिनके लिए आना असम्भव था? मेरे लिए तो घरका द्वार बन्द है, पर उसे कौनसी बाधा है? उस ग़रीबको क्या मालूम कि यहां ज्ञानप्रकाशने मातासे कलकत्ते न जानेकी क़सम खा ली है। इस भ्रमने उसे और भी हताश कर दिया।

शहरोंमें मनुष्य बहुत होते हैं, पर मनुष्यता विरले ही में होती है। सत्यप्रकाश उस बहुसंख्यक स्थानमें भी अकेला था। उसके मनमें अब एक नयी आकांक्षा अंकुरित हुई। क्यों न घर लौट चलूँ? किसी संगिनीके प्रेममें क्यों न शरण लूँ? वह सुख और शान्ति और कहाँ मिल सकती है? मेरे जीवनके निराशान्धकारको और कौन ज्योति आलोकित कर सकती है? वह इस आवेशको अपनी सम्पूर्ण विचारशक्तिसे रोकता, पर जिस भांति किसी बालकको घरमें रखी हुई मिठाइयोंकी याद बार बार खेलसे घर खींच लाती है; उसी तरह उसका

चित्त भी बार बार उन्हीं मधुरचिन्ताओंमें मग्न हो जाता था। वह सोचता—मुझे विधाताने सब सुखसे वञ्चित कर दिया है, नहीं तो मेरी दशा ऐसी हीन क्यों होती? मुझे ईश्वरने बुद्धि न दी थी क्या? क्या मैं श्रमसे जी चुराता था? अगर बालपन ही में मेरे उत्साह और अभि-रुचि पर तुषार न पड़ गया होता, मेरी बुद्धि-शक्तियोंका गला न घोंट दिया गया होता, तो मैं भी आज आदमी होता। पेट पालनेके लिए इस विदेशमें न पड़ा रहता। नहीं, मैं अपने ऊपर यह अत्याचार न करूँगा।

महीनों तक सत्यप्रकाशके मन और बुद्धिमें यह संग्राम होता रहा। एक दिन वह दूकानसे आकर चूल्हा जलाने जा रहा था कि डाकियेने पुकारा। ज्ञानप्रकाशके सिवा उसके पास और किसीके पत्र न आते थे। आज ही उनका पत्र आ चुका था। यह दूसरा पत्र क्यों? किसी अनिष्टकी आशंका हुई। पत्र लेकर पढ़ने लगा। एक क्षणमें पत्र उसके हाथसे छूटकर गिर पड़ा और वह सिर थामकर बैठ गया कि ज़मीन पर न गिर पड़े। यह देवप्रियाकी विषयुक्त लेखनीसे निकला हुआ ज़हरका प्याला था, जिसने एक पलमें उसे संज्ञाहीन कर दिया। उसकी सारी मर्मान्तक व्यथा—क्रोध, नैराश्य, कृतघ्नता, ग्लानि—केवल एक ठण्डी साँसमें समाप्त हो गयी!

वह जाकर चारपाई पर लेट रहा। मानसिक व्यथा आगसे पानी हो गयी। हा! सारा जीवन नष्ट हो गया!

मैं ज्ञानप्रकाशका शत्रु हूं। मैं इतने दिनोंसे केवल उसके जीवनको मिट्टीमें मिलानेके लिए ही प्रेमका स्वांग भर रहा हूँ। भगवान! इसके तुम्हीं साक्षी हो!

तीसरे दिन फिर देवप्रियाका पत्र पहुंचा। सत्यप्रकाश उसे लेकर फाड़ डाला। पढ़नेकी हिम्मत न पड़ी।

एक ही दिन पीछे तीसरा पत्र पहुंचा। उसका भी वही अन्त हुआ। फिर वह एक नित्यका कर्म हो गया। पत्र आता और फाड़ दिया जाता। किन्तु देवप्रियाका अभिप्राय बिना पढ़े ही पूरा हो जाता था—सत्यप्रकाशके मर्मस्थान पर एक चोट और पड़ जाती थी।

एक महीनेकी भीषण हार्दिक वेदनाके बाद सत्यप्रकाशको जीवनसे घृणा हो गयी। उसने दूकान बन्द कर दी, बाहर आना जाना छोड़ दिया। सारे दिन खाट पर पड़ा रहता। वे दिन याद आते: जब माता पुचकारकर गोदमें चिपटा लेती और कहती, 'बेटा!' पिताजी सन्ध्या समय दफ्तरसे आकर गोदमें उठा लेते और कहते 'भैया!' माताकी सजीव मूर्ति उसके सामने आ खड़ी होती; ठीक वैसी ही जब वह गंगा-स्नान करने गयी थी। उसकी प्यार-भरी बातें कानोंमें आने लगतीं। फिर वह दृश्य सामने आ जाता, जब उसने नववधू माताको 'अम्मा' कहकर पुकारा था। तब उसके कठोर शब्द याद आ जाते, उसके क्रोधसे भरे हुए विकराल नेत्र आंखोंके सामने आ जाते। उसे अपना सिसक सिसककर रोना

याद आ जाता। फिर सौरगृहका दृश्य सामने आता। उसने कितने प्रेमसे बच्चेको गोदमें लेना चाहा था! तब माताके छुरे-से शब्द कानोंमें गूँजने लगते। हाय! उसी वज्रने मेरा नाश कर दिया! फिर ऐसी कितनी ही घटनाएँ याद। अब बिना किसी अपराधके माँ डाँट बताती, पिताका निष्ठुर व्यवहार याद आने लगता। उनका बात बात त्योरियाँ बदलना, माताके मिथ्यापवादोंपर विश्वास करना—हाय! मेरा सारा जीवन नष्ट हो गया! तब वह करवट बदल लेता और फिर वही दृश्य आँखोंमें फिरने लगते। फिर करवट बदलता और चिल्लाकर कहता—इस जीवनका अन्त क्यों नहीं हो जाता!

इस भाँति पड़े पड़े उसे कई दिन हो गये। सन्ध्या हो गयी थी कि सहसा उसे द्वारपर किसीके पुकारनेकी आवाज सुनाई पड़ी। उसने कान लगाकर सुना और चौंक पड़ा—किसी परिचित मनुष्यकी आवाज़ थी। दौड़ा द्वारपर आया, तो देखा, ज्ञानप्रकाश खड़ा है। कितना रूपवान पुरुष था! वह उसके गलेसे लिपट गया। ज्ञानप्रकाशने उसके पैरोंको स्पर्श किया। दोनों भाई घरमें आये। अन्धकार छाया हुआ था। घरकी यह दशा देखकर ज्ञानप्रकाश, जो अब तक अपने कण्ठके आवेगको रोके हुए था, रो पड़ा। सत्यप्रकाशने लाल-टेन जलायी। घर क्या था, भूतका डेरा था। सत्यप्रकाशने जल्दीसे एक कुरता गलेमें डाल लिया। ज्ञानप्रकाश भाईका

जर्जर शरीर, पीला मुख, बुझी हुई आँखें देखता था और रोता था।

सत्यप्रकाशने कहा—मैं आजकल बीमार हूँ।

ज्ञानप्रकाश—यह तो देख ही रहा हूँ।

सत्य०—तुमने अपने आनेकी सूचना भी न दी, म... का पता कैसे चला?

ज्ञान०—सूचना तो दी थी, आपको पत्र न मिला ?

सत्य०—अच्छा, हाँ दी होगी, पत्र दूकानमें डाला गया होगा। मैं इधर कई दिनोंसे दुकान नहीं गया। घर पर सब कुशल है?

ज्ञान०—माताजीका देहान्त हो गया।

सत्य०—अरे! क्या बीमार थी?

ज्ञान०—जी नहीं। मालूम नहीं, क्या खा लिया था। उन्हें उन्माद-सा हो गया था। पिताजीने कुछ कटुवचन कहे थे, शायद इसीपर कुछ खा लिया।

सत्य०—पिताजी तो कुशलसे हैं?

ज्ञान०—हां, अभी मरे नहीं हैं।

सत्य०—अरे! क्या बहुत बीमार हैं?

ज्ञान०—माताने विष खा लिया, तो वे उनका मुंह खोलकर दवा पिला रहे थे। माताजीने ज़ोरसे उनकी दो उंगुलियां काट लीं। वही विष उनके शरीरमें पहुंच गया। तबसे सारा शरीर सूज आया है। अस्पतालमें पड़े हुए हैं, किसीको

'काटने दौड़ते हैं। बचनेकी आशा नहीं है।

--तब तो घर ही चौपट हो गया!

--ऐसे घरको अवश्य बहुत पहिले चौपट हो जाना

ा * * *

देन दोनों भाई प्रातःकाल कलकत्ते से विदा

दिये।

